महान गुरु-कहान

(पूज्य बेन शान्ताबेन के श्रीमुख से प्रवाहित अक्षरशः)

: प्रकाशक :
पूज्य श्री
कानजीस्वामी
स्मारक ट्रस्ट
देवलाली (महा.)

ज्ञानी धर्मात्मा पूज्य बेन शांताबेन

1.) Youtube में Pujya Shantaben type करें ।

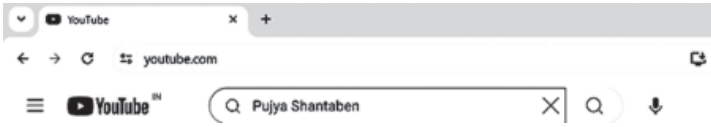

2.) Channel पर Click करें ।

Pujya Shantaben

@PujyaShantaben*628 Subscribers
Visit htttps://atmadharma.com/Shantaben.html to know the Life-History of Shantaben.
Books by Shantaben are

3.) Channel को Subscribe करें ।

Pujya Shantaben

@PujyaShantaben*628 Subscribers*343 video
Visit htttps://atmadharma.com/Shantaben.html to know the Life-History of Shantaben. > atmadharma.com/jainbooks.html?Shanta and 1 more link

Subscribe ⇦

4.) Playlist पर click करें ।

Pujya Shantaben

@PujyaShantaben*628 Subscribers*343 video
Visit htttps://atmadharma.com/shantaben.html to know the Life-History of Shantaben. > atmadharma.com/jainbooks.html?Shanta and 1 more link

Subscribed ∨

Home **Video** **Playlist** **Community** 🔍 ⇦

5.)

नीचे दी गई Playlist के सभी video इस पुस्तक में अक्षरशः प्रकाशित किये गये हैं । अवश्य स्वाध्याय करें ।

Pujya Gurudev Shri Jeevan Gatha
View full playlist

पुस्तक मूल्य रु. 25/–

2

हमारी बात

अहो उपकार जिनवरनो कुंदनों ध्वनि दिव्यनो,
जिन कुंद ध्वनि आप्या, अहो आ गुरु कहाननो।

परम वीतरागी सर्वज्ञ देवाधिदेव श्री सीमंधर स्वामी का साक्षात् संदेश लानेवाले, श्री कुन्दकुन्दाचार्य की मधुर कृतियों को, श्री जिनवाणी के गूढ़ रहस्यों से भरपूर लिपिबद्ध शास्त्रों को, जिनागमों के रहस्य को समझानेवाले, वीतरागीभाव-वैराग्यमय गंभीर रहस्यमय अमृत निर्झरित भेदज्ञान के सुर सुनाते हुए मुमुक्षुओं को "तू भगवान है और भगवान बन" ऐसी करुणा से श्री जिनेन्द्रों की, आचार्यों की तथा मुनिराजों की महिमा जो बतलाई उन उपकारों को हम भव-भव तक भूल नहीं सकते।

महापुरुष श्री कहानगुरुदेव ने अपने प्रभावना-योग में श्री दिगम्बर जिनधर्म का ध्वज लहराया, गाँव-गाँव में अनेक जिनमंदिरों की स्थापना की, अपूर्व सिद्धिधामों की यात्रा करवाई, ज्ञान-शिविरों के साथ ज्ञान-दान की अति उत्साह से प्रभावना हुई जो कि एक आश्चर्य है। पूज्य गुरुदेव श्री के परिचय में आईं हुईं दोनों बहिनें - पूज्य चंपाबेन तथा पूज्य शान्ताबेन, इन तीनों ज्ञानी धर्मात्माओं से सुवर्णपुरी की शोभा कुछ अद्‌भुत एवं विशेष थी। दोनों बहिनों की श्री देव-शास्त्र-गुरु के प्रति अपूर्व-भक्ति का रंग चारों ओर प्रसर गया था।

पूज्य भगवती माताओं की पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अर्पणता और भक्ति कुछ विशिष्ट प्रकार की थी। स्वर्णपुरी में पूज्य कहानगुरु पधारे–संप्रदाय का चिह्न मुहपत्ती का त्याग करके परिवर्तन किया, स्वाध्याय-मंदिर की स्थापना, जिनमंदिर में भगवान श्री सीमंधरादि भगवंतों का आगमन हुआ, समवसरण की रचना, मानस्तंभ जी एवं परमागम-मंदिर की प्रतिष्ठा हुई। पूज्य गुरुदेवश्री की उपस्थिति में कुशाग्रबुद्धि दोनों मातायें कार्यरत थीं और गाँव-गाँव, शहर-शहर में जिनमंदिरों की प्रतिष्ठायें तथा भारत के सिद्धिधामों की यात्रायें जो कई बार हुईं, उसमें दोनों माताओं की तन-मन-धन से भक्ति रहती थी जो कि एक आदर्श थी।

पूज्य बेन शान्ताबेन भी एक कुशाग्र-बुद्धिमता की धनी और अनुशासनप्रिय थीं। एक समय पूज्य गुरुदेवश्री भी कहते थे कि इस नारी में इतनी शक्ति है कि वे राजनीति भी कर सकती हैं। पूज्य बेन शान्ताबेन पूज्य कहानगुरुदेव के जीवन परिचय

सम्बन्धी बातें कहतीं तो दो-दो, तीन-तीन, चार-चार दिन तक कहती ही रहती थीं और तब भी उनकी बातें पूर्ण न होतीं। वे बहुत मधुर रस से सब कहतीं थीं, जिसका ब्रह्मचारी बहिनों के द्वारा ऑडियो-टेप में रिकोर्डिंग हुआ था। पूज्य शान्ताबेन की सभी ऑडियो टेपों को अक्षरशः करके PDF तैयार करने का कार्य अक्षरशः टीम के द्वारा पूर्ण किया गया है जिसके लिए हम उनके बहुत आभारी हैं। 75 सब्टाइटल सहित और अन्य 225 विडिओ इस तरह कुल 300 विडिओ में पूज्य शान्ताबेन की वाणी सुरक्षित कर दी गई है जिससे कि जन-जन तक उनकी वाणी पहुँच सके।

कई मुमुक्षुओं की विशेष माँग थी कि Track 61 से 75 में पूज्य शान्ताबेन ने गुरुदेवश्री के जीवन को, सोनगढ़ आने से लेकर अंत तक सोनगढ़ के इतिहास का जो वर्णन किया है, उसे संक्षिप्त-इतिहास के रूप में पुस्तक एवं PDF के माध्यम से नई पीढ़ी को हिन्दी में प्राप्त कराया जा सके जिससे वे अवश्य लाभान्वित होंगे और इस हेतु से यह प्रकाशन किया गया है।

सब्टाईटल विडिओ में कुछ ईस्वी सन् एवं माह में त्रुटियाँ हुईं थीं जिनको सुधार कर इस पुस्तक में डाला गया है। विडिओ में दिए गए साल, माह एवं ईस्वी सन् को पुस्तक के अनुसार सुधार कर पाठकगण पढ़ें – ऐसी विनती है।

आज Track 61 से 75 तक के वीडियो का अक्षरशः प्रकाशन पुस्तकाकार रूप में करते हुए हम अत्यंत प्रमुदित हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री का 135 वाँ जन्मोत्सव (9-5-2024)

—कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट
कहान नगर, लाम रोड, देवलाली (महा.)

: प्राप्तिस्थान :

1) पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट
कहान नगर, लाम रोड
देवलाली-422401
जि. नासिक, (महाराष्ट्र)

2) मनीष जैन, समय जैन
401, सुख शीतल अपार्टमेन्ट
16/1 साउथ तुकोगंज
समवशरण जैन मंदिर के पास
इन्दौर-452001 (म.प्र.)
Mo : 9302101855

विषयानुक्रम

ट्रेक नं.	पृष्ठ नं.
Track Number 61	1
Track Number 62	8
Track Number 63	16
Track Number 64	30
Track Number 65-A	39
Track Number 65-B	48
Track Number 66	56
Track Number 67	81
Track Number 68	93
Track Number 69	102
Track Number 70	126
Track Number 71-A	142
Track Number 71-B	151
Track Number 71-C	155
Track Number 72-A	159
Track Number 72-B	173
Track Number 73	178
Track Number 74	192
Track Number 75	205

महान गुरु-कहान

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी का जीवन-परिचय पूज्य बेन शांताबेन के श्रीमुख से)

Track Number 61

पूज्य श्री कहानगुरु जीवन कथा, पूज्य बेन शांताबेन द्वारा
जन्मभूमि धाम की जय हो!
उमराला जन्मधाम की जय हो!
उमराला मंगलभूमि कहान गुरु जन्म-बधाई की जय हो!
महामंगल धाम की जय हो!
उमराला जन्मभूमि धाम की जय हो!
जन्मभूमि धाम की जय हो!

पूज्य बेन : यह भूमि इतनी महापवित्र है (कि) इस भूमि पर माता को स्वप्न आया, इस भूमि पर। इस भूमि पर गुरुदेव वहाँ (महाविदेह) से (आयु) चयकर यहाँ आये, यह वह भूमि है। गुरुदेव माता के गर्भ में आये, यह वह भूमि है। यह वह पवित्र-भूमि है। गुरुदेव माता के गर्भ में आये, माता को स्वप्न आया, अच्छा लगा, ऐसी यह भूमि है। यह महामंगल-भूमि है। जहाँ जगत के तारणहार कहानगुरु जन्मे, यह

वह महामंगल-भूमि है। इस भूमि पर आज हम सब आये हैं। गुरुदेव की जन्मभूमि पर.....

जन्म-बधाई की जय हो!

उमराला जन्मधाम की जय हो!

रात को जो यहाँ (माता को) स्वप्न आया था, वो तो माता के मन में ही रहा। वह तो कहीं बाहर आया ही नहीं। महापुरुष, पूरे भारत के भगवान, भारत के तारणहार, ऐसे गुरुदेव गर्भ में पधारे, इस भूमि पर यहाँ उनका जन्म है, ये महामंगल यह भूमि है। महापवित्र-भूमि है, जन्मधाम की भूमि है। अपने तारणहार की महाभूमि है।

ब्र. रमाबेन : बराबर!

उमराला जन्मभूमि की जय हो!

कहान गुरुदेव ने अपने को साक्षात् दर्शन यहाँ दिया। यहाँ कहान गुरुदेव के दर्शन साक्षात् हुए, उजमबा के नंदन के अपने को दर्शन हुये, उजमबा के नंदन अपने हृदय में विराजे और अपने भव का अंत भगवान ने जाना।

बोलो! कहान गुरुदेव की जय हो!

माताने स्वप्नां लाध्या ने झबकीने जाग्या उजमबा -4

(अर्थ :- माता को स्वप्न आया और वे झपकी लेकर जागीं)

स्वप्नां ए मीठडां लाग्या ने दुंदुभि वाग्या उजमबा -4

(अर्थ :- माता को स्वप्न अच्छा लगा और दुंदुभि बाजे सुनाई दिये)

जोयूं हृदयमां जागी ने नींदड़ी त्यागी उजमबा -4

(अर्थ :- नींद उड़ी तो मन के मन में समाधान हो गया कि)

कूंखे आव्या छे बड़भागी ने भावठ भांगी उजमबा -4

(अर्थ :- गर्भ में कोई बड़ा भाग्यवान आया है और तब से उनका सुकाल शुरू हो गया)

माताने उछरंग आव्यो ने संदेशों सुणाव्यो उजमबा -4

(अर्थ :- माताजी को उत्साह आया तो उन्होंने पिता, मोतीचंदभाई को स्वप्न सुनाया)

माता-पिता ने हर्ष न मायो जोषीने तेडाव्यो उजमबा -2

(अर्थ :- जन्म पश्चात् माता-पिता दोनों को बहुत हर्ष हुआ, फिर ज्योतिषी को बुलाया)

जोषीये जोष एम जोयां ने मनडां मोह्या उजमबा -4

(अर्थ :- ज्योतिषी ने कुंडली देखी तो उसका मन मोहित हो गया और उसने कहा कि)

कां कोई नगरीनो राया के जग तारणहारो उजमबा -4

(अर्थ :- आपका पुत्र किसी नगरी का राजा या जगत का तारणहार बनेगा)

मीठडां फल एम सुण्यां ने उछरंग आव्या उजमबा -4

(अर्थ :- इतना अच्छा फल सुनकर माताजी को हर्ष हुआ)

परम पुरुष ए जन्म्या ने तेज उभराणा उजमबा -6

(अर्थ :- ऐसा परम-पुरुष जन्मा और धीरे-धीरे तेजस्वी बालक का तेज उभरने लगा)

तेज देखीने मात मोह्यां ने कहान नाम राख्या उजमबा -4

(अर्थ :- तेज देखकर माता मोहित हो गयीं और नाम रखा, कहान)

माताने कानुडा प्यारा अजब बाल लीला उजमबा -4

(अर्थ :- माता को कानुड़ा बहुत प्यारा था और उनकी बाल-लीला भी अजब-गजब थी)

कहाने ऐवी बंसरी बजावी के आत्मनाद गजाव्या उजमबा -4

(अर्थ :- कहान ने ऐसी बाँसुरी बजायी कि जगत में आत्मनाद गूँज गया)

थयो धुरंधर धोरी के जग तारणहारो उजमबा -4

(अर्थ :- धर्म का धुरंधर और जगत का तारणहार हुआ)

हे! धर्म-धुरंधर धोरी के जग तारणहारो उजमबा -4

(अर्थ :- धर्म का धुरंधर और जगत का तारणहार हुआ)

हे भारतमां डंको बजाव्यो उजमबा -4

(अर्थ :- भरतक्षेत्र में धर्म का डंका बजाया)

हे विदेहना डंको बजाव्यो के भव्य तारणहारो उजमबा -4

(अर्थ :- विदेह का डंका भरत में बजाया और भव्य-जीवों का तारणहार सिद्ध हुआ)

थयो धुरंधर धोरी के जग तारणहारो उजमबा -2

(अर्थ :- धर्म का धुरंधर और जगत का तारणहार हुआ)

भव्योनो तारणहारो के जग तारणहारो उजमबा -2

(अर्थ :- भव्यों का तारणहार और जगत का तारणहार हुआ)

माताने स्वप्नां लाध्या ने झबकीने जाग्या उजमबा -4

(अर्थ :- माता को स्वप्न आया और वे झपकी लेकर जागीं)

स्वप्नां ए मीठडां लाग्या ने दुंदुभि वाग्या उजमबा -2

(अर्थ :- स्वप्न माता को अच्छा लगा और दुंदुभि बाजे सुनाई दिये)

बोलिये उजमबा के नंदन की जय हो!

हमारी आत्मा के रक्षणहार सद्गुरुदेव की जय हो!

हमारी आत्मा के तारणहार कहान गुरुदेव की जय हो!

कहानगुरु महापवित्र जन्मधाम की जय हो!

महापवित्र चरणरज की जय हो!

धर्मधुरंधर धोरी की जय हो!

श्रोता : उमराला के ओंकारनाद की जय हो!

उमराला की पवित्र यात्रा करवाने वाली पूज्य भगवती माता

पू. शान्ताबेन की जय हो!

उजमबा के लाडले कहानगुरु जन्मधाम की जय हो!

पूज्य बेन : यह गुरुदेव का महापवित्र जन्मधाम है। गुरुदेव का यहाँ जन्म हुआ है। यहाँ उजमबा माता, पिता मोतीलालभाई, भाई-बहिन सब यहीं रहते थे, इस मकान में रहते थे। गुरुदेव कहते थे ना कि ऊपर जो खिड़की है ना, उस खिड़की में मेरी बहिन (मुझे) लेकर के बैठती थीं। जब मैं दो वर्ष का था, तब मेरी बहिन (हरिबेन) मुझे लेकर खिड़की में बैठती थीं, इस खिड़की में। गुरुदेव इस मकान में रहे हैं, घूमे हैं, चले हैं, हिरे हैं, फिरे हैं। गुरुदेव की एक भाभी हैं, गंगाबेन, वो बताती थीं कि गुरुदेव की माता ऐसा कहती थीं कि ये (मेरे) चार लड़के हैं। उनमें मेरा ये कानू है ना, ये तो कोई अलग जाति का है। मेरा कानू है, ये बहुत तेजस्वी है। उनकी (गुरुदेव की) माता को भी ऐसा लगता था। माता, बाजू वाले पड़ोसी हैं ना, उन पड़ोसी (कणबीवाड़ के लोगों) को कहती थीं कि मेरा जो ये कानू है, कानू, ये कानू बहुत तेजस्वी है। ये कानू, कानुड़ा बहुत प्यारा है। माता ने कानुड़ा प्यारा उजमबा और बाल-लीला.... बाल-लीला उनकी अजब-गजब थी।

विचक्षणता, पहले से (ही) ज्ञान (की) तीक्ष्णता, ज्ञान की तीक्ष्णता का स्वभाव पहले से, छोटे थे, तब से ही (था)। उनके (गुरुदेव के) बड़े भाई (दीपचंदभाई) यहाँ गुजर गए। बड़े भाई गुजर गए तो (तब) वो (गुरुदेव बहुत छोटे थे और) सब देखते थे कि यह (मृत-शरीर का) क्या

हुआ, किस तरह से हुआ, क्या हुआ, कैसे हुआ, (क्या किया) ये सब देखते थे, यहाँ। फिर सब (छोटे-छोटे) छोकरे लोग थे ना, (इसलिए खुशालभाई ने) उनको बाहर निकाला कि बाहर चले जाओ। फिर बाहर गए तो (गुरुदेव) सब देखते थे कि क्या करते हैं? इसका क्या करेंगे, फिर क्या होगा? ऐसी ज्ञान की तीक्ष्णता का प्रयत्न (गुरुदेवश्री को) पहले से ही (था)। बचपन से ही ज्ञान तीक्ष्णता का प्रयत्न बहुत था और सभी बातों में गुरुदेव ऐसा करें कि यह क्या हुआ, कैसे हुआ, उसका कारण ढूँढें, क्या कारण से हुआ, किस कारण से (हुआ)। ऐसी ज्ञान की, ज्ञान की विचक्षणता बचपन से (ही) बहुत थी, बहुत, बचपन से।

उनकी माँ तो ऐसा कहती थीं कि ये मेरा कानू तो कोई अलग जाति का है, कानू। ऐसे पड़ोसी सब ऐसे बात करते थे। पहले हम आते थे ना, पहले। तो ये पड़ोसी, पुराने-पुराने (पड़ोसी) थे। पुराने-पुराने भाई लोग थे। वे सब बात करते थे कि ये कानू का, कानू का बचपन कुछ अलग जाति का था।

उनका पुण्य बहुत था, पुण्यशाली (बहुत थे गुरुदेव)। अभी तो इतना पुण्य था लेकिन बचपन से (ही) इतना पुण्य होवे ना। तो वे पुण्यशाली और तेजस्वी बहुत (थे) और पूरे कुटुंब को, सबको, उनके ऊपर बहुत प्रेम आता था कि ये कानुड़ा बहुत अलग जाति का है, कानुड़ा। यह कानू, पूरे जगत का तारणहार बन गया। जगत को, पूरे हिन्द (हिन्दुस्तान) को हिलानेवाला (बन गया), देखो ना! पूरा हिंदुस्तान हिले। खलबली उठती है ना। ऐसे महान महिमावंत आत्मा थे। ऐसा आत्मा तो भाग्य से किसी बार मिलता है। अपना महाभाग्य (है) कि अपने (इस) जन्म में अपने को गुरुदेव का योग मिला, उनकी वाणी इतने वर्षों तक सुनी, ऐसा अपूर्व योग मिला, ये महाभाग्य की बात है।

उनकी ज्ञान की तीक्ष्णता, ज्ञान की सूक्ष्मता तो इतनी ज़्यादा (थी) कि अंदर में से सूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्म निकलता ही रहे। ऐसी ज्ञान की तीक्ष्णता बहुत थी। अंदर से में सूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्म निकलता ही रहे। ऐसी ज्ञान की, श्रुतज्ञान की शक्ति बहुत थी। हम सबका महाभाग्य कि उनकी वाणी सुनने का, उनका इतने वर्षों का साक्षात् दर्शन का, उनका परिचय का (अवसर मिला)। अपने को तो ऐसा ही मानना चाहिए कि गुरुदेव हैं, हैं, हाजराहजूर विराजते हैं और इसके अलावा कुछ याद नहीं करना। विराजित हैं, अभी। ऐसे महापुरुष कोई-कोई, किसी काल में कोई-कोई बार उनका जन्म होता है, ऐसे पुरुष का।

ब्र. रमाबेन : श्री प्रवचनसार, प्रवचन नंबर 133, गाथा नंबर 118, तारीख 18 जुलाई 1979, तिथि आषाढ़ वद् दशम् के दिन हुए पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन का अंश -

पूज्य गुरुदेवश्री : और शरीर को 90 पूरा हुआ (गर्भ तिथि - आषाढ़ वद् 10, विक्रम सम्वत् 1945, ईस्वी सन् 1889)। आहाहा! 90। नेवूं कहते हैं, क्या कहते हैं? नब्बे, नब्बे, नब्बे। परभव में से जब हम यहाँ आये हैं, महाविदेह में से हम आए हैं।

श्रोता : बराबर!

पूज्य गुरुदेवश्री : महाविदेह में से आने के आज (गर्भ तिथि - आषाढ़ वद् 10, विक्रम सम्वत् 1945, ईस्वी सन् 1889) नब्बे (90) वर्ष पूरे हुए। 91वां (वर्ष) आज बैठा। क्योंकि जन्म वैशाख सुध दूज (21 अप्रैल, 1890) का था। तो जन्म के पहले सवा नौ मास माता के पेट में रहे, वो आयुष्य तो यहाँ का है। आहाहा! वास्तव में तो इस मनुष्य (भव में) यहाँ आये, तब से (ये) आयुष्य शुरू हुआ है। आहाहा! समझ में आया? लोग जन्म से गिनते हैं, लेकिन वो सवा नौ महीने जो हैं (गर्भ के), वो यहाँ का (ही) आयुष्य है। यहाँ की योग्यता से यहाँ रहे हैं। कर्म से भी नहीं। आहाहा!

Track Number 62

पूज्य गुरुदेवश्री के जन्मधाम उमराला में पूज्य बेन के साथ की यात्रा -

ब्र. रमाबेन : गुरुदेव का जन्म कहाँ हुआ?

पूज्य बेन : जन्म हुआ, तो उनकी माता तो कहीं मिलीं नहीं अपने को। लेकिन ये पड़ोसी, आजु-बाजू के, कणबीवाड़ में (लोग) रहते थे ना, उन कनबीवाड़ (में रहने वाले लोगों) को मैंने पूछा कि तुमको (गुरुदेव की) माँ क्या कहती थीं? तो बोले कि, उनकी माँ ऐसा कहती थीं कि - मेरे चार लड़के हैं, उनमें (से) जो कानुड़ा है ना, वो कोई अलग जाति का है। इसके लक्षण सब अलग ही दिखाई देते हैं मुझे।

श्रोता : क्या कहे, चार कौन कहे?

पूज्य बेन : नाम में - एक तो खुशालभाई, दूसरे नंबर के गुरुदेव, तीसरे मगनभाई और दीपचंदभाई।

श्रोता : गुरुदेव की बहिन थीं क्या कोई?

पूज्य बेन : हाँ हाँ! दो बहनें थीं (बहनों के नाम - हरिबेन, कस्तूरीबेन)। बहनें भी बड़ी (थीं) और गुरुदेव छोटे और बहनों को तो इतना ज़्यादा प्रेम था (गुरुदेव से)। चार में सब चले गए।

महामंगल जन्मधाम की जय हो! महापवित्र जन्मधाम की जय हो!

गुरुदेव के चरण पड़े ऐसी महापवित्र जन्मभूमि की जय हो!

गुरुदेव श्री यहाँ पर बालपन से बड़े हुए ऐसे जन्मधाम की जय हो!

उजमबा के लाल कहान गुरुदेव की जय हो!

जगत के तारणहार कहान गुरुदेव की जय हो!

भक्तों के व्हाला (प्यारे) गुरुदेव की जय हो!

महापवित्र जन्मधाम की जय हो!

महापवित्र जन्मधाम की जय हो!

भारतना उजेरा कहान गुरुदेवनो जय हो!

भारत के महापुरुष श्री सद्गुरुदेवनो जय हो!

मोतीचंदभाई के अमूल्य मोतीनो जय हो!

भक्तों के लाडीला कहानगुरुदेवनो जय हो!

महापवित्र जन्मधामनो जय हो!

धन्य छे उजमबाना नंदननो जय हो!

धन्य उजमबा मातानो जय हो!

उमरालाथी ॐकार नीकल्यो कहान गुरुदेवनो जय हो!

उमरालामां दिव्यध्वनि दातार कहान गुरुदेवनो जय हो!

भक्ति

भारे बन्यो मस्तानो उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- आत्मा में मस्ताने, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

ज्ञानमहीं मस्तानो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- ज्ञान में मस्ताने, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

वात करे छे ज्ञानतणी ऐ -4

(अर्थ :- बात करें तो ज्ञान की ही बात करें)

दिलडां हरे छे लोकोनां ऐ -2

(अर्थ :- अध्यात्म की चर्चा करके लोगों के हृदय को मोहित कर लेवें)

दिलडां हरे छे भव्यजनोनां -2

(अर्थ :- अध्यात्म की चर्चा करके भव्यों के हृदय को मोहित कर लेवें)

कुंदसुत केसरी जाग्यो उजमबा तमारो कानो कानो -3

(अर्थ :- कुन्दकुन्द आचार्य देव का पुत्र, केसरी सिंह के समान जागा)

हे! भारे बन्यो मस्तानो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- आत्मा में मस्ताने, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

एकाकी सत् शोधी काढयुं -4

(अर्थ :- अकेले, स्वयं ही, सत्य को ढूँढ निकाला)

द्वैत मिटावी अद्वैत बताव्युं -4

(अर्थ :- सभी द्वैत अर्थात् भेदों को मिटाया और एक अभेद बताया)

धर्म-धुरंधर कानो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- धर्म धुरंधर मस्ताने, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

धुरंधर मस्तानो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- धर्म धुरंधर मस्ताने, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

भारे बन्यो मस्तानो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- आत्मा में मस्ताने, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

ज्ञानमहीं मस्तानो उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- ज्ञान में मस्ताने, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

भक्तों नो तारणहारो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- भक्तों के ताराणहार, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

अम आँखोंनो तारो उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- हमारी आँखों के तारा, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

आतम तारणहारो उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- आत्मा के तारणहार, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

भारे बन्यो मस्तानो, उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- आत्मा में मस्ताने, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

हे! जगमां कोई अन्य न मानूं -4

(अर्थ :- जगत में अन्य जो कुछ भी प्रचलित था, उसे धर्म नहीं माना)

हे! धून मचावी अलख जगाव्युं -4

(अर्थ :- आत्मा की ही धुन मचाई और अलख जगाया)

सीमंधर लाडकवायो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- सीमंधर के लाडले, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

माताजीनो लाडकवायो उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- उजमबा माताजी के लाडले पुत्र कहान)

भारे बन्यो मस्तानो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- आत्मा में मस्ताने, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

जैन धर्मनी ज्योत जगावी -4

(अर्थ :- जैनधर्म की ज्योति जगाई)

अज्ञान अँधारा दूर हटावी -4

(अर्थ :- अज्ञान अँधेरा दूर हटाया)

जगनो तारणहारो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- जगत के तारणहार, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

भव्योनो तारणहारो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- भव्यों के तारणहार, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

ज्ञानमहीं मस्तानो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- ज्ञान में मस्ताने, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

टचली आंगळी ऐ मेरु तोल्यो -4

(अर्थ :- छोटी ऊँगली से सुमेरु को नाप लिया **- सम्प्रदाय में रहकर भी दिगंबर धर्म को समझ लिया**)

पंडितोंनो कांई गर्व उतार्यो -4

(अर्थ :- दिगंबर पंडितों का गर्व उतारा)

हे तोये कहे हुं नानो उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- तो भी कहें कि मैं तो छोटा हूँ, इतनी नम्रता का गुण उनमें था)

हे! हिंद ने हलावनारो उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- पूरे हिन्दुस्तान को अपनी सिंह-गर्जना से हिलानेवाले)

भरतमां पूरो पडनारो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- पूरे भारत में ज्ञायक का डंका बजानेवाले और जैन-ध्वज फहरानेवाले)

हे! कोई थी नहीं डरनारो उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- किसी से नहीं डरने वाले, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

हे! सत्य पंथे चालनहारो उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- सत्य पंथ पर चलने वाले, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

हे! साचे पंथे लई जानारो उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- सच्चे पंथ पर ले जाने वाले, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

भारे बन्यो मस्तानो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- आत्मा में मस्ताने, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

हिंद ने हलावनारो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- पूरे हिन्दुस्तान को अपनी सिंह-गर्जना से हिलाने वाले)

तीर्थंकर सम अवतारो उजमबा तमारो कानो कानो -3

(अर्थ :- तीर्थंकर सम अवतार है, माता उजमबा ऐसे हैं आपके पुत्र कहान)

आवो कोई नहिं थनारो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- उनके जैसा कोई नहीं हो सकता, माता उजमबा ऐसे हैं आपके पुत्र कहान)

हे कोई नहिं थनारो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- उनके जैसा कोई नहीं हो सकता, माता उजमबा ऐसे हैं आपके पुत्र कहान)

अमने मल्यो ऐ कानो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- हम भाग्यशाली हैं कि हमको ऐसे कहानगुरु मिले)

अमने मूकीने चाल्यो उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- हमको छोड़कर चले गए, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

भगवान ने भेटवा चाल्यो उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- भगवान से भेंट करने के लिए, उनसे मिलने के लिए चले गए)

भावी तणां भगवानो उजमबा तमारो कानो कानो -4

(अर्थ :- भविष्य में तो स्वयं ही भगवान होने वा हैं, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

हे ज्ञानमहीं मस्तानो उजमबा तमारो कानो कानो -2

(अर्थ :- ज्ञान में मस्ताने, माता उजमबा आपके पुत्र कहान)

बोलिए! कहान गुरुदेव की जय हो!

अमारा पर दिव्यदृष्टि करजो कहान गुरुदेव नो जय हो!

अमीदृष्टि वरसावजो कहान गुरुदेव नो जय हो!

श्रोता : जिस भूमि के ऊपर गुरुदेव (रहे), इस भूमि की रज अपने आप में पवित्र है और इस पवित्रता का कुछ स्मरण करा दो बेन।

पूज्य बेन : पूरे भारत में प्रख्यात हो गए हैं। पूरे भारत में जाहेरात हो गई है गुरुदेव की तो। ऐसा उनका प्रभाव था कि बालक से लेकर वृद्ध तक सभी (ने), स्वयं की अर्पणता करके गुरुदेव को पूज्यपने सिर के ऊपर चढ़ा लिया, सभी ने। ऐसा प्रभाव, वाणी को तो देखो! कितनी धीर-गंभीरता! कैसी वाणी की धीर-गंभीरता! वाणी सुनते ही हृदय तृप्त न हो, ऐसी वाणी उनकी (थी)। अद्‌भुत वाणी! जग में देखो, उनका कोई जोड़ (उनके जैसा कोई दूसरा) नहीं मिलता। उनका जोड़ (उनके जैसा कोई दूसरा) ही जग में कहीं नहीं (है)। और यहाँ आते (थे) तब, (जब) गुरुदेव हों यहाँ उमराला में बैठे हों, दो वर्ष पहले आये थे, तब पाट के ऊपर (गुरुदेव) बैठे और ओसरे में भक्ति (कराई थी)। ऐसी भक्ति कराई, ऐसी भक्ति कराई (बहुत भक्ति कराई)।

ब्र. रमाबेन : तब रास लिया था ना।

पूज्य बेन : इस भूमि का एक-एक कण पवित्र है। यहाँ तो छोटे से बड़े हुए हैं। यहाँ लादी (टाइल्स) बिछाई ना, तो फिर हमने कहा कि ये धूल है ना, इसको लेकर डब्बा में भर लो, धूल को। ऐसा डब्बा है, उसमें भरा है। ये धूल महापवित्र है, इसके ऊपर गुरुदेव चले हैं। हम यहाँ आए ना तो ये जो फर्श लगाया है ना, वहाँ हमने कहा कि ये धूल ले लो डब्बे में। इसके ऊपर गुरुदेव चले हैं, फिरे हैं, बड़े यहाँ हुए।

महा-पवित्रधाम है। ऐसे महापुरुष, भारत के अजोड़ संत, दुनिया में कहीं अभी तो दिखते नहीं। वे चले गए तो कहीं दिखने को मिलते नहीं, ऐसे महापुरुष। जिनकी निखालसता ऐसी, हृदय ऐसा निखालस, (इतनी) विशालता, धर्म का (इतना) वात्सल्य कि धर्मी-जीवों को जहाँ देखें तो एकदम प्रेम उभर जाये। कल जो हमने फिल्म देखी तो कितने सारे त्यागी और ब्रह्मचारी (थे)। उनको (गुरुदेव को) देखो, उनके हृदय में वात्सल्य-भाव कितना है। सभी को देख-देखकर ऐसे खुश होते थे एकदम, स्वयं। इतना धर्म का वात्सल्य-भाव (था) कि ये

सब दिगंबर धर्मी यहाँ आए हैं, इतना प्रेम उनको। सरलता तो इतनी, वात्सल्यता तो इतनी, निखालसता तो इतनी, ऐसे गुण, सभी गुणों से भरपूर थे, गुरुदेव। उनकी कमी कोई पूरी नहीं कर सकता। उनकी याद आती ही है। कोई क्षण भूल जायें, ऐसा नहीं।

श्रोता : धन्य बेन!

पूज्य बेन : गुरुदेव की महापवित्र-भूमि है। यहाँ तो अपने को भाव आए बिना रहता ही नहीं। भूमि है इसलिए भक्ति उछल जाती है।

श्रोता : गुरुभक्ति अपार है। अपार है, अपार।

* * *

Track Number 63

पूज्य गुरुदेवश्री के दीक्षा के पहले के भाव और (दीक्षा के) बाद का जीवन का काल -

ब्र. रमाबेन : उसके पहले आपको जो परिचय में हुआ वह....

पूज्य बेन : जो सब कुछ परिचय में आया हो ना, खुशालभाई से बात की हो, खुशालभाई, गुरुदेव के भाई, वे कितनी बात करते थे। उनकी भाभी (गंगाबेन) बात करती थीं। उमराला में जायें तो दोसी (माँ जी) हों ना, उनको हम पूछें कि तब गुरुदेव कैसे थे, वो बात फिर से कहो। आप सबने बहुत बातें तो सुनी हैं, गुरुदेव के मुख से। लेकिन फिर भी जो मुझे सुनने में आया, वो आपको कहती हूँ, ऐसा।

गुरुदेव को दीक्षा के पहले भी ऐसा था कि मुझे सच्चा धर्म चाहिए, सच्चा धर्म। सच्चे धर्म के लिए गुरुदेव के अंदर में ऐसे संस्कार थे कि सच्चा धर्म मुझे चाहिए, सच्चा धर्म। लेकिन खबर नहीं कुछ (कि सच्चा धर्म क्या)। उसके बाद फिर उन्होंने अपने (बड़े) भाई को शादी करने के लिए 'ना' कहा, तो फिर खुशालभाई ने कहा (कि ठीक है), तू संस्कृत पढ़। ....संस्कृत पढ़ने बैठ जा।

मास्टर रखा (संस्कृत पढ़ने के लिए), संस्कृत थोड़े दिन पढ़ी। फिर १५ दिन के बाद खुशालभाई खबर निकालने आये कि क्या हुआ? तो (गुरुदेव) कहें, मुझे तो इसमें कहीं रस आता नहीं। मुझे जो चाहिए है, वो इसमें से (मुझे) मिलता नहीं। इसलिए मुझे यह नहीं सीखना। मुझे जो चाहिए, बस वही, वही मुझे सीखना है। तो खुशालभाई फिर उनको

वापस उमराला ले गए, अर्थात् कि तुम आओ (उमराला), उसके बाद जैसा तुम कहो, वैसा करेंगे।

फिर कहीं छूटता तो नहीं था लेकिन गुरुदेव को इसकी खटक थी (सच्चा धर्म क्या है?) कि ये सब अधःकर्मी है, दोषित है, शास्त्र प्रमाण नहीं। इसलिए लेकिन अब क्या करें? दीक्षा लेना है फिर (ऐसा नक्की किया)।

हीराजी महाराज (के) पास (गुरुदेव ने) दीक्षा ले ली। नक्की किया और फिर ले ली। वो धोती की बात तो गुरुदेव सभी को कहते थे कि हाथी ऊपर चढ़ने पर धोती फट गयी। तब मुझे (अर्थात् गुरुदेव को) ऐसा लगा कि ये ऐसा क्यों हुआ? फिर ये (बाद में) धर्म बदल गया, उसके ऊपर गुरुदेव उतारते थे। दीक्षा ली ना, तो एकांतरा उपवास करने लगे। एक दिन उपवास और एक दिन पारणा और शास्त्र ही पढ़ते रहें, पूरे दिन। पहले-पहले तो स्थानकवासी (के शास्त्र) पढ़े। तो सुबह से शाम तक पढ़ें और मात्र एक वक़्त ही भोजन करें। एक दिन भोजन करें और दूसरे दिन न करें, मुझे (अर्थात् गुरुदेव को) निवृत्ति मिले, इसके लिए।

तो एक वर्ष हुआ, दीक्षा लेने के बाद, तो खुशालभाई खबर निकालने गए। तो महाराज (गुरुदेवश्री) तो (तब तक) एकदम सूख गए थे (इतने उपवास करने के कारण)। तो खुशालभाई ने हीराजी महाराज को पूछा कि, "महाराज! ये मेरे कानजी महाराज क्यों इतने ज़्यादा सूख (पतले हो) गए हैं?" तो (हीराजी महाराज) कहने लगे, "खुशालभाई! उनको तो मेरे पहले मोक्ष लेना है। उनको मेरे पहले मोक्ष लेना है, इसलिए ये बहुत प्रयत्न करते हैं। उसमें ये खाते भी नहीं और पीते भी नहीं। एक दिन खायें और एक दिन उपवास करें। अब उनको (गुरुदेव

को) मन में (जो) आये, वैसा करें। लेकिन क्या करें? अर्थात् उनके (गुरुदेव श्री के) आगे तो किसी की चले नहीं।"

बोटाद संप्रदाय के कहलाते थे ना, इसलिए बोटाद में ज़्यादा जाते थे और मेढ़ी के ऊपर बैठे रहते थे। कोई, बहनों को तो ऊपर (जाने की) इतनी मनाहीं थी कि कोई भी बेन जो अकेली आये, तो बिल्कुल मना कर दें। एक भी बेन कोई मेरे पास आना नहीं। सभा में बैठे हों, वहाँ भी कोई अनजान दर्शन करने आ जाये, तो (कहें कि जब) हम ऊपर हों तो कोई बेन आवे नहीं। इतनी ज़्यादा बहनों के ऊपर पाबंदी लगाई। ब्रह्मचर्य के लिए इतने ज़्यादा सख्त तरीके से, उनके भाव आए। फिर वो शास्त्र पढ़ें, तो उसमें से तो सब निकला।

स्थानकवासी में ही है कि प्रतिमा है। हाँ! जिनप्रतिमा है, (ऐसा) स्थानकवासी के ही शास्त्रों में है। फिर (गुरुदेव ने) हीराजी महाराज को कहा कि महाराज! इसमें तो सब है, ये जिनप्रतिमा है। ये (जिनप्रतिमा) नहीं है, आप ये ('ना') लेकर कैसे बैठ गए हो? तो (फिर) ये तो हमने शास्त्र के विरुद्ध किया, (ऐसा) कहलायेगा। तो (हीराजी महाराज) कहें कि, "कानजी! बात तो तेरी सच्ची है। है तो सही (प्रतिमा)। लेकिन कहीं बोल सकें, ऐसा नहीं (अर्थात् कहीं बोलना नहीं)।"

(गुरुदेव ने कहा) कि, "आप लोग स्थानकवासी प्रतिमा नहीं मानते? लेकिन शास्त्र में (तो स्पष्ट है) कि है प्रतिमा।" वे (हीराजी) महाराज कहें, "(कहीं) कुछ बोल सकते नहीं।"

श्रोता : स्थानकवासी में शास्त्र में प्रतिमा है?

पूज्य बेन : हाँ! स्थानकवासी शास्त्र में ही आता है कि प्रतिमाजी (है), अकृत्रिम चैत्यालय भी हैं, उसकी प्रतिमायें हैं, उसकी पूजा करना,

ये सब आता है। ये गुरुदेव ने सब पढ़ा, तो उनसे तो (झूठ) सहन होता नहीं (था)। तो स्थानकवासी के बड़े महाराज थे, उनके सामने ही कहा गुरुदेव ने कि, "ये तुम, ये झूठ (खोटा) क्यों कहते हो? सच्चा कहो। तो इसमें तो है प्रतिमा (ऐसा लिखा है)।"

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : (हीराजी महाराज) से बोला नहीं गया। बोले (ही) नहीं, चुप-चाप रह गए। (तो गुरुदेव कहें) ऐसा धर्म होता है (क्या कहीं)? गुरुदेव कहें कि, "ऐसा कहीं धर्म होता है? अगर सच्चा होता तो दो और दो चार जैसे बेधड़क बात कर सकते थे।" ऐसा उनको (गुरुदेव) को लग गया। "चुप-चाप रहकर खोटा-खोटा बोलना....ये मनुष्य जीवन, ज़िन्दगी ऐसी नकामी (बेकार) निकालनी है?" ऐसे उनको, गुरुदेव को खटक बहुत हो गयी कि ऐसा कहीं होता है (क्या)? "ऐसा जीवन निकालना है? शास्त्र में लिखा कुछ और हम करें कुछ और, तो ये तो मायाचारी कहलाये।" बस! तब से ही उनको (गुरुदेव को) खटक हो गयी कि ये सब हमने अंगीकार तो किया है, लेकिन है (तो) खोटा, ये सब।

फिर श्वेताम्बर के शास्त्र पढ़े। उन्होंने तो श्वेताम्बर को पहले-पहले ही पढ़ लिया। ये श्वेताम्बर, मूर्तिपूजक (को, क्योंकि स्थानक में प्रतिमा की बात आ गयी थी)। लेकिन उसमें भी उनको कहीं मिला नहीं कुछ।

फिर यहाँ से बाद में दामनगर (गए)। एकाध वर्ष बीच में खाली गया होगा, फिर दामनगर गए। फिर दामनगर में दामोदर सेठ की बात गुरुदेव नहीं याद करते थे? उनके पास दिगंबर शास्त्रों से पूरी अलमारी की अलमारी भरी थी। अर्थात् गुरुदेव को दिगंबर शास्त्र में क्या सच्चा है (यह मालूम करना था)। दिगंबर का शास्त्र (समयसार) जैसे ही हाथ में आया, तो उनको ऐसा लगा कि, "आहाहा! इसमें ही सच्चा (तत्व) है।

भव का अंत हो और आत्मा की सिद्धि हो, ऐसा इसमें लिखा हुआ है, इस समयसार में।" समयसार कुन्दकुन्द आचार्य का, पहले विक्रम सम्वत् 1978 (ईस्वी सन् 1921) की साल (में मिला)।

इस शास्त्र (समयसार) में जो मार्ग बताया है, ये मार्ग कहीं और है ही नहीं। ये दिगंबर जो शास्त्र है (समयसार), इसमें ही सब है, ये रहस्य सब इसमें ही है। उसमें तो शुभ-अशुभ की बात तो बहुत पढ़ी, श्वेताम्बर पढ़ा, स्थानकवासी का पढ़ा, सब में शुभ-अशुभ की बात आई। इसमें ये बात तो शुभ-अशुभ से भिन्न (थी), तो एकदम आश्चर्य हो गया। आचको (झटका) आ गया कि, "ओहोहो! इतनी अच्छी बात! ये, दिगंबर के सिवाय ये बात कहीं है ही नहीं।" उनके ह्रदय में ऐसा आया।

उनको एकदम प्रमोद आया और प्रमोद आकर उनको ऐसा लगा कि वास्तव में ये शास्त्र ही अपने जन्म-जरा-मरण का नाश करने वाला, यह शास्त्र है। तो ये कुन्दकुन्द आचार्य का शास्त्र, ये ही भव का उद्धार करने वाला है। इसमें से उनका घोलन चलते-चलते, इसमें से उनको सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया, ऐसा गुरुदेव स्वयं कहते थे। फिर (मुखपट्टी) छोड़ने का निश्चय बाद में किया, बाद में कि, अब अपने को यह छोड़ देना (है), यह (मुखपट्टी)।

श्रोता : इसलिए अनुभव हुआ उसके बाद दृढ़ता आयी कि ये सब अब छोड़ना है।

ब्र. रमाबेन : अनुभव हो गया, उसके बाद ज़्यादा दृढ़ता आयी कि अब ये सब कुछ नहीं (अर्थात् सब झूठा है)।

पूज्य बेन : हाँ! हाँ! फिर इस खोटे (झूठे धर्म) में से निकलने के लिए बहुत प्रयत्न किया। लेकिन ऐसे किस तरह से निकलना? ऐसे तो अप्रभावना ज़्यादा हो जाएगी। (अप्रभावना) न हो इसके लिए बहुत प्रयत्न किया। लेकिन जिस काल में जो बनना हो, उस प्रमाण से बनता है। उस

प्रमाण (विक्रम सम्वत्) 1991 (ईस्वी सन् 1935) की साल में परिवर्तन हो गया।

श्रोता : विछिया में तो ॐ की आवाज़ आयी थी ना (गुरुदेव को)?

पूज्य बेन : विछिया में। हाँ! हाँ! हाँ! हाँ! ॐ ऐसा विछिया में आया था।

ऐसा कहते थे। हमसे कोई पूछे तो जवाब नहीं देते थे पहले टाइम, लेकिन फिर ये ..... आए थे ना, तब गुरुदेव कहते थे उन भाई को कि मेरे से तो कुदरती सब रच गया है। ये शास्त्र पढ़ते थे ना समयसार, वैशाख वद आठम् को सब कुदरती हो गया।

विक्रम सम्वत् 1978 (ईस्वी सन् 1921) में वैसाख वद नवमी के दिन, रात को नौ बजे विछिया गाँव में, पुराने उपाश्रय में, आत्मार्थी महापुरुष कानजीस्वामी को तीर्थंकरों की ॐ ध्वनि का नाद समयसार ग्रन्थराज की विचारणा करते हुए हुआ था।

पूज्य गुरुदेवश्री के वडील बंधु (बड़े भाई) श्री खुशालभाई के स्वहस्ताक्षर में।

पूज्य कहान गुरुदेवश्री की वाणी में श्री परमात्मप्रकाश पर हुए प्रवचन नंबर 51, गाथा नंबर 71, तारीख़ 2-8-1976।

चत्तारिमंगलम् अरिहंतामंगलम् सिद्धामंगलम् साहूमंगलम्
केवलिपण्णत्तोधम्मोमंगलम्।

चत्तारिलोगुत्तमा अरिहंतालोगुत्तमा सिद्धालोगुत्तमा साहूलोगुत्तमा
केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारिसरणंपवज्जामि अरिहंतेसरणंपवज्जामि सिद्धेसरणंपवज्जामि
साहूसरणंपवज्जामि केवलीपण्णत्तंधम्मंसरणंपवज्जामि।

चार सरण, चार मंगल, चार उत्तम जे करे, ते भवसागरथी तरे, ते सकल कर्म आणे अंत मोक्ष तणा सुख लहे अनंत। भाव धरीने जे गुण गाये, ते जीव तरीने मोक्षे जाये। संसार माहीं शरण चार अवर शरण नहीं कोई। जे नर-नारी शरण चार आदरे, तेने अक्षय अविचल पद होई। अंगूठे अमृत बसे लब्धितणा भण्डार, तातें गुरु गौतमने समरीये सदाय मन वांछित फल दातार।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये बहुत चर्चा चलती थी, मूर्ति सम्बन्धी, कहा था ना एक बार? मूर्ति सम्बन्धी चर्चा चली। तो उसमें था ना एक, वो कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि हो, तब तक मूर्ति की पूजा मान्य है। सम्यग्दृष्टि होने के बाद मूर्ति मान्य है नहीं, पूजा है नहीं - ऐसी चर्चा चली। तो (हमने) कहा, सुनो! कि सम्यग्दृष्टि हो जाये, उसके बाद ही उसको निक्षेप (स्थापना निक्षेप) लागू पड़ता है। क्योंकि सम्यग्दर्शन हुआ आत्मा, आनंदमूर्ति प्रभु शुद्ध चैतन्यघन, उसका श्रुतज्ञान हुआ, श्रुतज्ञान, तो श्रुतज्ञान का भेद निश्चयनय (और) व्यवहारनय है। तो (जिसको) नय है, उसको निक्षेप होता है। नय है, वो ज्ञान का भेद है और निक्षेप, वो ज्ञेय का भेद है। तो ज्ञेय का, भगवान की मूर्ति का निक्षेप का विषय किसको होता है? (कि) नय ज्ञानवाले को। (तो) वास्तव में तो श्रुतज्ञान में जो व्यवहारनय हुआ, उसका विषय निक्षेप है। उसको मूर्ति मान्य यथार्थ (सच्ची मान्य) है। मिथ्यादृष्टि को तो नय (भी) नहीं, निक्षेप (भी) नहीं। समझ में आया?

ये बहुत पहले से, अंदर से आती थी और बाहर में विरोध था, सब। तो (हमने कहा) ऐसा नहीं, हम ऐसे नहीं मानते। सम्यग्दृष्टि हुआ, भगवान पूर्णानंद का नाथ, ये परमब्रह्म कहा ना यहाँ, अहाहा! उसको जाना तो श्रुतज्ञान हुआ। तो श्रुतज्ञान है तो पर्याय, लेकिन उसका भेद

वह नय है। श्रुतज्ञान अवयवी है और नय अवयवी का अवयव, भेद है। तो व्यवहारनय श्रुतज्ञान का भेद है। तो व्यवहारनय का विषय निक्षेप पर है, (जो कि) ज्ञानी को लागू पड़ता है, अज्ञानी को नहीं।

श्रोता : बराबर!

पूज्य गुरुदेवश्री : पंडित जी (धन्नालालजी)! समझ में आया? हमने कहा कि संप्रदाय में (हम) आ गए (हैं) और (सिर्फ) इसलिए हम यहाँ ऐसा मानें, ऐसे हम नहीं। 49 वर्ष। 83, 83, (विक्रम) सम्वत् 1983 (ईस्वी सन् 1927), पंडित जी (हुकुमचंदजी भारिल्ल) के जन्म (के) पहले। उनको (पंडित हुकुमचंद भारिल्लजी को) 40 वर्ष हो गए। छोटी उम्र में क्षयोपशम ज़्यादा उनका है। समझ में आया?

जैसा हो वैसे, यहाँ तो जानने की बात है। हम बोटाद सम्प्रदाय में से निकले ना, दिगंबर हुए ना, तो छोड़ दिया (हमने सब कि) हम स्थानकवासी साधु नहीं हैं, ऐसा प्रसिद्ध कर दिया। तो उसके बाद, यहाँ के माननेवाले कोई सेठ हैं, बोटाद में, पैसेवाले। तो उसने पैसा पहले दिया था, उसकी संस्था ने। संस्था है ना स्थानकवासी का, भोजनशाला में, उसने पैसा दिया हो ना, तीन-तीन हज़ार, छह-छह हज़ार, पैसावाले हैं ना, वो यहाँ आयें। तो बाद में कहें कि हमारा यहाँ अभी हक़ है, ऐसा कहें। तब उन लोगों के बीच में चर्चा चली (और) कोर्ट में गयी कि ये लोग अभी स्थानकवासी रहे नहीं, तो उसके पैसे दिए हैं, तो उसका हक़ उसके ऊपर है नहीं। बाद में चर्चा कोर्ट में चली। तो कहें, मूर्ति है ना, शाश्वत मूर्ति है ना, तब सेठ ने ये प्रश्न कोर्ट में किया। मूर्ति यक्ष की है, तीर्थंकर की नहीं।

समझ में आया? बड़ी चर्चा हुई कि यह तो हमारे सम्प्रदाय में लिखा है, हमारी प्रतिष्ठा तो उसमें बहुत थी ना। उसमें (संप्रदाय में) भी

प्रतिष्ठा (बहुत थी हमारी), तीन-तीन हज़ार लोग, बहुत आते थे। हाँ! (विक्रम सम्वत्) 1989 (की साल में) राजकोट (में चातुर्मास हुआ था), तीन-तीन हज़ार लोग (आते थे), विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) की साल में। और दो-दो घंटे पहले (आ जाते थे), मोटर की लाइन लगती हो। विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933), कितने वर्ष हुए? 43 वर्ष हो गए। वो भी ये पंडित जी के (हुकुमचंद भारिल्लजी के जन्म के) पहले की ही बात है।

दीवान आते थे कि आज तो वाद-विवाद, उसमें क्या? दीवान आए, वो वीर। क्या भाई? दीवान, वीर। वीरा, वीरावाला, वीरावाला।

ये तो सब बात थी। यहाँ तो कहना है कि देखो! हम उसमें आ गए हैं, मुँहपट्टी में, इसलिए हमको मूर्ति नहीं मानना, ऐसी चीज़ यहाँ नहीं (चलेगी)। जैसी वस्तुस्थिति है, वैसा ही हम तो माननेवाले हैं। इसलिए समकिती को ही मूर्ति मान्य है, क्योंकि उसको नय होता है और नय का विषय निक्षेप (है), ये तो उसको होता है। अज्ञानी को (जब) नय ही नहीं, तो निक्षेप कहाँ से आया? अहाहा!

श्रोता : बराबर!

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया? यहाँ तो भाई न्याय से बैठे तो बैठे, हम कोई ऐसे मानते नहीं। अहाहा! हमको तो अंदर में बैठना चाहिए, तो (हम) मानते हैं।

फिर तकरार (वाद-विवाद) हुई, वो यक्ष की मूर्ति की। और वो बात तो हम पहले 93, (विक्रम सम्वत्) 1973 की साल, 1973 की साल, कितना हुआ? 73, 27 और 32, 59 वर्ष हुए। तो हम एक जीवाभीगमसूत्र वाँचते थे, 32 सूत्र हैं ना उसमें। जीवाभीगमसूत्र वाँचते

थे। ऐसा उसमें निकला कि शाश्वत प्रतिमा **जिनुस्सेपमाणे।** अभी तक तो हमको सब गुरु ने ऐसा कहा था कि यक्ष की प्रतिमा, यक्ष की प्रतिमा, ये सब, स्थानकवासी में (ऐसा माना था)।

तो हम वाँचते थे (जीवाभीगमसूत्र), तो उसमें ऐसा आया कि जो शाश्वत प्रतिमा है, ये यक्ष की नहीं, ये **जिनुस्सेपमाणे,** ऐसा पाठ आया, **जिन के ऊँचे प्रमाण में है।** तो शंका हुई कि (जो) यक्ष की (प्रतिमा) हो, तो जिन के ऊँचे प्रमाण में, ऐसी उपमा दे नहीं सकते। समझ में आया?

(विक्रम सम्वत्) 1973 की बात है। समझे? वो शाश्वत प्रतिमा है कि नहीं? तो शाश्वत प्रतिमा का वाँचन मैंने (शास्त्र से) किया, तो उसमें (शास्त्र में) ऐसा आया कि शाश्वत प्रतिमा जिन से ऊँचे प्रमाण में हैं। वीतराग जो हैं, उनकी जितनी ऊँचाई है, उतनी ही ऊँचाई उन (शाश्वत प्रतिमाओं) की है। ऐसा (शास्त्र में पाठ) आया। तो हमको तो शंका पड़ी कि ये लोग तो यक्ष की प्रतिमा कहते हैं, लेकिन यहाँ तो जिनुस्सेपमाणे है, जिन के ऊँचे प्रमाण में, ये उपमा यक्ष को तो नहीं दे सकते (हैं)। जिन की प्रतिमा वहाँ हो तो जिन के ऊँचे प्रमाण में (ऐसी उपमा हो सकती है)। क्या कहलाता है, समझे? (ऐसी) उपमा दे सकते हैं।

श्रोता : गुजराती में समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ! ये आया ना (हिंदी), थोड़ी-थोड़ी भाषा में कहते हैं। कि, कहा नहीं? जो शाश्वत प्रतिमा है, है कि नहीं शाश्वत (प्रतिमा)? तीर्थंकर की अकृत्रिम (प्रतिमा), तो उसको (उन प्रतिमाओं को) ये लोग यक्ष की (प्रतिमा) कहते हैं, स्थानकवासी। ये तीर्थंकर की नहीं कहते थे। तो हम पढ़ते थे शास्त्र, तो उसमें ऐसा आया कि शाश्वत प्रतिमा जिन के ऊँचे प्रमाण में है। जैसी तीर्थंकर की ऊँचाई है, वैसी ही

ऊँचाई के प्रमाण में प्रतिमा है। तो हमको शंका पड़ गयी कि अगर यक्ष की प्रतिमा हो, तो तीर्थंकर की ऊँचाई प्रमाण में हो, ऐसी उपमा दे सकते नहीं।

श्रोता : ऐसी उपमा कैसे आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ! समझ में आया? क्यों आया कि नहीं समझ में थोड़ा? भाई! थोड़ी गुजराती आ जाती है, अंदर से। शाश्वत प्रतिमा का शास्त्र हम वाँचते थे, 73 की साल, 60 में एक वर्ष कम, 59 वर्ष पहले की बात है। तो शास्त्र वाँचते थे, उसमें ऐसा निकला, श्वेताम्बर के शास्त्र (में) कि शाश्वत प्रतिमा जो है, ये जिन के ऊँचे प्रमाण में है। तीर्थंकर की जैसे ऊँचाई है, सात हाथ की, पाँच सौ धनुष की, उस प्रमाण में, ऊँचाई के प्रमाण में (ही) प्रतिमा है। तो हमको शंका पड़ गयी कि अगर यक्ष की (प्रतिमा हो)... हम तो मानते थे ये (स्थानकवासी) लोग कहते थे कि (प्रतिमा तो) यक्ष की है, (तो) यक्ष की है, (ऐसा मानते थे)। हमको तो खबर नहीं, हम तो तब नव-दीक्षित थे। चार वर्ष पहले ही तो दीक्षा हुई थी। (विक्रम सम्वत्) 73 में दीक्षा, 73, दीक्षा, तो 63 वर्ष हो गए। बाद में, चार वर्ष के बाद ही यह बात चली। तो कहा, हमारे गुरुभाई थे। तो (जब वे) अकेले थे, कोई नहीं था (आस-पास), तो एकांत में (हमने उनसे) पूछा। खानगी (एकांत में)। कोई नहीं था। मूलचंद जी थे, एकांत में खड़े थे। उनको मैंने कहा कि मैं तो ये जीवाभीगम वाँचता हूँ, तो उसमें शाश्वत प्रतिमा को जिन के ऊँचे प्रमाण में कहा, वीतराग के। तो ये प्रतिमा क्या है? तो (महाराज ने) कहा कि, "है तो तीर्थंकर की।" अरर! तुम लोग बाहर में यक्ष की कहते हो और यहाँ। **हमारी श्रद्धा उठ गयी तब, संप्रदाय में से, गुरु में से। सब में से श्रद्धा उठ गयी। हमको तो**

हमारा खुद से निर्णय करना है। समझ में आया? क्योंकि ये लोग यक्ष की प्रतिमा बाहर कहें और अंदर में एकांत में पूछो तो (कुछ और कहें)।

वो पाठ ऐसा आया है ना, जीवाभीगम शास्त्र है, उसमें ऐसा आया है कि शाश्वत प्रतिमा भगवान की है, ये जिन के (अर्थात्) तीर्थंकर की ऊँचाई के प्रमाण में है। तो ये तीर्थंकर की प्रतिमा के बिना जिन की ऊँचाई प्रमाण में कहने में आता नहीं (है)। तो यक्ष की प्रतिमा (तो) नहीं है, वो (निश्चित है)। समझ में आया?

तो उन्होंने (गुरुभाई महाराज ने) कहा कि है तो तीर्थंकर की। अंदर में (कुछ और) बाहर में कुछ दूसरा कहें। नहीं! नहीं! जिसे भव का डर नहीं, भगवान क्या कहते हैं और कुछ और मानते हैं, ये कहीं आत्मार्थी है? समझ में आया? एक भी वचन वीतराग का उथापना (विरोध करना) और अपनी कल्पना से अर्थ करना, ये कहीं आत्मार्थी है? ये तो संसार (का) अर्थी है। अहाहा! समझ में आया?

बाद में तो हम दूसरा ही अर्थ करते थे कि भगवान त्रिकाल जो हैं, ये वस्तु, त्रिकाली। तो त्रिकाली में त्रिकाल के जाननेवाले का कभी विरह होता नहीं। यहाँ तो अंदर से बैठनी चाहिए, उसके बिना कौनसा (हम) मानते थे? त्रिकाली वस्तु जो अंदर त्रिकाल है, ज्ञेय, तो उस त्रिकाल में त्रिकाल के जाननेवाले का कभी विरह होता नहीं। अनादि से सर्वज्ञ हैं, अनादि से सर्वज्ञ हैं और अनंतकाल तक सर्वज्ञ रहेंगे। समझ में आया? तो फिर बाद में ऐसा कहा कि त्रिकाली भगवान जब रहते हैं, शाश्वत, यहाँ, तो उनकी प्रतिमा भी शाश्वत होनी चाहिए। **जैसे त्रिकाली का, त्रिकाली, त्रिकाल के जाननेवाले का विरह नहीं, ऐसे त्रिकाली को जाननेवाले की प्रतिमा (का) भी, शाश्वत में, विरह होता नहीं। सदा प्रतिमा होती (ही) है।** न्याय समझे?

पंडित जी? ऐसे हम नहीं मानते, (हमने) कहा। हमको अंदर में (बैठना चाहिए)। न्याय से बैठे तो मानें, ऐसे मानना क्या? सम्प्रदाय में ऐसा कहते हैं (इसलिए) मानो, तो ऐसा कहा कि ऐसा हम नहीं (कर सकते)।

हम तो संप्रदाय एक क्षण में छोड़ देंगे, जो विरोध में बात आयी तो। लोगों को डर लगता था। नाम बड़ा था ना (हमारा)। तो लोगों को डर लगता था कि कभी कुछ मत कहना हो! नहीं तो छोड़ देंगे अभी। मार्ग तो यह है।

पूज्य श्री गुरुदेव द्वारा किये हुए प्रवचन का अंश, श्री प्रवचनसार, प्रवचन नंबर 133, गाथा नंबर 118, तारीख़ 18-7-1979 आषाढ़ वद् दशम।

आहाहा! आचार्य, तब तो देखा ही नहीं था हमने शास्त्र। आहाहा! ये तो शास्त्र 1978 में मिला, 1978। 70 और 8। कितने वर्ष हुए? 57 वर्ष। पहले तो 71 से हम तो कहते हैं। ये तो 78 में (मिला)। (71) में तो शास्त्र भी मिला नहीं था पर ये तो अंदर में से बात आई कि अभी तक लोग सम्प्रदाय, जैन-सम्प्रदाय में ऐसा मानते हैं कि कर्म से, ज्ञानावर्णी कर्म से ज्ञान हीन होता है और दर्शनमोह के कारण आत्मा में मिथ्यात्व होता है और अंतराय कर्म के कारण से दान आदि में अंतराय पड़ता है, ऐसी बात है, ये सब झूठ है। (संवत्) 71, 64 वर्ष हुए। 66 वर्ष। दीक्षा लिए तो 66 वर्ष हो गए ना। उसमें दीक्षा ली ना, ढूढ़िया में, स्थानकवासी में। 66 (वर्ष पहले)। अपनी पर्याय की योग्यता, अपना अनुभव, अतीन्द्रिय आनंद का, सम्यग्दर्शन के बिना अनुभव होता नहीं। सम्यग्दर्शन में आत्मा अतीन्द्रिय आनंद का अमृत का पूर, उसका स्वाद आता है, तो स्वाद से जानने में आता है कि यह आत्मा अनंत पूर्णानन्द

है। तो समकिती को अपने स्वभाव की विपरीत दृष्टि से जब पराभव था, ये पराभव होता नहीं। अहाहा! थोड़ी जो ये कमजोरी अस्थिरता की है, इतना पराभव होता है।

(समयसार 19वीं बार प्रवचन नंबर 110 का अंश)

(विक्रम संवत्) 1978 (ईस्वी सन् 1922) में समयसार हाथ में आया। आया और अंदर से कहा, आहाहा! सेठ जो था वो संप्रदाय का आग्रही था, परंतु उस समय तो (हम स्थानकवासी संप्रदाय में) थे ना। (कहा-) सेठ! यह पुस्तक अशरीरी (होने के लिए) है। सिद्ध होने के लिए और शरीर रहित होने के लिए यह पुस्तक है। पाटनी जी! (विक्रम संवत्) 1978 दामनगर, दामोदर सेठ थे ना। अभी तो पैसे बढ़ गए परंतु तब तो, ये 70 वर्ष पहले दस लाख की पैदाइश (थी)। दस लाख रुपए और चालीस हज़ार की आमदनी (लेकिन) दृष्टि बहुत विपरीत थी। परंतु उस समय तो उसमें (मुँहपट्टी में) थे, इसलिए यह नया लगा। आहाहा!

* * *

Track Number 64

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन की भावना के साथ पूज्य बेन शांताबेन माता-पिताजी वगैरह पूरे परिवार के साथ गढड़ा गाँव में, सौराष्ट्र में विक्रम सम्वत् 1981 में यानि कि ईस्वी सन् 1925 में, दीक्षा लेने की भावना के साथ गए थे। पर पूज्य गुरुदेवश्री ने दीक्षा का स्वरुप समझाया, तब से पूज्य कहानगुरु पर पक्की श्रद्धा बैठ गयी और तब से हर चातुर्मास में जाते थे।

पूज्य बेन : पंद्रह वर्ष की उम्र में मैंने अपने माता-पिता को सब को कहा कि इस भव में ऐसा करना है, ऐसी आराधना करनी है कि किसी भव में कोई कर्म का उदय आये ही नहीं।

श्रोता : वाह रे वाह!

पूज्य बेन : मुझे, मुझे तो आत्मा की लगन थी। पर तब तो गुरुदेव मिले भी नहीं थे लेकिन अंदर से ही ऐसी भणकार आती थी कि मुझे तो आत्मा का कल्याण करना है। इस भव में मुझे ऐसा करना है कि किसी भव में कर्म का उदय नहीं आये।

श्रोता : वाह! वाह!

पूज्य बेन **: ऐसा मुझे अंदर से जोर से आता था। मैं तो किसी अलग तरीके से ही ज़िन्दगी निकालूँगी। तब तो गुरुदेव भी नहीं मिले थे, (लेकिन) मुझे तो मेरे आत्मा की उज्जवलता ही प्राप्त करनी है (ऐसा लगता था)। (मैंने सबको कहा) मेरी आप फ़िक्र तो करो मत, मैं तो सब तरीके से उज्जवल रहने वाली हूँ।**

मेरा शरीर गोरा था ना, इसका मुझे बहुत डर था कि यह शरीर इतना गोरा, ऐसा शरीर किसलिए मिला? कोई अपने ऊपर नज़र खोटी करे, ऐसा शरीर अपने को नहीं होना चाहिए।

तब फिर (विक्रम सम्वत्) 1981 (ईस्वी सन् 1925) की साल में मैंने पहली-पहली बार गुरुदेव के दर्शन किये। तब इस शरीर कि उम्र पंद्रह-सोलह वर्ष की थी। तब पहली-पहली बार दर्शन किया गुरुदेव का, गढड़ा चौमासा था, वहाँ। तब हमने गुरुदेव को देखा। हम अमरेली में थे ना, तो अमरेली में स्थानकवासी महाराज आवें, तो हम (उनको) सुनने को जायें, तो उनकी सुनें कथा सब। तो यह सब सुनने के बाद जब गढड़ा गए तो गुरुदेव को देखा, तो देखते ही मुझे ऐसा लगा कि, "ओहो! ये तो कोई महापुरुष हैं। ये तो पुरुष ही कोई अलग हैं।" और जब वाणी निकली तो, (उनकी) वाणी की मुझे उस दिन की एक बात का याद है। तब गुरुदेव ऐसा बोलते थे गढड़ा में, चौमासा था ना, तो गुरुदेव व्याख्यान में बोलते थे कि, **आत्मा मन-वचन-काया से पहली पार (इसके परे) है।** तो मुझे ऐसा लगा कि ये पहली पार कहाँ रहता है? पहली पार है, तो किस तरह से ढूँढने जाऊँ? कि मन-वचन-काया से (पहली पार), तो पहली पार तो नदी-नाला को फाँदकर पहुँचू, तब वो मिले। तब तो ऐसा लगता था। तो पहली पार अर्थात् कितने देश को उलाँघकर जाऊँ? पहली पार कहाँ रहता होगा ये (आत्मा)? जब नहीं समझ आये, तब ऐसा लगे कि पहली पार अर्थात् कहाँ? तब ऐसा होता था। ये सब देखा (आत्मदर्शन हुआ) तो पता चला कि मन-वचन-काया, उससे पहली पार (उससे पार) आत्मा है।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : फिर (गुरुदेव) कहें कि **पहाड़ में जैसे बिजली पड़े, उसके दो टुकड़े हो जायें, तो फिर जुड़े नहीं। उस ही प्रकार ऐसे**

अंदर भेदज्ञान हो, तो दो भेद हो जायें (फिर वो जुड़ते नहीं हैं)। तो मुझे तो इतना नया लगा कि, "अहाहा! ऐसी बात तो कोई करता ही नहीं। ये (तो) महापुरुष ही हैं।" और चेहरे के ऊपर इतना ज़्यादा पुण्य दिखे, तो ऐसा लगे कि ये (तो) महापुरुष हैं और उनकी वाणी इतनी मीठी लगी। फिर मैंने मेरे पिताश्री को कहा कि, "बापूजी! अब मैं किसी और का व्याख्यान नहीं सुनूँगी। अब तो मैं इन कानजी स्वामी का (ही व्याख्यान) सुनूँगी।"

पहले तो स्थानकवासी में थे, तो (गुरुदेव) चार महीने चौमासा करें, तो वहाँ जा सकते थे। दूसरी किसी जगह (तो) मैं जा नहीं सकती थी। मैंने कहा कि, "कानजी महाराज का चौमासा जहाँ हो वहाँ जाऊँगी। मैं किसी का व्याख्यान सुनने को नहीं जाऊँगी।"

तुमको सबको खबर नहीं कि गुरुदेव जब पहले संप्रदाय में थे, तब ऐसी सीख गुरुदेव देते थे। गुरुदेव की मेरे ऊपर बहुत करुणा थी। मुझे तो (पहले) दीक्षा लेनी थी। मुझे खबर नहीं थी (कि दीक्षा क्या है)। भेदज्ञान करूँ, ये तो खबर (थी), लेकिन गुरुदेव ने दीक्षा (ले) ली, तो हम भी दीक्षा ले लें। इसलिए मेरे बापूजी, पिताश्री ने गुरुदेव को ये बात कही कि, "साहेब! इसको (शांताबेन को) दीक्षा-दीक्षा का बहुत है।" तो गुरुदेव ने कहा कि, "यहाँ चौमासा करा दो, फिर तुम्हारे सामने जो दीक्षा का बोले तो मुझे कहना।"

गुरुदेव का (विक्रम सम्वत्) 1984 (ईस्वी सन् 1928) की साल में राणपुर में चौमासा था। तब गुरुदेव दीक्षा के ऊपर इतना ज़्यादा प्रहार करें, (कहा करें) कि दीक्षा में ऐसा होता है, दीक्षा में ऐसा होता है, ऐसा कहें। फिर चौमासे में मेरी माँ की तबियत थोड़ी ख़राब हो गयी तो मुझे वहाँ अमरेली बुलाया।

मासीबा के साथ मैं गुरुदेव के दर्शन करने गई। तो गुरुदेव ने कहा कि, "कहीं सुना था कि आप दीक्षा लेने वाले हो?" (तो) मैंने कहा, "ना साहेब! दीक्षा नहीं लेना।"

(गुरुदेव ने कहा कि) मुझे मणिभाई खानगी में (अकेले में) कह गए थे, वो मैं आज आपको प्रगट कहता हूँ। (मणिभाई ने कहा कि साहेब!) ये शांता दीक्षा-दीक्षा का करती है। (तो गुरुदेव ने उनको बोला) कि आप फ़िक्र करो मत, चौमासा पूरा होने दो, फिर जो (दीक्षा का) कहे तो कहना। फिर मैं अमरेली चार दिन रही। चौमासा छोड़कर मुझे जाना अच्छा लगे नहीं लेकिन मेरी माँ की तबियत ज़्यादा ख़राब हो गयी इसलिए बापूजी ने कहा कि तुम चार दिन के लिए आ जाओ। फिर (मैं वहाँ पहुँची तो पिताजी ने पूछा कि) "अब तेरा दीक्षा का कैसा भाव है?"

शिवबाई स्वामी मेरे पिताजी की फूफी लगती थी, इसलिए मुझे तो वहीं दीक्षा लेनी थी, दूसरी किसी जगह (पर) नहीं। वो (बाकी सब) तो ज़्यादा क्रिया-कांडी थीं और (शिवबाई स्वामी) आत्मार्थी थीं। (तो मैंने कहा) मैं (दीक्षा) लूँ तो शिवबाई स्वामी के पास ही लूँ और कहीं दीक्षा नहीं लूँगी। दूसरी कोई साध्वी (आर्यिका) मुझे दिखती नहीं (हैं)। वहाँ उनका झगड़ा हुआ। उनका गढड़ा (में) चौमासा था और गुरुदेव का राणपुर (में) चौमासा था। उन तीनों (अन्य साध्वियों) के बीच झगड़ा हुआ, क्या आपने सुना? (गुरुदेव ने पूछा।) खबर नहीं थी, मुझे कहीं खबर नहीं थी। आप कहते हो, ये सत्य हकीकत है। आप कहते हो, ये बात सच्ची है।

वहाँ तक दीक्षा की तैयारी की थी कि शास्त्र भी ले लिए थे। हाथ के लिखे हुए आचारांग, सूर्यगडांग, हाथ के लिखे हुए ले लिए। ये लिखा लिए थे (इतनी दीक्षा की तैयारी कर ली थी)। वे शास्त्र सूर्यगडांग,

आचारांग ले लिए थे। उनमें आत्मा की बात आती थी (जो) मुझे बहुत अच्छी लगती थी। तो मैंने कहा कि दो शास्त्र तो रख ही लो।

मेरी माँ का मेरे ऊपर (राग था), लड़की के ऊपर तो राग होता ही है ना। तो मेरी माँ ने वे (शास्त्र) देखे। उनको तो बहुत राग, (ऐसा लगे) कि ये किसी दिन दीक्षा न ले। तो सारे दिन वे पुस्तक देखकर रोती ही रहें कि, "अररर! पुस्तक भी ले ली इसने तो, अब तो दीक्षा लेगी ही।" फिर मैं अमरेली गयी ना, राणपुर से, तो मैंने माँ को कहा कि, "आप फिकर करो मत (मुझे अब दीक्षा नहीं लेनी)। दीक्षा (तो) नहीं लेनी, (लेकिन) कानजी स्वामी का जहाँ चौमासा हो ना, वहाँ चार महीने मुझे भेज देना।" तो कहें कि, "हाँ भेजेंगे! जहाँ तू कहे, जो तुझे चाहिए, वो तुझे देंगे, परन्तु तू दीक्षा मत ले।" मैंने कहा, "मैं दीक्षा नहीं लूँगी, मुझे गुरुदेव ने समझाया है।" (माँ को लगा) हाइश! भला होवे कानजी स्वामी का।

मैंने कहा (कि), "गुरुदेव ने (मुझे) समझाया और उसका सच्चा स्वरुप मुझे अब समझ आया कि दीक्षा में कोई सार नहीं। पहले तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है, फिर दीक्षा लेना। इसमें मुझे सम्यग्दर्शन तो (है) नहीं, इसलिए मैं किस तरह से दीक्षा ले सकूँ?" मेरी माँ को भाव आया कि, "हाइश! भला हो! मैं तो बार-बार कानजी स्वामी के पैर लगूँ।" मेरी माँ को बेचारी को बहुत (राग) था कि, "अच्छा किया (कानजीस्वामी ने) समझाकर।"

(फिर मैंने कहा) कि, "कोई फ़िक्र करो मत मैं दीक्षा नहीं लूँगी। मैं तो बस चौमासा करने जाऊँगी।" चार महीने जा सकें, फिर तो कहीं जा सकें नहीं। आठ महीने गुरुदेव सब जगह फिरें। चार दिन, आठ दिन, दस दिन के लिए (जाएँ), फिर तो जा ही नहीं सकते थे।

मेरे ऊपर गुरुदेव और बेन (बहिनश्री) सबका (उपकार है)। आरज़ा की मारवाड़ में (साध्वियाँ) ऐसे ऊपर (हाथ ऊपर करके) यहाँ तक, इतने तक ओढ़ें। गुरुदेव ओढ़कर बताते थे व्याख्यान में, ऐसा (हाथ ऊपर करके) और ऐसे हाथ रखकर अर्थात् गुरुदेव कहें कि ब्रह्मचारी को इस तरह से रहना चाहिए। ऐसा मुझे कहा व्याख्यान में, लेकिन ख़ास करके हमको समझाने के लिए (ऐसा कहा)। ऐसे हाथ रखकर दिखाएँ। गुरुदेव स्वयं ही ऐसे हाथ रखते थे ना। ऐसे ओढ़कर (बताते थे) कि इस तरह से ब्रह्मचारी को (रहना चाहिए)।

गृहस्थ बेचारा हो तो, उसके घर तो (खाने में) तेल-मिर्ची ज़्यादा हों ना, तो गुरुदेव उपदेश देते थे। गुरुदेव को भी ऐसी ब्रह्मचर्य की धुन थी कि जहाँ आहार लेने जायें, तो वहाँ ही कहने लग जायें। ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य पालन हो, उसको ज़्यादा मिर्ची नहीं खाना (चाहिए), ज़्यादा तेल नहीं खाना (चाहिए), पतले वस्त्र नहीं पहनना, ऐसे ढँककर रहना। इतना ज़्यादा, गुरुदेव ऐसा बहुत कहते थे पहले और हम सबके लिए, खास (तो) मेरे स्वयं के लिए। मेरी, मेरी बात मैं करूँ। मैंने सब सुना है, इसलिए मुझे ऐसा गुरुदेव का असर (प्रभाव) अभी तक है। इसलिए मेरा आदेश मैं तुम सब बहनों को देती हूँ। सम्प्रदाय में थे ना तब उनको बहुत था इस जाति का (उपदेश देने का भाव)। ऐसे व्यवहार का तो बहुत कहते थे, ऐसा।

(यदि अच्छा) पहनना-ओढ़ना ही था, तो ये सब तो संसार में (तो) था ही (फिर त्याग क्यों किया), ऐसा (गुरुदेव) कहें। (अब) इसका त्याग कर दिया (है, इसलिए) अब एकदम वैरागी (रहो)। गुरुदेव जब से माथे (सिर के) ऊपर से चले गए, तब से एकदम वैराग्य, वैराग्य।

चौमासा राजकोट में विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) की साल में था। सब तरफ प्रभावना बहुत (थी), गुरुदेव की वाणी के

ऊपर लोग ऐसे गिर पड़ते थे। स्थानकवासी (समाज) में इतना उनका मान था, बहुत मान और स्थानकवासीवाले ऐसा मानते थे कि कानजी स्वामी के कारण हमारा धर्म ऊँचा आ गया है। इसलिए वे गर्व करते थे कि ऐसे कानजी स्वामी जैसे हमारे शासन में हुए। इसलिए ये लोग ऐसे (कानजीस्वामी को) पद-पद में पूजें।

चौमासा करने जायें तब इतने लोग चौमासे में आवें, बहुत आवें। चौमासा जिसको रखवाना हो, उसको बहुत विचार करके चौमासा रखना पड़े। अर्थात् कि कानजीस्वामी का चौमासा करवाना अर्थात् हाथी बाँधने जैसा है क्योंकि इतने लोग आवें, इतना (सब) हो और गाँव-गाँव से इतने लोग आवें। हमारे अमरेली में भी एक चौमासा किया था। वहाँ भी इतने लोग, बहुत लोग आवें।

मुझे गुरुदेव के वचन के ऊपर बहुत पक्की श्रद्धा थी।

श्रोता : हाँ जी!

पूज्य बेन : तब मेरा आत्मा मुझे ऐसा जवाब देता था कि यह जो श्रद्धा है, ये श्रद्धा है, ये भेदज्ञान की जाति की हो गयी है। ऐसा मेरा आत्मा मुझे जवाब देता था। ये श्रद्धा है, इस श्रद्धा (और) भेदज्ञान (के सहारे), इसके (सहारे) से आगे चलते हैं, ऐसा। ऐसा मेरा आत्मा मुझे खात्री (गारंटी) देता था लेकिन सम्यग्दर्शन होने के पहले ऐसा बोल सकें नहीं और मुझे बोलने का अधिकार भी नहीं था। इसलिए मैं (नहीं बोली) लेकिन मेरा आत्मा मुझे ऐसी खात्री (गारंटी) देता था कि यह भी ऐसा एक जाति का भेदज्ञान है कि गुरु के ऊपर पूरा-पूरा विश्वास है। इस विश्वास में दूसरी सारी (अन्य को सुनने की) रुचियाँ हीन हो गयीं, इससे आत्मा आगे जाता है। मेरा मुझे पूरा-पूरा विश्वास आता था। पहले तो व्यवहार से ऐसी (श्रद्धा आवे ना)।

श्रोता : हाँ बराबर!

पूज्य बेन : कोई बेन हों, उनके सामने बोलूँ कि ऐसी श्रद्धा है (तो न बोल पाऊँ)। अब बोलें तो ये प्रामाणिक कहलाये (समकित के बाद बोलें तो)। लेकिन उस वक़्त तो प्रामाणिक नहीं थी। भेदज्ञान होने के बाद जो कथन हो, ये प्रमाणपूर्वक हो। वो तो पहले ऊपर-ऊपर से बोलते थे लेकिन अंदर आत्मा विश्वास दे देता था।

आचार्यों को तो बहुत समझते नहीं थे, लेकिन गुरुदेव के प्रति पूरा-पूरा विश्वास (था)। इसलिए ये आत्मा खात्री (गारंटी) देता था कि गुरुदेव के वचन के ऊपर इतना विश्वास (है), ये विश्वास है, ये मेरे आत्मा का विश्वास है। ये आत्मा का (जो) विश्वास है, (ये) मेरी आत्मा की पात्रता है। इससे ही मार्ग में आगे जाया जा सकता है। ये मार्ग में आगे जाने में निमित्त है।

स्वयं, इतने बहुमान, बहुमानपूर्वक, ऐसे के ऐसे मानना नहीं (बल्कि) बहुमानपूर्वक उनके वचन की श्रद्धा, बहुमानपूर्वक, बहुत भक्तिपूर्वक गुरुदेव के वचन की श्रद्धा (करे), ये भी एक जाति का भेदज्ञान है, ऐसा समझना। (क्यों)कि दुनिया से जुदा पड़ गया ना, दूसरे भावों से जुदा पड़ गया (वो जीव)। यह श्रद्धा, मैं भी (ऐसी भावना) भाती थी कि यह श्रद्धा है, इसलिए आगे, चोखी इसमें श्रद्धा करनी ही है।

सरलता (और) उसके साथ ये गुरुदेव का विश्वास बढ़े, तो एकदम पात्र हो जाये। इसके साथ महापुरुषों के वचनों की श्रद्धा (और) स्वयं के ह्रदय की सरलता (हो)। सरलता, ये मुख्य गुण है। सरलता और सत्यता, ये मुख्य गुण है लेकिन इसके साथ में महापुरुषों के अनुभव के ऊपर श्रद्धा और विश्वास (और) अर्पणता, ये सब उसके साथ में मिलें, तो बहुत पात्रता का कारण है।

श्रोता : वाह वाह!

पूज्य बेन : पात्रता का कारण है। इसके साथ मिलना चाहिये (नहीं तो) अकेले सरल तो बहुत जीव होते हैं (और) सत्य भी बहुत जीव हों। लेकिन यह तो आत्मार्थी, स्वयं की आत्मार्थता की जिज्ञासा, लगनपूर्वक, आत्मार्थपने, महापुरुष के बहुमानपूर्वक, उनके गुणों की श्रद्धा (और) उनके वचनों की श्रद्धा (करता है), यह स्वयं के आत्मा के ज़्यादा नज़दीक जाने का कारण है। उसके कारण आत्मा एकदम नज़दीक हो जाता है। (गुरु के वचनों) का बहुमान आये, तो इस बहुमान से जगत के सभी पदार्थों का बहुमान हीन हो जाता है। किसी के प्रति बाद में बहुमान आता नहीं, ऐसी श्रद्धा है। इसलिए ये भी, इतना (तो) आगे आ गया ना, नज़दीक हो गया ना, पात्र हो गया, आगे आ गया, तो अब तो थोड़ा पुरुषार्थ करे, तो एकदम पात्र हो जाये।

आत्मा पात्र हो, तो स्वयं, स्वयं को रास्ता बता देता है। महापुरुषों के वचन निमित्त (बनें) और स्वयं की पात्रता (हो), ये स्वयं को रास्ता बता देता है कि इस रास्ते पर चल। रास्ता स्पष्ट बता देता है, फिर किसी को पूछना नहीं पड़ता। रास्ता बता देता है। आत्मा शक्तिवान है ना, लायकात और पात्रता हुई तो फिर उसके ज्ञान में मार्ग आ जाता है। आत्मा महापदार्थ जिस पुरुष ने दिया, तो वे पुरुष तो बारम्बार याद आने ही चाहिए कि मुझे यह आत्मा इस महापुरुष से मिला (है)। उनका उपकार तो भूल ही नहीं सकता।

* * *

Track Number 65-A

ईस्वी सन् 1930 में पूज्य श्री कहान गुरुदेव का चातुर्मास अमरेली में (हुआ) और प्रथम में प्रथम समयसार पर प्रथम प्रवचन।

श्रोता : आपने तो वक्त की अपेक्षा से तो आपने बहुत पुरुषार्थ किया बेन! ये तो आपने बहुत परुषार्थ किया।

पूज्य बेन : अर्थात् उस शास्त्र को पढ़ने के लिए उनकी (गुरुदेव की) इतनी ज़्यादा लगन लगी कि चौमासा किया अमरेली में, हमारा गाँव अमरेली है ना, श्रीचंदजी, वहाँ एक हँसराजभाई थे, रामजीभाई हँसराज। उनको हँसराजभाई को शौक (उत्साह) था, पुस्तकों का शौक (उत्साह) था, बहुत। बुद्धि बहुत नहीं, लेकिन शौख (उत्साह) बहुत। पैसेवाले व्यक्ति (थे), तो दिगंबर के शास्त्र पूरी अलमारी की अलमारी भरी हुई रखी थी। तब गुरुदेव तो एक गाँव से दूसरे गाँव पैदल चलकर (विहार करते) थे, इसलिए पुस्तक साथ में न ले जायें। जिस गाँव में पुस्तक हो, वहाँ जायें। महीना, चौमासे में वहाँ रहें और शास्त्र पढ़ना पूरा हो जाये।

अमरेली में आते थे ना तो व्याख्यान ही न वाँचें। रात में उजाले की रात हो, (तो शास्त्र पढ़ें)। इस (बिजली की लाइट) में तो पढ़ते नहीं थे। उजाले की (चाँदनी) रात हो, तो पढ़ें। तब गुरुदेव की छोटी उम्र थी, तो आँखों की रोशनी भी अच्छी थी। तो रात को जब तक ठीक लगे, तब तक पढ़ते थे। सोना हो तब सोयें और जब तक उजाला हो तब तक पढ़ते थे। और परा (उपनगर) में रहते थे, गाँव में नहीं रहते थे। इस तरह से उन्होंने (गुरुदेव ने) शास्त्र पढ़े, उसमें दिगम्बर में क्या है, ये

दिगम्बर का दोहन किया (और) उसमें से तत्व खाया। (तत्व) निकाला, खींचा, निकाला और उसमें उनको एकदम रस लगा।

अमरेली में चौमासा किया (विक्रम सम्वत्) 1986 (ईस्वी सन् 1930) की साल में। तो वहाँ भी व्याख्यान में गुरुदेव ने समयसार ही पढ़ा। समयसार ही पढ़ा। (कहते थे) कि अपने को तो समयसार ही पढ़ना (है), मुझे इसमें रस बहुत आता है। हम सब सुनने वालों को, हम सबको बहुत रस आया, उसका (समयसार का)। बहुत रस आया! (सब कहें कि) ये भले पढ़ें गुरुदेव (समयसार)। उनको डर नहीं लगता था। अमरेली में तो कोई विरोध कोई करने वाला नहीं था।

बारह महीना गुरुदेव घूमें तो बारह महीने साथ में हम घूम नहीं सकते थे। कोई बार चार दिन, आठ दिन, इससे ज़्यादा नहीं जाते थे। लेकिन जहाँ चौमासे में गुरुदेव रहें, वहाँ हम जाते थे। तो चौमासे में जायें वहाँ बात सुनें। चार ही महीने बराबर, एक धारा से। बाकी आठ महीने में तो कहीं जा नहीं सकते थे। इसलिए चार महीने चौमासे में सुनते थे। गुरुदेव तत्वज्ञान की (ही) अकेली बात करते थे। उसमें से कितने गाँव मैं गयी, सब वही बात की।

सबसे पहले गढडा गए, गढडा। (विक्रम सम्वत्) 1981 (ईस्वी सन् 1925) की साल में गढडा में चौमासा हुआ। तब (मेरी) पन्द्रह वर्ष की उमर पूरी हुयी थी। वहाँ गुरुदेव की ऐसी वाणी, ऐसा अध्यात्म लगे। उनकी वाणी के ऊपर इतना ज़्यादा प्रेम आया कि ओहोहो! ये तो कितनी अच्छी बात करते हैं। ये तो गुरुदेव ऐसा कहते हैं कि बस... अंदर से जैसे पहाड़, पर्वत के दो टुकड़े हो जाते हैं, तो वो फिर कभी एक नहीं होते। ऐसे अंदर में से राग और ज्ञान दो अलग टुकड़े हो जायें, तो वो फिर कभी एक नहीं होते। तो यही करना है (अपने को तो)।

अपने को तो जो ये गुरुदेव मूल कहते थे, वो (हम) ग्रहण करते थे। वो ग्रहण करके लिख लूँ और फिर उसका विचार करूँ। पूरा व्याख्यान नहीं लिखा, लेकिन उसमें (से) जो अपने स्वयं के विचार करने लायक हों, उतना लिख लेती थी कि मुझे ये भेदज्ञान की, ये जो जुदा पड़ जाये, वो (बात) बहुत अच्छी लगती थी। इसलिए मैं बारम्बार लिखकर के उसके ऊपर विचार करती थी।

पहले गुरुदेव (बोलते थे), अब तो नहीं बोलते। पहले (परिवर्तन पहले) ऐसा बोलते थे। अभी तो ऐसा कहते हैं कि शरीर, वाणी अलग, आत्मा अलग, सब भिन्न-भिन्न हैं। पहले ऐसा कहते थे शुरुआत में, संप्रदाय में, (कि) **आत्मा मन से, वचन से, काया से पहली पार (इससे पार) है।** ऐसा कहते थे कि पहली पार है। तब तो (हमको सम्यक) ज्ञान प्रगट नहीं हुआ था, तो ऐसा लगता था कि मन से, वचन से, काया से पहली पार (है), तो पहली पार (जो) आत्मा है, ये कैसा है? ये मन-वचन में कहीं आत्मा नहीं। ये पहली पार आत्मा है, इस आत्मा को (ही) देखना है, अपने को। (अर्थात्) इसका ही प्रयत्न करना (है), ऐसा। ये गुरुदेव बहुत बोलते थे, मन-वचन-काया से पहली पार आत्मा है। मन-वचन-काया के अंदर आत्मा, शुद्धात्मा नहीं, ऐसा। अर्थात् ये हमको बहुत अच्छा लगता था कि ओहोहो! ये कैसा आत्मा है! ये तो ये गुरुदेव ही ऐसी बात करते हैं। ऐसी बात तो कोई करता नहीं।

मैं अमरेली (में जब) थी, तो दूसरे साधुओं का व्याख्यान सुनने को जायें, तो उसमें तो कोई कहीं (ऐसी बात न करे)। कथा सब कहते थे। गढडा गये थे गुरुदेव के दर्शन करने, तो गुरुदेव तो पूरी आत्मा की ही बात करें कि ये आत्मा मन से वचन से काया से पहली पार है।

ओहोहो! ये कैसा आत्मा है! ये वास्तव में आत्मा है। ये आत्मा जानने जैसा है। तब से लगन शुरू हो गयी।

ये बात सुनूँ तो मुझे इतना उल्लास आये कि आहाहा! ये सच्ची बात है। ये कानजी स्वामी कहते हैं, ये बात सत्य है। ये बात करने जैसी है।

उन्होंने ऐसी बात की कि जैसे पहाड़ में, **पर्वत में जैसे बिजली गिरे और दो टुकड़े हो जायें, ऐसे अंदर आत्मा में स्व और पर के दो भेद पड़ जायें।** ये बात मुझे इतनी नयी लगी, इतनी अच्छी लगी, इतनी मीठी लगी और इतनी अच्छी लगे वो बात, इतनी अच्छी लगे (कि) अहाहा! ये बात तो ये कानजी स्वामी ही कहते हैं और इस बात को ही ग्रहण करना है। निर्णय करना (है), वाँचना (है), यही अपने को पुरुषार्थ करना है।

पहले से पुरुषार्थ तो शुरू से करते थे, फिर बहिनश्री मिलीं। उसके बाद, बहिनश्री भी मुझे बहुत समझाती थीं, ये भेदज्ञान का (मंत्र)। (बहिनश्री कहती थीं) कि अपने को इसमें (गुरुदेव के व्याख्यान में) से भेदज्ञान का ग्रहण कर लेना।

और ये जो चैतन्य का स्वरूप अभी प्रकाशित होता है, धीरे-धीरे, ये तो बहुत स्पष्ट (अब प्रकाशित हुआ है)। बहुत अच्छा! तब तो गुरुदेव जब संप्रदाय में थे, तब तो बस (वो) कहते थे और हम ग्रहण कर लेते थे। उनके व्याख्यान में से सार ग्रहण कर लिया। ग्रहण करके अपना को अपनी आत्मा का पुरुषार्थ करना। इस तरह से पुरुषार्थ किया।

व्याख्यान में से जो चैतन्य का स्वरुप आये, जो भेदज्ञान का स्वरुप आये, ये अपने को ग्रहण कर लेना। ग्रहण करके फिर उसके बाद में अपने को उसके ऊपर पुरुषार्थ करने का काम चालू करना। इस तरह से भेदज्ञान करना।

(भेदज्ञान की बात आये), तो ऐसा लगे कि बस ये बात आयी, अपने को विचार करने के लिए। अपने को पुरुषार्थ करने के लिए यह बात है। ये गुरुदेव की वाणी में आये, ये ग्रहण कर लें। पहले लिख लेती थी कि अपने को इसका विचार करना (है)। यह भेदज्ञान (की बात), अपनी आत्मा के लिए यह बात है। बाकी तो, तब तो संप्रदाय में कथानुयोग (प्रथमानुयोग) ही वाँचते थे सब। लेकिन गुरुदेव तो कथानुयोग पर पूरा अध्यात्म ही उतारते थे। अपने अपनी आत्मा का पुरुषार्थ हो, यही बात ग्रहण करना। अब तो भेदज्ञान की थोकम-थोक बात आती थी। पूरे दिन, मानो कि हर घंटे भेदज्ञान की ही बात आती है, गुरुदेव के व्याख्यान में। पहले इतनी सारी बात भेदज्ञान की नहीं चलती थी। ये ग्रहण करना अपने को तो, अपनी आत्मा के लिए, गुरुदेव का अनुग्रहपूर्वक दिया हुआ उपदेश। लेकिन (आगे) अपने को अपनी आत्मा से इस बात (का मिलान करना)। यह जो गुरुदेव कहते हैं, यही (अपने को) करना है। यह करना है।

आत्मा की बात आये तब मेरा हृदय, एकदम आत्मा उछल पड़ता था। आत्मा की बात करते थे ना, एक बार, पहले, परिवर्तन करने के पहले, तो व्याख्यान में ऐसी अनंत गुण की ऐसी बात आयी, ऐसी बात आयी कि मुझे इतना उल्लास आया, इतना उल्लास आया, इतना ज़्यादा कि जैसे ये तो पूरे अनंत गुण उछलने लगे एकदम। ऐसा गुरुदेव बोलते थे ना कि मुझे एकाग्रता में इतना उल्लास आया, इतना उल्लास आया,

इतना उल्लास आया कि ये चैतन्य आत्मा उछल पड़ा, उस समय। ऐसा बहुमान आये तो आत्मा उछल जाता है। कहने वाला चेतन, चेतन (गुरुदेव श्री), उनकी वाणी में स्वयं का अनुभव कहें और सुननेवाला चेतन (पूज्य शांताबेन), तो ये चेतन-चेतन का मेल खा जाये, तो ऐसा उल्लसित हो जाये।

श्रोता : ओहो!

पूज्य बेन : दिये (दीपक) में से दिया प्रगट होता है। दिये में से दिया प्रगट होता है।

श्रोता : जी हाँ!

पूज्य बेन : व्याख्यान में भेदज्ञान की बात करें ना, तो ये बात ग्रहण हो जाये। ग्रहण करके फिर घर आऊँ, रात को, तब तो सामायिक-प्रतिक्रमण करती थी। तो सामायिक में बैठे-बैठे यही विचार आये कि ये (जो) गुरुदेव कहते हैं, यही प्रगट करना है अपने को तो। यही करना है, यही करने जैसा है। ऐसा अवसर किस दिन आएगा? इसका रटन करते-करते खूब लगन लग गयी।

श्रोता : गुरुदेव के उपदेश से और पूर्व का संस्कार इसलिए (आपको) जल्दी (सम्यग्दर्शन) हुआ? और हमको तो पूर्व का संस्कार ही नहीं है।

पूज्य बेन : तुम भी पूर्व के संस्कारी हो। (आत्मा शाश्वत है।) जब संस्कार डाले, तब डाल सकता है।

इतनी ज़्यादा मुझे अच्छी लगी ये बात कि मुझे आत्मा के ऊपर बहुत वजन आया कि यह करने जैसा है, करने जैसा तो यह है। हाँ! यह ग्रहण हो गया मुझे, एक घंटे में। यही बात मुझे बहुत याद आयी। अभी

तक यही बात (आत्मा पहली पार वाली बात) याद है। (विक्रम सम्वत्) 1981 (ईस्वी सन् 1925) की साल में, आठ दिन रही थी। आठ दिन रहे, लेकिन मुझे ये भेदज्ञान की (बात) बिजली पड़े तो दो टुकड़े हो जायें, फिर जुड़ते नहीं, यह करने जैसा है (ऐसा बैठ गया)।

फिर जब-जब गुरुदेव का व्याख्यान सुनें, उसमें से भेदज्ञान की बात आये, ये ही बात बहुत प्यारी लगे। ये मीठी लगे और ऐसा लगे कि अपने को यही करने जैसा है। गुरुदेव की हाज़री में अपने को यह (सम्यग्दर्शन) कर लेना है। बस! फिर पुरुषार्थ होता था धीरे-धीरे-धीरे, करते-करते, विचार किया, पुरुषार्थ किया, (उस) बात का मनन किया और ऐसा करते-करते इसका समय आ गया, तब हुआ।

बहुत शांति रखते हैं, उपसर्ग परिषह आये तो भी। ऐसी इतनी बाहर की शांति तो मुनि भी रखते हैं, द्रव्यलिंगी मुनि। लेकिन यह तो अपनी ज्ञायक की शांति (है)। तो यह ज्ञायक की शांति, ज्ञायक स्थिर रहे और ज्ञायक उपयोग में स्थिर रहे, (इसलिए शरीर की) व्याधि के सामने ध्यान ही नहीं जाता। दो प्रकार की शांति है। एक मंद कषायी भी ऐसी शांति रख सकता है, मंद कषायवाला।

(और दूसरी) ज्ञायकभाव में (मुनिराज) रह जायें इसलिए देहात्मक बुद्धि का नाश हो गया है ना। ये शरीर वह मैं, ऐसा मानना नहीं (रहा, वह) छूट गया है। मैं ज्ञायक तो ज्ञायक (बस)। इसलिए शरीर में जो व्याधि हो, उसका ख्याल तो आता है कि पीड़ा होती है, ऐसा। लेकिन इसमें शांति जितनी रखना हो उतनी रख सकते हैं, ऐसा। ऐसी सहजदशा हो गयी, सहज। अमुक प्रकार की सहजदशा।

(मुझे) पीड़ा होती थी, तो सबको लगता था कि बहुत पीड़ा (है), बहुत पीड़ा (है)। लेकिन मुझे तो कोई बहुत पीड़ा लगती ही नहीं थी।

हम तो शांति-शांति में ही रहते थे। पीड़ा है, लेकिन सबको बहुत लगती थी, ऐसी मुझे नहीं लगती थी। ऐसी ज्ञायक की सहज-शांति, सहज-परिणति, ऐसी हो गयी है, ज्ञायक की कि, पीड़ा हो तो देख ले कि पीड़ा है। बस फिर क्या? ख्याल में आये कि इस जाति की पीड़ा है।

श्रोता : जिसको (पीड़ा) हो, उसको पीड़ा नहीं लगे और दूसरे भक्तों को देखने से बहुत वेदना होती है।

पूज्य बेन : सहज शांति रह जाती है। मंद कषाय की शांति हो, उसको जो पुरुषार्थ का प्रयत्न (होता है), उस प्रमाण में (शांति होती है)।

श्रोता : आपको (धुन) कैसे लगी? ये सब आप सुनाओगे, तब तो हमको धुन लगेगी।

पूज्य बेन : धुन तो लगी, गुरुदेव का व्याख्यान सुनकर।

श्रोता : स्वयं से तो नहीं लगे।

पूज्य बेन : गुरुदेव (परिवर्तन पूर्व) तो व्याख्यान में यही कहते थे कि सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना, जीव के जन्म-मरण का नाश नहीं होगा।

श्रोता : कभी नहीं होगा।

पूज्य बेन : भव-भ्रमण नहीं टलेगा और सम्यग्दर्शन, वो ही सच्चा धर्म है, और कोई धर्म नहीं है। बस फिर गुरुदेव की बात सुनी, तो धुन लगी। और कैसे धुन लगे? गुरुदेव ने कहा तो (ऐसा लगा कि) मेरे गुरु ऐसा कहते हैं, यही बात सत्य है। (तो बस) अब अपने को यही करना है, दूसरा कुछ करना नहीं। उसकी धुन लग गयी।

गुरुदेव कहें कि सच्चा-धर्म यह (है), ये मार्ग ही सच्चा है। इस सम्यग्दर्शन से ही संसार का नाश होता है, तो अपने को संसार का नाश करना है और ये जो कहते हैं, वह मुझे प्रगट करना ही है। तो धुन लग गयी।

(विक्रम सम्वत्) 1986 (ईस्वी सन् 1930) में अमरेली में चौमासा हुआ और 1987 (ईस्वी सन् 1931) में पोरबंदर में। उसके बाद पोरबंदर से घेवरिया नेमिदासभाई आये। (वो) बहुत भक्ति वाले थे। उन्होंने गुरुदेव से बात की कि आप सब हमारे गाँव में चलो। चलो मैं हूँ, इसलिए आपको कोई तकलीफ़ नहीं होगी। ऐसे वीर्य वाले व्यक्ति थे, सेठ थे। फिर गुरुदेव ने पोरबन्दर में चौमासा किया। अर्थात् ये गोहिलवाड़, झालावाड़ी को छोड़कर आगे चले जायें, तो कोई परेशानी नहीं। सीधा वहाँ पोरबंदर में चौमासा किया।

वहाँ तो कुछ नहीं। वहाँ तो शांति थी एकदम। तो (ऐसे, विक्रम सम्वत्) 1987 (ईस्वी सन् 1931) (का चातुर्मास) पोरबंदर में हुआ। फिर उसके बाद दूसरा चौमासा (विक्रम सम्वत्) 1988 (ईस्वी सन् 1932) का जामनगर में किया (गुरुदेव ने), वीरजीभाई ववाणिया के यहाँ। वहाँ भी शांति से चौमासा किया। बस उसके बाद आये राजकोट।

* * *

Track Number 65-B

श्री कुन्दकुन्द आचार्य जीवन-दर्शन

पूज्य बेन : हम महासमर्थ आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव की आमनाय के कहलाये जाने पर, गौरव का अनुभव करते हैं। उन्हें भगवान का वियोग लगने पर, पूर्वभव के मित्र, देव, पोन्नूर पहाड़ पर लेने आए। सदेह-विदेह (गमन) में साक्षात् सीमंधर प्रभु की ॐ ध्वनि सुनकर के आठ दिन रसपान करके (वापस) पधारे और आकर के समयसार आदि पंच परमागम की रचना की। धन्य हो आचार्य कुन्दकुन्द देव की जय हो!

वंदित्तु सव्व सिद्धे। वंदन करता हूँ सर्व सिद्ध भगवान को। एक सिद्ध भगवान नहीं बल्कि सर्व सिद्ध भगवान को कि, अनंतानंत सिद्ध भगवान जितने-जितने भूतकाल में हुये, वर्तमान में होते हैं, बस वे ही सिद्ध भगवान (नहीं, बल्कि जो) भविष्य में होंगे, वे भी सिद्ध भगवान। जो अभी वर्तमान (में) विराजते हैं, सिद्धपद को प्राप्त होकर सिद्धदशा में विराजते हैं, ऐसे सिद्ध भगवान जो अनंतानंत सिद्ध भगवान हैं, उनको मैं वंदन करता हूँ।

कुन्दकुन्द आचार्य स्वयं महासमर्थ आचार्य हैं। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलने वाले महामुनिराज हैं, महासमर्थ आचार्य हैं। कुन्दकुन्द आचार्य का (नाम) तो शासन में चलता है ना, कि

मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमोगणी ।

मंगलम् कुन्दकुन्दाद्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम् ।।

इस शासन में कुन्दकुन्द आचार्य का बड़ा आधार (टेका) है। बड़े स्तम्भ के समान कुन्दकुन्द आचार्य देव का आधार लेकर, कुन्दकुन्द आचार्य का नाम लेकर, जैन, दिगंबर जैन-समाज, सभी आचार्य भी, सभी, गौरव पाते हैं कि हम ऐसे कुन्दकुन्द आचार्य के शासन के हैं। ऐसे कुन्दकुन्द आचार्य के शासन में केड़ाये (पथगामी) माने जाने में, स्वयं गौरवपने का अनुभव करते हैं कि, ऐसे महासमर्थ आचार्य हो गए हैं, उनके हम शिष्य हैं। उनको हम पूज्य रूप से मानकर के फिर हम शास्त्र की शुरुआत करते हैं।

सभी, कुन्दकुन्द आचार्य, मंगलम् कुन्दकुन्दाद्यो, कुन्दकुन्द आचार्य को मंगल तरीके से लक्ष्य में लेकर, उनको नमस्कार करके कुन्दकुन्द आचार्य की और बाद में सभी आचार्यों की (वंदना करके), शास्त्र शुरू करते हैं। कथा में भी आता है ना कि कुन्दकुन्द आचार्य देव विदेहक्षेत्र में गए और सीमंधर भगवान की वाणी सुनी और भगवान की वाणी सुनकर वहाँ (से पौन्नूर आए)।

यहाँ से भगवान का ध्यान करते-करते....पौन्नूर हिल के ऊपर कुन्दकुन्द आचार्य स्वयं ध्यान में बैठे थे और उनको इतना वेदन हुआ कि अरे रे! मैं इधर आ गया। भगवान का विरह (हुआ), अभी तो तीर्थंकर का विरह (हुआ)। भगवान महावीर भी यहाँ से मोक्ष को पधार गए। महावीर भगवान भी अभी विराजमान नहीं है। ऐसे कुन्दकुन्द आचार्य कहते हैं कि ऐसे तीर्थंकरों का भी हमें विरह हुआ। ऐसे काल में हमने जन्म लिया, (जहाँ) तीर्थंकर भगवान भी विराजते नहीं। अरे! तीर्थंकर विदेहक्षेत्र में विराजते हैं, उनके भी दर्शन होते नहीं। ऐसे हम दूर क्षेत्र में रहे। ऐसा वेदन हो गया तीर्थंकर के विरह का, इतना ज़्यादा वेदन करके फिर ध्यान में बैठे, तो भगवान की ध्वनि वहाँ छूट गयी। भगवान की ॐ ध्वनि छूटी।

सद्धर्मवृद्धिस्तु। सद्धर्मवृद्धिस्तु (ऐसी) भगवान की वाणी छूटी, आशीर्वादरूप में। बोलो! कितना लायक आत्मा! कितना लायक आत्मा! पुण्य तो बहुत, (उसको) तो अपन एक तरफ रखो। लेकिन आत्मा कितना लायक! कितनी लायकात कि भगवान की दिव्यध्वनि, उनके आशीर्वादरूप में (निकली) कि **सद्धर्मवृद्धिस्तु**।

हे महामुनिराज! तुम्हारे निमित्त से इस शासन की जय-जयकार होनी है। भगवान को तो तीनकाल का ज्ञान है। भगवान ने तो कोई इच्छा से तो नहीं कहा। सीमंधर भगवान को इच्छा नहीं थी कि कोई इच्छा से मैं उनको आशीर्वाद दूँ। ऐसी इच्छा तो भगवान को है ही नहीं। भगवान तो इच्छा का नाश करके बैठे हैं, मोह का नाश करके। लेकिन उनकी लायकात इतनी ज़्यादा, कुन्दकुन्द आचार्य की आत्मा की इतनी लायकात कि उस लायकात के कारण भगवान की दिव्यध्वनि भी छूटी।

सद्धर्मवृद्धिस्तु ये सद्धर्म की वृद्धि (ऐसी ध्वनि) हुई, तब सभा में बैठे सभी मनुष्यों ने कहा कि प्रभु! ये किस हेतु से ये आपकी यह वाणी निकली? ये हमारी समझ में आयी नहीं। तो ये कथाकार ऐसा कहते हैं कि भगवान ने ध्वनि में कहा कि कुन्दकुन्द महासमर्थ आचार्य, भरतक्षेत्र में, उनको (अभी) तीर्थंकर का विरह है, इसलिए विरह के कारण अभी उनको विरह की वेदना हो रही है। वे हमको नमस्कार करते हैं, (इसलिए) उनको आशीर्वचन रूप (में) **सद्धर्मवृद्धिस्तु** (ऐसी ध्वनि निकलती है)।

ओहोहो! सबको आश्चर्य हुआ कि ऐसे महासमर्थ कौन आचार्य हैं? कोई देव, उनके पूर्व के मित्र कोई देव थे, तो उनको ऐसा लगा कि अपने पास तो शक्ति है। हम तो वहाँ जाकर उनको लेकर आ सकते हैं। इसलिए चलो, हम चलते हैं। पोन्नूर में गए।

कुन्दकुन्द आचार्य ध्यान में बैठे थे। यहाँ आकर वंदन करके, (देवों ने ऐसा सोचा कि) ध्यान में बैठे हैं, तो ध्यान तोड़ना, ये तो किसी जैन का कार्य नहीं, किसी भक्त का कार्य नहीं। तो फिर वे देव (उन) श्रावकों (को, जो) बाजू में थे, उनको कह गए कि मुनिराज का (जब) ध्यान में से उपयोग बाहर ज़रा आये, तो हमारा नमस्कार करके यह हमारा संदेश उनको देना। "उनको भगवान के पास से दर्शन कराने के लिए, उनको लेने के लिए (हम) आये हैं।" वे गए तो (उसके पश्चात्) तुरंत ही (आचार्य का) उपयोग बाहर आया। देखा! तब उन श्रावकों ने आकर के समाचार दिया कि, "प्रभु! आपको लेने के लिए देव आये थे।"

"अरे! देव आये थे? मेरा तो ध्यान नहीं (था)। ऐसा (दर्शन का) योग नहीं हो, तो ऐसा होता है (कि देव वापस लौट जाएँ)।" ऐसा बोलकर फिर से ध्यान में चले गए। फिर से देव आये। फिर बाहर उपयोग आया, तो देवों ने विनती की कि, "हम आपको वहाँ साक्षात् भगवान के दर्शन कराने के लिए लेने को आये हैं।" तो उनको तो जो चाहिए था ना, वो मिल गया। उनको लगा कि भगवान के विरह का मुझे वेदन होता था। तो फ़ौरन ही स्वयं ने (देवों का आमंत्रण) स्वीकार किया।

फिर देव वहाँ विदेह में ले गए। उनको कितना हर्ष और कितना आनंद कि साक्षात् तीर्थंकर भगवान का (दर्शन होगा)। तीर्थंकर का विरह (था), भगवान के साक्षात् दर्शन करने का... तो विदेहक्षेत्र में जाकर भगवान का दर्शन किया। तो चक्रवर्ती ने देखा कि इतना छोटा शरीर एकदम, वो (चक्रवर्ती) तो बड़े पाँच सौ धनुष के थे। तो छोटा शरीर देखकर चक्रवर्ती ने पूछा कि, "प्रभु! ये मनुष्य के आकार का कीड़ा (जीव), ये कौन है मनुष्य के आकार का?" तो प्रभु की ध्वनि छूटती है, चक्रवर्ती ने पूछा उनके जवाब में कि, "अरे! भाई चक्रवर्ती! ये कोई

कीड़ा नहीं, पर महा-मुनिराज हैं। भरतक्षेत्र के महासमर्थ आचार्य हैं। उनको तीर्थंकर का विरह है, उनके विरह में यहाँ आये हैं।"

ओहोहो! चक्रवर्ती को ऐसा लगा कि ये मेरे क्षेत्र में पधारे। भरतक्षेत्र के मेहमान, मेरे यहाँ विदेहक्षेत्र में पधारे। ओहोहो! उनको इतना ज़्यादा हर्ष आया! चक्रवर्ती को इतना ज़्यादा हर्ष आया कि अहाहा! ऐसे मेहमान मेरे क्षेत्र में पधारे। मेरा राज्य है इस छह खंड में। मेरे राज्य में, इस तीर्थंकर की सभा में मुनिराज पधारे! उनके कोई हर्ष का पार नहीं कि मैं क्या करूँ और क्या नहीं करूँ?

मैं इन मुनिराज की, उनकी मेहमानगति क्या करूँ? ये तो महामुनिराज हैं, इनकी मैं क्या मेहमानगति करूँ? फिर उनकी मेहमानगति तो क्या कर सकें? पर उनका उत्सव उन्होंने (चक्रवर्ती ने) स्वयं आठ दिन का रखा था कि बड़ा उत्सव मैं आठ दिन का करता हूँ..... मेरी भूमि के ऊपर, भरतक्षेत्र के महासमर्थ आचार्य स्वयं पधारे हैं। कैसे ये लायक-लायक जीवों का कैसा योग होता है!

इसलिए फिर वहाँ (कुंदकुंद आचार्य) भगवान आठ दिन रहे। ऐसा कहते हैं कि भगवान वहाँ आठ दिन रहे। फिर वापस इधर पधारे कुन्दकुन्द आचार्य और वहाँ से आकर, गुरुदेव तो बार-बार कहते थे कि वहाँ से आकर के उन्होंने समयसार शास्त्र की रचना की और फिर प्रवचनसार आदि पाँचों शास्त्रों की (रचना की)।

ऐसे महासमर्थ आचार्य, कुन्दकुन्द आचार्य (को) तो भगवान कहो (क्योंकि) जिन तो नहीं, लेकिन जिन सरीखे। ये कुन्दकुन्द आचार्य कि जिन, जिनेन्द्रदेव कि (जैसे) जिनवर साक्षात् हों, ऐसे इस काल में, कलिकाल केवली भी कहलाते हैं कि कलिकाल केवली थे। ऐसे महासमर्थ आचार्यदेव कुन्दकुन्द आचार्य थे। उनकी वाणी भी अपने को

महाभाग्य (से मिली)। उनकी वाणी, सुनने के लिए, देखने के लिए, दर्शन करने के लिये और अनुभव करने (के लिए मिली), ऐसा अपने को गुरुदेव के प्रताप से मिला। गुरुदेव (ने) कुन्दकुन्द आचार्य, कुन्दकुन्द आचार्य ऐसा रटन करते-करते अपने को यह दिया। ये अमृत गुरुदेव दे गए (हैं), ये कुन्दकुन्द आचार्य देव दे गए कि जिस अमृत को हम पीते ही रहें (और) संतोष ही न होवे कि, जहाँ तक अपना मोक्ष हो, वहाँ तक अपन अमृत पीते ही रहें। ऐसा अमृत दे गए हैं, महासमर्थ आचार्य।

ऐसा **वंदित्तु सव्व सिद्धे।** पहले शब्द में कहा कि **वंदित्तु सव्व सिद्धे।** कि मैं सर्व सिद्धों को वंदन करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। सर्व सिद्ध भगवान मेरे इस मंगल प्रसंग पर....उनका भी मंगल प्रसंग है। शास्त्र की रचना करना, ये भी महा-मंगल प्रसंग है। ऐसे मंगल प्रसंग पर हे! सिद्ध भगवानों! मेरे इस प्रसंग में आप पधारो।

कुन्दकुन्द आचार्यदेव स्वयं प्रवचनसार में कहते हैं कि, "मेरे इस स्वयंवर मंडप को (मैं) रचता हूँ। इसमें हे बीस विहरमान भगवान! पंच परमेष्ठी भगवान! अनंत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु! सब मेरे मंडप में पधारो। मेरे इस स्वयंवर में, यह मेरा, वास्तव में मंडप तो मेरा यह है। इस मंडप में पधारो।" तो आमंत्रण देते हैं कि पधारो! पधारो! पधारो! सिद्ध भगवान! पधारो! कि, "मुझे सिद्ध होना है नाथ! आपके, आपके साथ में मुझे आना है। आपके मंडप की मंडली में मुझे बैठना है। मुझे आपकी मण्डली में आना है, इसलिए आप पधारो! और मैं ये भव्य जीवों के हेतु के लिए भव्य जीवों के कल्याण के लिए, मैं इस शास्त्र की रचना करता हूँ।"

वंदित्तु सव्व सिद्धे। पहले सिद्ध भगवान को नमस्कार करता हूँ। कल हमने वो बात की ना आचार्यदेव की कि, अमृतचंद्र आचार्यदेव

ने शास्त्र की टीका रची। इसमें मुझे यह कहना है कि कुन्दकुन्द आचार्य **वंदित्तु सव्व सिद्धे।** कहकर यह कहते हैं कि सर्व सिद्ध भगवान की दशा हमें अभी प्राप्त नहीं हुई। हमें अभी मुनिदशा प्राप्त है। हम मुनिदशा में हैं, फिर भी, हमें सिद्धदशा प्राप्त हो (ऐसी भावना)। तो **वंदित्तु सव्व सिद्धे।** हे सिद्ध भगवान! मैं आपको इसके लिए नमस्कार करता हूँ कि मुझे अब सिद्धदशा प्राप्त हो। इतनी ज़्यादा जवाबदारी दी है ना कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने, स्वयं श्रोताजनों के ऊपर कि, इतनी जवाबदारी को अंगीकार करके तुम समयसार सुन सकते हो।

श्रोताजन भी कहते हैं कि हे स्वामी! इतने तैयार होकर हम आपकी वाणी सुनते हैं। हम भी ज़रूर इतने तैयार होंगे कि हम शुद्धात्मा की बात सुनने के लिए बैठे हैं, तो हम शुद्धात्मा को प्राप्त करने के लिए हैं, हम भी हमारी तैयारी ज़रूर करेंगे। ऐसे श्रोताजन भी स्वयं, स्वयं की इस जवाबदारी को समझकर, इस समयसार (को) सुनते हैं।

श्रोता : बराबर! बेन! ऐसी दिव्यध्वनि गुरुदेव भी सुनते होंगे ना?

पूज्य बेन : गुरुदेव तो (बारह) सभा में सुनने को बैठ जायें। वे तो सीमंधर भगवान की सभा में (बैठ जाएँ)। वे सभा के रसिक हो गए। उस सभा में गिनती आ गयी गुरुदेव की, (अब) हम यहाँ विचरते हैं। उनकी तो सभा में (देव रूप से) हाज़िरी हो गयी। बस! वहाँ बैठे-बैठे सुनते हैं। वे यहाँ विरह (के गीत) गाते थे। उनका वो विरह-गान पूरा हो गया। गुरुदेव का तो (सीमंधर भगवान) से (पूर्व में हुआ) विरह, (अब) पूरा हो गया कि, "अरे! हम यहाँ पर कहाँ से आ गए? हम यहाँ कहाँ से आ गए, ऐसा कहते थे (गुरुदेव)। उनका ये विरह पूरा हो गया। वे भी भगवान के समीप में और भगवान के साक्षात् दर्शन के लिए फिर से मिल गए।" धन्य है वह काल! धन्य है वह अवसर! धन्य ऐसा प्रत्यक्ष

सर्वज्ञ वीतराग का दर्शन, उनकी वाणी सुनना, धन्य काल! धन्य भाव! धन्य अवतार!

अपने को भी ज़रूर ऐसा अवसर आने वाला ही है। हम ऐसी भावना भायें कि थोड़ा काल बचा है, जो निकाल जाएगा। फिर हम भी सब इकट्ठे मिलनेवाले हैं।

श्रोता : पीछे-पीछे आते हैं।

पूज्य बेन : हाँ! बस उनके पीछे ही हैं, गुरुदेव के।

श्रोता : हाथ (पल्लू) पकड़ लिया है।

पूज्य बेन : हाँ! साथ-साथ में जायेंगे, कहीं आगे नहीं। काल में ज़रा (अंतर है)। थोड़ा काल जाए तो जाए, इसमें कुछ (परेशानी नहीं)। लेकिन आत्मा को समीप ही रखकर, गुरुदेव को, आचार्य देव को, भगवान को, सभी को समीप रखकर के, दिवस और रात जाता है, अपना तो। आपको समीप रखकर हमारा दिन-रात निकलता है।

* * *

Track Number 66

पूज्य गुरुदेव परिवर्तन की जीवन कथा। सम्प्रदाय में, चातुर्मास में भी, पूज्य गुरुदेव की अध्यात्म की विशालता के व्याख्यानों को सुनने के लिए, लोगों को हुजूम उमड़ता था।

पूज्य बेन : क्या सुनना है?

श्रोता : इस धर्म में (गुरुदेव ने) किस प्रकार प्रवेश किया? परिवर्तन किस प्रकार हुआ?

पूज्य बेन : परिवर्तन किस प्रकार हुआ?

श्रोता : हाँ जी! हाँ जी!

पूज्य बेन : बहुत अच्छा! गुरुदेव को तो परिवर्तन करना था ना, पोरबंदर से घेवरिया नेमिदासभाई आये, बहुत भक्ति वाले थे। उनसे गुरुदेव ने बात की तो (कहा) कि आप हमारे गाँव में चलो। चलो! मैं हूँ, इसलिए आपको कोई तकलीफ़ नहीं होगी। ऐसे वीर्य वाले व्यक्ति थे, सेठ थे। फिर गुरुदेव ने पोरबन्दर में चौमासा किया। वहाँ फिर कुछ नहीं हुआ, वहाँ शांति थी एकदम।

फिर उसके बाद दूसरा चौमासा (विक्रम सम्वत् 1988, ईस्वी सन् 1932) जामनगर में किया (गुरुदेव ने), वीरजीभाई ववाणिया के यहाँ। वहाँ भी शांति से चौमासा किया। बस, उसके बाद आये राजकोट।

विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) की साल में राजकोट चौमासा किया था। राजकोट की तो पूरी बात मैंने बहुत की है। राजकोट के लोगों को बहुत प्रेम, बहुत प्रेम। चौमासा किया तो वहाँ बहुत लोग,

बहुत लोग व्याख्यान में आते थे। पाँच-पाँच हज़ार लोग, पूरा महाजन का मंडप भर जाता था छह-छह बजे (से) और गुरुदेव तब दूध नहीं पीते थे। इसलिए 7 बजे व्याख्यान देते थे, तो 6 बजे से लोग दरवाज़ा खटका-खटका करके व्याख्यान में आ जायें, 6 बजे से।

गुरुदेव सभी श्वेताम्बर शास्त्रों में से पूरा अध्यात्म निकालें। परदेसी राजा, आत्मा परदेश में गया है। इसमें से स्वदेश में आया, इसमें घोड़े की लगाम (ऐसा उदाहरण दें) और पूरा अध्यात्म उतारें। उनकी बुद्धि अध्यात्म में एकदम स्वसर्वट उतर जाती थी। अंदर ठेठ तक पहुँच जाती थी। तो श्वेताम्बर के शास्त्र में कथा आये, कथा। कथा ही आये (श्वेताम्बर में) और क्या आये? उन कथाओं में सब में अध्यात्म उतार दें, तो उसमें सबको रस पड़े। तो (इस तरह) उसमें (अध्यात्म-शैली में) उन्होंने विजय प्राप्त कर ली थी। इसलिए स्थानकवासी को सबको रंग लग गया कि ये कानजीस्वामी कहते हैं, ये सच्ची है बात। ये जिस रास्ते पर जाते हैं, उस ही रास्ते (अपने को) जाना है, ऐसा। ये पूरी कथा वाँचे और अध्यात्म उतार दें कि परदेश में जाये ये परदेशी राजा, ऐसे पूरा अध्यात्म उतार देते थे, परदेसी राजा से। घोड़ा, तो मनरुपी घोड़े को दौड़ाता है। तो घोड़ा दौड़ाये परदेशी राजा, तो मनरुपी घोड़े को दौड़ाता है। ऐसा सब अर्थ करें।

श्रोता : शक्ति बहुत थी।

पूज्य बेन : ऐसा सब अध्यात्म उतारें ना, तो सभा एकदम खुश हो जाये। अध्यात्म का स्वयं को रंग और (सुननेवालों में से) जिसको अध्यात्म का रंग हो, वो खुश हो जाये। वे, अध्यात्म के रंग वाले ही आयें ना, सुनने के लिए। दूसरे (कैसे आयें)? ऐसे ही सब आयें। बुद्धिवाला वर्ग राजकोट में। सबको एकदम मूल से उखाड़ दें। ऐसा अच्छा भाव!

लोगों को इतना रस, इतना रस कि पूरे व्याख्यान के कागज़ छपाए थे, राजकोट में तो और बहुत प्रेम था। गुरुदेव को ऐसा लगा कि राजकोट में बुद्धिवाला वर्ग है और ये (लोग) सब समझते हैं। तो अपने को तो समझाना है और अपना भी स्वाध्याय करना है। यहाँ बहुत जैनों की बस्ती है, बुद्धिवाला वर्ग ज़्यादा है, भक्तिभाव अच्छा है, इसलिए अपने को यहीं परिवर्तन करना है अर्थात् अपने को राजकोट में रहना।

यहीं स्थायी रहना। ये मेरी तत्व की बात ऐसे (हर) कोई ग्रहण नहीं कर सकेगा। ये राजकोट वाले ग्रहण करेंगे। फिर नक्की किया और एक जन का, एक भाई ने तो मकान भी ले लिया (था) गुरुदेव के लिए कि परिवर्तन के बाद (गुरुदेव) अपाश्रय में नहीं रह पायेंगे, इसलिए एक भाई ने मकान लिया। लेकिन चौमासा पूरा हुआ तो गुरुदेव पाँच-सात भक्तों को कहने लगे कि मुझे तो परिवर्तन करना है।

वहाँ खास-खास जो भक्त थे, उनको गुरुदेव ने कहा था। राणपुर वाले प्रेमचंदभाई हैं, दासभाई हैं, इस प्रकार सभी पुराने-पुराने थे। हम थे, हमारे नानचंद काका थे। हमें तो खबर नहीं (थी), ऐसी थोड़ी-थोड़ी खबर पड़ी थी। पर गुरुदेव के मुख से नहीं सुना था। तब बहिनश्री वहाँ नए-नए थे, इसलिए उनको बहुत, गुरुदेव को, तब इतना नहीं था (जितना) अब है। तब, मैं तो बहुत वर्षों से चौमासे करती थी, तो उनके (गुरुदेव के) साथ ही करती थी। विक्रम संवत् 1983 (ईस्वी सन् 1927) की साल से चौमासे गुरुदेव के साथ ही करती थी। इसलिए तब विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) की साल में छह-सात चौमासे (गुरुदेव के) साथ हो गए (थे)।

इसलिए गुरुदेव ने (हमारे) नानचंद काका को कहा कि आप शांताबेन को लेकर आओ, मुझे थोड़ी बात करनी है। तब काका ने कहा

कि, ठीक। काका राजकोट में थे और मैं भी राजकोट में थी लेकिन बफ़म में (ध्यान नहीं होने से), वो भूल गए और वो और हम अमरेली चले गए। अमरेली जाने के बाद नानचंद काका ने मुझे कहा कि गुरुदेव ने मुझे कहा था कि बेन को लेकर आना। पर हम तो यहाँ आ गए। मैंने उनको कहा कि अरे! काका आप ऐसी बात भूल गए। इतनी ख़ास, अगत्य की (मुख्य) बात!

उस समय तो गुरुदेव को मिलना यह बहुत बड़ी बात (होती थी)। अभी तो बहनें जैसे चाहें वैसे चली जाती हैं। तब (तो) बहनों को गुरुदेव से मिलना, यह तो बहुत, महा(दुर्लभ), बहुत दुर्लभ था। किसी के सामने गुरुदेव देखें नहीं, किसी के साथ बातचीत कुछ नहीं करते। मैंने सोचा कि, ऐसा महाभाग्य कि गुरुदेव ने सामने से कहा। तो हमने कहा चलो! यहाँ से राजकोट कहाँ दूर है? चलो! चलें राजकोट। काका बोले, चलो!

बाद में, मैं और नानचंद काका राजकोट आ गए। आये तो गुरुदेव विराजते थे। गुरुदेव को पूछा काका ने कि, साहेब! बेन तो यहाँ हैं, तो आपके पास मैं कब लेकर आऊँ? गुरुदेव ने कहा कि 12.30 बजे आना। 12.30 बजे मैं और काका दोनों गए। जाकर नमस्कार किया।

तो गुरुदेव ने कहा कि आपको कठिन पड़ेगा। अब मुझे ऐसा करना है कि आपको कठिन पड़ेगा। मैंने कहा गुरुदेव हमें कुछ कठिन पड़ेगा नहीं। आप जो करो वह (ठीक)। हमें आपके ऊपर इतना विश्वास है कि आप जो करेंगे वह सत्य ही करेंगे। किसी (भी) प्रकार से आप विपरीत नहीं करेंगे, ऐसा हमें विश्वास है, पूरी श्रद्धा है। आप जो करेंगे, उसमें आपका और हमारा दोनों का कल्याण हो, ऐसा ही करेंगे। अर्थात् (गुरुदेव ने कहा कि) मैं मुँहपट्टी निकाल दूँगा। मुँहपट्टी निकाल दूँगा।

फिर उसके बाद मैं तो जंगल में चला जाऊँगा। वहाँ झोपड़ी बनाकर रह जाऊँगा। अरे रे भगवान! आप कहीं चले जाओ तो हमारा क्या होगा?

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : प्रभु! आपके चरणों में तो हमारा कल्याण समाया है। आप चले जाओगे तो हमारा कल्याण किस प्रकार होगा? हमारी यह जिंदगी किस प्रकार सफल होगी? ऐसा मैंने एकदम वेदन से (दुखी होकर) गुरुदेव को कहा ना, इसलिए गुरुदेव को एकदम भाव आ गया, तो कहा - जहाँ हम जाएँगे वहाँ आप आना।

श्रोता : वाह वाह!

पूज्य बेन : इस प्रकार गुरुदेव बहुत भाव से बोले - जहाँ हम जाएँगे वहाँ आप आना। भले मैं जंगल में रहूँ, तो आप जंगल आओ और मैं झोपड़ी में रहूँ तो आप झोपड़ी में आओ।

श्रोता : वाह!

पूज्य बेन : ऐसा कहा तो मुझे इतना आनंद आया गया कि मैंने तो एकदम लंबी साष्टांग (होकर के) गुरुदेव के चरणों में (प्रणाम किया)। मैंने कहा कि आप जंगल में चले जाओ तो (भी) हमारी ज़िन्दगी तो (कैसे निकलेगी)? तब तो छोटी उम्र थी और कल्याण तो तब हुआ नहीं था। मैंने कहा अभी तो कल्याण करना बाकी है। आपके चरण में रहकर कल्याण करेंगे। आपने वचन दिया, तो बस आपके वचन सफल हो जाएँ।

श्रोता : वाह!

पूज्य बेन : फिर गुरुदेव ने कहा कि इस मुँहपट्टी का परिवर्तन करना है। ये स्थानकवासी समाज तो कहीं सच्चा नहीं। यह सब अभी

बहुत उभर आया है। लेकिन अब परिवर्तन करें तो क्या होगा, यह देखना है।

उस दिन मैं बैठी थी तब रामजीभाई आये, रामजीभाई माणेकचंद दोशी, उस समय वहाँ आए। रामजीभाई तो पहले, पहले से ही साथ में थे। फिर उनसे भी गुरुदेव ने बात की। तो गुरुदेव को रामजीभाई ने बहुत आधार (टेका) दिया और उन्होंने कहा कि गुरुदेव! मैं आज से आपको गुरु तरीके स्वीकार करता हूँ। मुँहपट्टी में थे, तब ही (ऐसा कहा)।

श्रोता : तब? ओहो!

पूज्य बेन : मैं आपका शिष्य और आप मेरे गुरु। मैं बैठी थी और रामजीभाई बोले, "आप जो करें वह सब मुझे मंजूर है और मैं आपको गुरु स्वीकारता हूँ।" इसलिए गुरुदेव को बहुत संतोष हुआ कि इतना बड़ा व्यक्ति और इनको यह बात बैठती है, बहुत अच्छी बात है।

फिर गुरुदेव ने कहा कि मुझे कहाँ परिवर्तन करना? इस प्रकार बात की और उनको ऐसा लगा कि ये बड़े-बड़े, पाँच-सात लोग से मैंने परिवर्तन की बात कर ली है। (इतनी) बात की, फिर तो हम सब (आ) गए।

ये बात हो गई। ऐसा करते-करते स्थानकवासी में पहुँच गयी बात। उसके बाद उसका बहुत विरोध हुआ। चौमासा पूरा हुआ कार्तिक सुद पूनम को, तो गुरुदेव राजकोट सद्दर में गए और वहाँ पर नक्की किया कि मुझे (विक्रम सम्वत्) 1990 (ईस्वी सन् 1934) का (अगली साल का) चौमासा यहीं, सद्दर में करना (है)। स्थानकवासी संघ को खबर पड़ गयी कि इनको मुँहपट्टी का त्याग करना है। बस फिर खलास!

एक भाई, जो प्राणजीवन भाई थे, स्थानकवासी के अग्रगण्य। उन्होंने (विक्रम सम्वत् 1989 ईस्वी सन् 1933 की साल के चौमासे में) ऐसा गाया, ऐसा गाया कि, **उमराला से ॐकार निकले हो कानजी, राजकोट के रोम खड़े हो जायें कानजी।** इस तरह गाया, ऐसे ललकार-ललकार करके और ऐसा करते-करते, ऐसा गाया। लेकिन जैसे ही खबर पड़ी ना कि मुखपट्टी छोड़ने वाले हैं, तब उन प्राणजीवन मास्टर ने ही खूब विरोध किया।

और विरोध, विरोध, विरोध, विरोध होने लगा, एकदम विरोध। फिर गुरुदेव समझ गए, लेकिन उन्होंने तो वचन दे दिया था कि मुझे विक्रम सम्वत् 1990 (ईस्वी सन् 1934) में यहाँ चौमासा करना है। वचन दे दें फिर कभी बदलते नहीं थे। चाहे जो हो, (लेकिन) विक्रम सम्वत् 1990 (ईस्वी सन् 1934) का चौमासा तो यहीं (राजकोट सद्दर में ही) होगा। ऐसे अमुक भाइयों से बात की।

श्रोता : आप दोनों (बहनें) साथ-साथ कबसे रहने लगे?

पूज्य बेन : हम (दोनों बहनें) साथ रहने लगे विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) की साल से। राजकोट गाँव में चौमासा था। इसलिए बहिनश्री (आए थे और उन) को तब (तक) सम्यग्दर्शन हो चुका (था)। विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) की साल में फाल्गुन महीने में, उनको सम्यग्दर्शन हुआ, फाल्गुन वद दसम् को। उनको सम्यग्दर्शन हुआ, उसके पहले ही वे अपने पति को छोड़कर आए थे ना, इसलिए उसके कारण बहुत खलबलाहट हो गई थी।

उन दिनों में परिवर्तन की बात तो बहुत बड़ी बात थी। स्थानकवासी इतना बड़ा समाज, उसमें गुरुदेव की इतनी जाहोजलाली (महिमा), इतनी जाहोजलाली। उसमें से निकलना अर्थात् बहुत ही बड़ी

बात थी। बहुत बड़ी भारी बात! फिर गुरुदेव को ऐसा लगा कि अब कहाँ जाना? तो यह विचार हमने ही किया (कि कोई अनुकूल जगह मिल जाये) क्योंकि गुरुदेव को ज़ुकाम हो जाता था। फिर बेन (बहिनश्री) और मैं, एक साथ हुए राजकोट सद्दर में हम आये थे। चौमासा करने आये।

विक्रम सम्वत् 1990 (ईस्वी सन् 1934) की साल, गुरुदेव ने दूसरा चौमासा राजकोट सद्दर में किया। (ऐसा विचार किया) कि हम यहाँ रहें तो, राजकोट वाले सब यहाँ आ जायें। इसलिए राजकोट में तो खबर पड़ गई कि गुरुदेव परिवर्तन करने वाले हैं, तो सब बदल गया। स्थानकवासी पंद्रह हज़ार की बस्ती और पंद्रह हज़ार घर, उसमें से कोई भी नहीं आया। सभी पलट गए। गुरुदेव (ने) चौमासा किया सद्दर में, (लेकिन) कोई आए ही नहीं। गुरुदेव व्याख्यान करें नहीं। कैसे करें? कोई आए तो व्याख्यान करें? व्याख्यान बंद। गुरुदेव पाट पर अकेले बैठे हों और रामजीभाई और दो-पाँच भाई जायें, थोड़ी बातचीत करें और आ जायें। हमने चौमासा किया, घर (राजकोट सद्दर में किराए से) लिया। हम सब भी घर में रहते थे, पाँच-दस बहनें। तो हमने कहा गुरुदेव हमको आपका दर्शन तो हो, हम यहाँ आये हैं तो।

तो (गुरुदेव ने कहा कि) दर्शन करने के लिए एक मिनिट का टाइम रखो। एक मिनिट खड़े रहो और चले जाओ। (हम) दर्शन करके वापस आ जायें, फिर कुछ नहीं।

फिर ये लोग एकदम विरोध के पर्चे पर पर्चे निकालने लगे, इतने बड़े अक्षरों में, **कानजी स्वामी मुँहपट्टी का परिवर्तन करने वाले हैं। इनसे चेतना (बचकर रहना) कानजी स्वामी (से)।** गुरुदेव कहें कि हो गया, इसमें कुछ है नहीं।

ऐसे दो महीनों, तीन महीनों तक (वहाँ रहे)। फिर पर्युषण आये, स्थानकवासी के। तो रामजीभाई ने कहा कि साहेब! ये पर्युषण आए और मैं आपको कहता हूँ कि मैं बैठा हूँ सामने, आप समयसार का वाँचन करो।

श्रोता : वाह!

पूज्य बेन : उपाश्रय में, स्थानकवासी के पर्युषण में। आप समयसार का वाँचन करो, मैं सामने बैठा हूँ। देखते हैं क्या कहते हैं। तो गुरुदेव कहने लगे, मुझे तो समयसार ही वाँचना (है)। फिर गुरुदेव ने समयसार का व्याख्यान शुरू किया, पर्युषण में। वहाँ तो पाँच-पच्चीस-पचास, ऐसा करते दो-सौ, चारसौ, पाँचसौ लोग आने लगे।

श्रोता : ओहोहो!

पूज्य बेन : इतने लोग आने लगे, पर्युषण में। फिर तो व्याख्यान चालू हो गया (जो) आखिर तक चला। कार्तिक सुद पूनम तक चालू और चालू रहा। और जेठालाल संघवी हैं ना बोटाद वाले, उन्होंने राजकोट में मकान ले लिया था (कि) गुरुदेव उस मकान में रहें। लेकिन गुरुदेव कहें यहाँ (हम) रह सकते नहीं, इतने विरोध में। अपने को तो जहाँ शांति हो, वहाँ रहेंगे। गुरुदेव कहने लगे कि अब राजकोट में रहने जैसा नहीं। स्थानकवासी बहुत सुना है (कि) जबरे (शक्तिशाली) हैं। अपने को यहाँ नहीं रहना। हम देखते-देखते हुये जायेंगे, जहाँ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव होगा, वहाँ रह जायेंगे।

श्रीमद् राजचन्द्र के वाड़े के वनीचंद सेठ थे, नाम सुना होगा, वो बहुत भावुक व्यक्ति थे। उनको खबर पड़ी ना कि कानजी स्वामी मुँहपट्टी छोड़ने वाले हैं, वो गुरुदेव के पास आये और उन्होंने गुरुदेव से बात की। (वनीचंद सेठ) श्रीमद् के भक्त थे, तो वो कहने लगे (कि)

महाराज! (आप) हमारे आश्रम में चलो, अगास और वड़वा। गुरुदेव कहें कि, मुझे तो ये कुन्दकुन्द आचार्य के मार्ग का ही प्रकाशन करना है। मैं किसी के आश्रम में जाऊँ (ही नहीं)। मैं किसी के हाथ के नीचे दबकर रह सकता नहीं। मैं तो जो मुझे अंदर लगता है, वही जाहिर करता हूँ। मेरे तो जो अंदर में, वही मेरे बाहर में। बाहर कुछ और अंदर कुछ ऐसा मुझसे नहीं हो सकता। मुझे तो जो कुन्दकुन्द आचार्य का मार्ग जो बैठा (है), वही कहूँ। तुम सबको दुःख हो, इसलिए मुझे इसमें पड़ना ही नहीं। मुझे वाड़ा नहीं निकालना, ऐसा। ऐसा ख़ास कहते थे (गुरुदेव)। हमारे सामने कहते थे कि वाड़ा मुझे नहीं निकालना। मुझे (कोई) संघ इकठ्ठा (नहीं) करना कि, ये कानजी स्वामी का वाड़ा (है), ऐसा मुझे नहीं करना। लेकिन मुझे मेरी स्वतंत्रता (चाहिए)। मेरा दिमाग स्वतंत्र है। इसलिए मैं किसी के दबाव मैं रह सकता नहीं। वनीचंद सेठ ने बहुत मेहनत की ले जाने के लिए, अगास में। लेकिन **ना** पाड़ी गुरुदेव ने, मैं नहीं आऊँगा।

फिर ऐसा करके वहाँ चौमासा पूरा हुआ, कार्तिक सुद पूनम (को), तो वहाँ से निकल गए।

श्रोता : तब तक परिवर्तन नहीं किया?

पूज्य बेन : (नहीं किया)। मुँहपट्टी तो थी। ये तो विक्रम सम्वत् 1990 (ईस्वी सन् 1934) की साल की बात है। अब तो मुँहपट्टी छोड़ने का भाव उनको दिन पर दिन, बढ़ता ही बढ़ता गया।

पैदल चलते थे ना। चलकर जायें (दूसरे गाँव)। बैठते नहीं थे (मोटर में)। तो राजकोट से ऐसे चलते-चलते वढवाण (गए)। किसी ने ऐसा कहा कि वढवाण, जोरावरनगर है ना, वो शांति का स्थान है, (वहाँ) परिवर्तन करो। तो जोरावरनगर आया। वहाँ उनके (गुरुदेव के) भक्त थे ना एक दो, उनको (भक्तों को) किसी ने डराया कि तुम उनमें (कानजी स्वामी के पास) जाओगे तो तुम्हारे लड़के-लड़की नहीं ब्याहेंगे,

(जो) कानजी स्वामी को रखोगे तो। गुरुदेव के कान पर यह बात आयी तो (गुरुदेव को ऐसा लगा) कि मुझे किसी के ऊपर भार देकर नहीं रहना। उनको बोझ लगे तो मुझे यहाँ रहना नहीं। वहाँ से विहार कर गए। वो भाई थे ना, उनको ऐसा डर लगा, तो (गुरुदेव कहें कि) मुझे यहाँ रहना नहीं। वहाँ से रवाना हो गए।

वढवाण में स्थानकवासी के बहुत घर, सुरेंद्रनगर में बहुत घर (थे)। तो गुरुदेव कहें, यहाँ अपने को शांति नहीं रहेगी। चलो! ऐसा करते-करते बोटाद, ऐसा करते-करते सब यहाँ आये। फिर घूमते-घूमते जामनगर, वाँकानेर सब जगह गए। हम सब भी साथ-साथ गए। फिर गुरुदेव कहें उमराला तक चलें (फिर देखें) क्या होता है।

गुरुदेव को बचपन से ना ससनी का दर्द था, ससनी। ससनी बहुत थी। फिर बहिनश्री और मैंने विचार किया। हमको थोड़ी खबर थी, (तो) मैंने कहा सोनगढ़ का हवा-पानी बहुत अच्छा है। ऐसा सुना था, हम कभी गये नहीं थे। लेकिन वो दुधीबेन बारंबार आते थे ना (तो खबर थी)। दुधीबेन हमारे साथ में बहुत चौमासे करती थीं। दुधीबेन द्वारा हमने जाना कि सोनगढ़ का हवा-पानी बहुत अच्छा है। गुरुदेव वहाँ रहें, तो तबियत अच्छी रहेगी।

यहाँ आना था ना, तब मैं और बेन (बहिनश्री) दोनों अमरेली में थे। अमरेली से मैंने हरगोविंदभाई को कागज़ लिखा। (मैंने कहा) हरगोविंदभाई! गुरुदेव को परिवर्तन करना है और एकांत में रहना है। उनकी तबियत अच्छी रहे, इसके लिए हम दोनों बहनों ने सोनगढ़ का विचार किया है।

श्रोता : हाँ जी! हाँ जी!

पूज्य बेन : तो आप (हरगोविंदभाई) जल्दी आओ, गुरुदेव तो ज़्यादा करके (प्रायः) सोनगढ़ में ही रहेंगे। लेकिन आप गाँव के मुख्य

व्यक्ति हो और आपकी हाज़िरी हो तो बहुत अच्छा (हो)। तो उनका (ऐसा पत्र आया, क्योंकि) कुदरत (ऐसी) होनी थी ना भाई! इतना ज़्यादा (उनको) प्रमोद आया, तो उनका इतना अच्छा पत्र आया, हरगोविंदभाई का। इतना अच्छा पत्र आया कि ओहोहो! ऐसे महापुरुष जहाँ रहें, वहाँ तो तीर्थ बन जाये। ओहोहो! ऐसे सोनगढ़ के सद्भाग्य कितने कि हमारे गाँव में गुरुदेव रहें। उनके शब्द प्रमाण सब हुआ। ओहोहोहो! हमारा धन्य भाग्य! हमारा धन्य भाग्य! हमारा धन्य आँगन कि जहाँ ऐसे महापुरुष के पग, चरण पड़ें, यह भूमि तो तीर्थ हो जायेगी।

श्रोता : वाह! तीर्थ ही हो गई।

पूज्य बेन : ऐसा, उन्होंने ऐसा अच्छा लिखा!

श्रोता : जी हाँ! जी हाँ!

पूज्य बेन : वाह! बहुत अच्छा कागज़ आया। वह भूमि तो तीर्थ होगी। ओहोहोहो! हमारा महाभाग्य! ऐसा कहकर बिचारे (उन्होंने) बहुत उत्साह से लिखा।

(बनाव) बनने वाला था ना, इसलिए ऐसा लिखा। मुझे तो बहुत आनंद आया कि शगुन तो बहुत अच्छा हुआ। आपने (हरगोविंदभाई ने) यह लिखा, ये बराबर है। लेकिन आप आओ, इस प्रसंग पर। आप उमराला आओ। तो ये सब आये स्वयं, ये विजयाबेन, हरगोविंदभाई और दूधीबेन, ये तीनों आये। उमराला साथ में आए।

पूज्य बेन : गुरुदेव भी चलते-चलते उमराला आये। फिर उन्होंने (गुरुदेव को) कहा कि साहेब! सोनगढ़ पधारो। तो गुरुदेव ने कहा कि चलो! देखते हैं, कहाँ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव है।

उमराला आकर के यहाँ थम गए कि यहाँ हम सब तरह से विचार करें कि कहाँ जाना है। हम सब आये थे, बहिनश्री, मैं, दासभाई, प्रेमचंदभाई (राणपुर वाले) और दूसरे बहुत भक्त थे, वे सब यहाँ आये थे, उमराला में कि, गुरुदेव परिवर्तन करने के लिए जगह देखने हेतु इस तरफ जाते हैं। गुरुदेव उपाश्रय में उतरे थे। स्थानकवासी उपाश्रय है ना, यहीं उतरे थे। खुशालभाई को गुरुदेव ने पूछा कि मुझे तो इस स्थानकवासी का चिन्ह, मुँहपट्टी का त्याग करना है। तो खुशालभाई ने कहा कि, महाराज! आप मेरे भाई हो। आप मेरे गुरु हो, भाई और गुरु। तो आप जो करें, वह बराबर है। मुझे आपके सभी वचन मान्य हैं। गुरुदेव ने कहा कि पूरे समाज में खलबली होगी (और) आपको सहन करना कठिन पड़ेगा। तो खुशालभाई कहें कि हमें कुछ कठिन नहीं पड़ेगा। आप हमारे मेड़ी (अटारी) के ऊपर विराजना और ये मेड़ी (अटारी), ये सब आपका है। (क्योंकि) उनको (खुशालभाई को) कोई लड़के नहीं थे। (खुशालभाई बोले कि) मैं आपको ज़िन्दगी भर पालूँगा। आप ऊपर रहो, स्वाध्याय करो, वाँचो, आपको किसी प्रकार की आकुलता नहीं होने दूँगा और आप यहाँ रहो। आपके मन को किसी प्रकार का दुःख नहीं होना चाहिए। मार्ग का प्रवर्तन करो, आप व्याख्यान वाँचो, मैं सुनूँगा व्याख्यान।

तो गुरुदेव ने कहा कि मैं भाई के घर में नहीं रहूँगा। मैं तो त्यागी होकर निकल गया हूँ, फिर वापस मैं उस ही घर में आऊँ, ये मुझसे नहीं बन सकता। अभी मैं देखता हूँ कि चलते-चलते द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव क्या कहता है, ये देखता हूँ, ऐसा गुरुदेव ने कहा। क्या बोलती है कुदरत, ये मुझे देखना है। फिर खुशालभाई क्या बोलें, इसमें?

उमराला आये, तो स्थानकवासी के बड़े-बड़े सेठों को खबर पड़ गयी कि अब तो ये मुँहपट्टी निकालने को जाते हैं। चलो! हम उनको

विनती करते हैं। वहाँ सभी स्थानकवासी सेठों का सम्मलेन जमा हुआ (उमराला में)। दामोदर सेठ आये, राजकोट के सेठिया चुन्नीलाल दामजी वोरा, स्थानकवासी के सभी गणमान्य व्यक्ति (अग्रगण्य) वहाँ आये और राजकोट वाले दामोदर सेठ और वे प्राणजीवन मास्टर जिन्होंने गाया था ना, वो। आकर के बोले कि "महाराज! हमारी एक विनती है। इसमें आपका और हमारा सबका हित है।" गुरुदेव तो समझ गए तुरंत, लेकिन बोले नहीं। कि "हाँ बोलो बोलो! तुमको जो कहना है वह कहो।" (तो सभी ने कहा) कि "आप समयसार वाँचो, प्रवचनसार वाँचो, सब वाँचो। व्याख्यान में वाँचो, हमारी छूट। दिगम्बर शास्त्र वाँचो। हम सब व्याख्यान में आपके दिगंबर शास्त्र को सुनने के लिए तैयार हैं। बस एक ये चार अंगुली की मुखपट्टी रखो।"

तो महाराज साहेब (गुरुदेव) कहने लगे कि **"इससे ही मुझे परेशानी है। मुझे दूसरी कोई परेशानी नहीं (है)। मैं ये मुखपट्टी रखता हूँ बाहर से, बाहर से स्थानकवासी का साधु कहलाता हूँ और अंदर से मैं दिगंबर मानता हूँ, ऐसा मुझसे पलता नहीं है। मेरे आत्मा में तो जो अंदर है वही बाहर। मेरे (तो) बाहर (और) अंदर एक ही है, मुझे दूसरा कुछ नहीं पालना।**

इसके (मुँहपट्टी) कारण मेरी गिनती स्थानकवासी साधुओं में होती है। मुझे कोई स्थानकवासी साधु माने (पर) मैं तो स्थानकवासी को मानता ही नहीं, मैं तो स्थानकवासी का साधु हूँ भी नहीं, मैं तो दिगम्बर ब्रह्मचारी हूँ। मेरे में साधुपने की योग्यता नहीं," ऐसा (गुरुदेव ने) स्पष्ट कहा। **"मेरे में दिगंबर ब्रह्मचारी की ही योग्यता है। मैं प्ररूपणा करूँ कुछ! और आचरण करूँ कुछ! ये मुझसे सहन नहीं होता। मेरा आत्मा इसकी आज्ञा नहीं देता।**

मुझसे रह सकेगा नहीं। इसलिए मुझे तो मुँहपट्टी पहले छोड़ना है और मुझे मुँहपट्टी का त्याग करना ही है, ये बात चोखी है।"

फिर वो सब चिढ़ गए। (तो वो लोग बोलें) "महाराज आहार नहीं मिलेगा, आहार। रोटी नहीं मिलेगी, रोटी।" (गुरुदेव कहने लगे कि) **"इस मुखपट्टी के कारण रोटी नहीं मिलती। मुझे रोटी की कोई चिंता ही नहीं। पुण्य बेचकर नहीं खाते, पुण्य प्रमाण मिलेगा। कोई इस मुँहपट्टी से रोटी मिले, ऐसा कहीं है नहीं। इस देह को टिकना होगा तो (आहार) मिलता रहेगा। नहीं मिलेगा तो देखते हैं। फिर भी मैं तो मेरे आत्मा का कल्याण करने को निकला हूँ। मुझे रोटी की ज़रूरत नहीं और मुझे समाज की (भी) ज़रूरत नहीं। मुझे तो मेरे धर्म की लगनी है। कुंदकुंद आचार्य ने जो मार्ग बताया है, इस ही मार्ग का मुझे प्रकाश करना है। मेरे तो साथ में यह जो तत्वज्ञान है ना, ये मैं पढ़ूँगा और...."** तब वहाँ एक जीवनलाल जी महाराज थे ना, (तो गुरुदेव उनकी ओर इशारा करके कहने लगे) कि "ये मेरे जीवनलाल जी सुनेंगे (और) मैं पढ़ूँगा। मुझे किसी की (अपेक्षा नहीं)। मुझे वाड़ा बड़ा करना नहीं। मुझे ज़्यादा लोगों की अपेक्षा नहीं। मुझे तो मेरा यह तत्वज्ञान है, इसका मुझे स्वाध्याय करना है और जो सुनें, उनको सुनाऊँगा।"

(यह सब कहा और वो भी) सभी सेठ लोगों के मुँह पर (कहा) कि **"मुझे तो मेरे कुंदकुंद आचार्य का धर्म, जो मेरे हृदय में बैठा है, जो भव का नाश करने वाला है, जो अशरीरी पद प्राप्त कराता है, ऐसा कुंदकुंद आचार्य का धर्म है, यही धर्म मुझे जाहिर करना है। इसके लिए मैं यह परिवर्तन कर रहा हूँ। मैं तो दिगंबर आचार्यों का मार्ग मानता हूँ। जो मानता हूँ, वह मुझे प्रगट करना है। बस इसके लिए मैं यहाँ आया हूँ, यहाँ उमराला में। और मुझे जहाँ शांति**

लगेगी, वहाँ मैं मुँहपट्टी का त्याग करूँगा। मुझे कोई दुनिया का डर नहीं, मुझे रोटी की परवाह नहीं। मुझे तो आत्मा की ही दरकार है। मुझे मेरे आत्मा का धर्म प्रकाशित करना है।"

वहाँ खुशालभाई बैठे थे, गुरुदेव के भाई। खुशालभाई कहने लगे कि, "तुम सेठ लोगों को किसी को बोलने की ज़रूरत नहीं है। ये मेरा भाई है। मेरे भाई का मैं ज़िन्दगी भर बराबर पोषण करूँगा। ये इस मेड़ी (अटारी) के ऊपर रहेगा, ये व्याख्यान करेगा और मैं सुनूँगा और इसका पोषण मैं करूँगा। तुम को किसी को रोटी नहीं मिलेगी, ऐसा बोलने की ज़रूरत नहीं।" खुशालभाई ने बहुत जोर से कहा। फिर तो वो वे सब रोने लग गए, स्थानकवासी। और कहें कि "अरर्र! आप ऐसे स्थानकवासी को छोड़कर चले जाओगे, हम सबको, तो हमारा (धर्म) तो हीन (कम) हो जायेगा। आपके कारण तो हमारा स्थानकवासी (समाज) ऊँचा आया है। कानजीस्वामी के कारण स्थानकवासी (समाज) इतना आगे आया। ये (जो) आप स्थानकवासी को लात मारकर जाओगे, तो (फिर) हमारे स्थानकवासी की क्या कीमत (रहेगी)?"

गुरुदेव कहें कि **"जो हो (तो हो)। अंदर जो लगता है (मैं) वह ही कहता हूँ। मुझे तो ये कुंदकुंद आचार्य के शास्त्र से ऐसा लगा कि यह सच्चा है। मुझे तो जो यह सच्चा (है), वह ही प्रगट करना है। मैं अंदर आराधना इसकी (दिगंबर धर्म की) करूँ और बाहर उपदेश दूसरा दूँ, ऐसा मेरे से नहीं होता। मुझे तो यह ही कहना है। किसी को आना हो तो आये, न आना हो तो न आये, सुनना हो तो सुने, न सुनना हो तो न सुने।"**

फिर वे (सब) बेचारे रोते-रोते चले गए। क्या करें? (फिर गुरुदेव ने कहा) कि, **"जाओ! तुम सब जाओ! आना हो तो आओ, नहीं**

आना हो तो कोई (बात) नहीं। मुझे किसी की अपेक्षा नहीं। मैं तो व्याख्यान पढ़ूँगा और ये खुशालभाई और ये जीवनलाल जी सुनेंगे। बस! मुझे तो मेरे ज्ञान का घोलन करना है, वो मैं करूँगा।"

हरगोविंदभाई मोदी, वे यहाँ आए थे। दासभाई और हरीलाल भायाणी और अपने कांताबेन के पिताजी और हीराभाई भगत, जसीबेन के बापूजी, इन सबने कहा कि, "साहेब! हम आपके साथ हैं। आपको जो करना हो वह हम करने को तैयार हैं। और सोनगढ़ में कोई स्थानकवासी का घर नहीं, इसलिए आप वहीं परिवर्तन करो।"

(फिर) उमराला से रवाना हुए। गुरुदेव सबकी सलाह लेते थे। हर एक को पूछें। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कहाँ रहूँ? और जिसको जो लगे, वह कहें। तो हमको सोनगढ़ का लगा, तो हमने सोनगढ़ का कहा। तो गुरुदेव कहें कि "उमराला से सोनगढ़ तो नज़दीक है। चलो! वहाँ चलें। क्या होता है?"

यहाँ सोनगढ़, फाल्गुन वद तीज के दिन यहाँ सोनगढ़ आये। गुरुदेव तो पैदल चलकर आये (और) हम सब रेल में उतरे सोनगढ़। सोनगढ़ आये ना, तो (गुरुदेव का) ससनी का दर्द मिट गया।

श्रोता : आपने तो अमरेली में एक बार सुना, फिर (गुरुदेव के) साथ में (ही थे)? ऐसा?

पूज्य बेन : हाँ! बस! चार महीने, चौमासा हो ना, वहाँ जायें। आठ महीने तो नहीं जा सकते थे। लेकिन यह परिवर्तन का सुना ना, इसके लिए हम अमरेली से उमराला आये। मैं अमरेली में थी। बहिनश्री और मैं दोनों अमरेली में थे। तो अमरेली से उमराला आये। उमराला में सब सुना, तो फिर हम सब गाड़ी से यहाँ (सोनगढ़ में) उतरे।

हीराभाई भगत ने, गुरुदेव को विनती की कि "महाराज! मेरा एक टूटला-फूटला गाँव में मकान है। टेकरी ऊपर है। साहब! यह मकान देखो आपको कैसा लगता है? मैं आपको यह भेंट देता हूँ। आप उसको देखो, आपको शांति लगेगी।" गुरुदेव स्वयं अकेले देखने गए शाम को। तो गुरुदेव ने जैसे ही वहाँ पैर रखा, तो पाँच मिनिट में गुरुदेव कहें कि "मुझे इतनी शांति लगती है कि मेरे रोम-रोम में एकदम ठंडक हो गयी। इसलिए मुझे तो यहीं रहना है। मुझे कहीं जाना नहीं।" उनको बहुत अच्छा लगा कि "ओहोहो! ये अच्छा (है)।" हम सबको कहा। हम दोनों बहनें थे, दासभाई, प्रेमचंदभाई, ये सब पुराने। ये सभी हाज़िर थे, खुशालभाई, सब लोग यहाँ आये थे, हरगोविंदभाई, हरीलाल भायाणी। गुरुदेव ने कहा, "आप सब देख आओ बँगला, कैसा लगता है।"

(गुरुदेव ने सबको कहा) "ये अच्छा है क्योंकि यहाँ कोई स्थानकवासी का घर नहीं। इसलिए अपने को तो यहीं रहना है। यहीं मेरे को परिवर्तन करना है।" (हम सभी ने कहा कि) "आपको शांति बहुत रहेगी। अब दूसरे विकल्प छोड़ो।"

सभी भाई-बहिनों ने खुश होकर के गुरुदेव को कहा कि, "आप जिस ध्येय से यहाँ आये हो, वह ध्येय आपका सफल करो।" तो गुरुदेव ने हमको सबको कहा कि, "अपने को स्थानकवासी वालों के साथ रहना नहीं (है, क्योंकि) ये तो गाली के ऊपर गाली देंगे और पर्चे पर पर्चे निकालेंगे। अपने को स्थानकवासी के गाँव में रहना नहीं। तो यहाँ तो कोई स्थानकवासी नहीं। और हरीभाई भयाणी, हरगोविंदभाई और हीराबेन, तीन 'ह' हैं। तीन 'हकार' साथ में हुए, तो अपने को हकार समझ लेना (कि) अपने को कोई परेशान नहीं करेगा। ये मेरा आत्मा हकार करता है कि यहाँ शांति लगती है और विचार करके हम यहीं परिवर्तन करेंगे। हम तो यहीं रहेंगे।"

फिर हम (दोनों) को कहा कि, "आप दोनों बहनें अभी चले जाओ। आप यहाँ रहोगे तो लोग बहुत टीका करेंगे।" पेपर में इतने बड़े-बड़े अक्षरों में इतनी विरुद्धता आई, इतनी विरुद्धता आई। "आप यहाँ रहोगे और मैं परिवर्तन करूँगा तो टीका (निंदा) बहुत होगी। इसलिए आप अपने स्थान पर चले जाओ।"

(गुरुदेव ने आदेश किया कि) जब द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सब अनुकूल हो जायेगा, तब हरगोविंदभाई आपको पत्र लिखेंगे, तब आना। फिर हम चले गए। हरगोविंदभाई थे, भायाणी थे, वे सब यहीं रहे। वे सब सेवा करते थे।

फिर हरिभाई भायाणी के सामने उन्होंने विचार करते-करते ऐसा कहा कि कब परिवर्तन करना? तो उन्होंने स्वयं विचार करके नक्की किया और फिर अच्छा दिन ढूँढना है (क्यों) कि मुझे परिवर्तन करना है, यह बड़ी से बड़ी चीज़ है (इसलिए)। उनको स्वयं को ऐसा विश्वास (था) कि मेरे जैसा व्यक्ति और परिवर्तन करे, तो अच्छे से अच्छा दिन ढूँढना।

फिर सबने कहा कि "साहेब! चैत्र सुद तेरस, महावीर भगवान का जन्म कल्याणक है। अच्छे में अच्छा दिन है। भगवान का दिवस हम लें, तो अपने को पूज्य भगवान हैं, इसलिए अपने को यही दिवस लेना।" ऐसा कहकर हरिभाई भायाणी को स्वयं (गुरुदेव ने) कहा कि, "भगवान का एक अच्छा फोटो ले आओ। मैं भगवान के समक्ष, इस खोटे धर्म का त्याग करूँगा और सच्चा धर्म अंगीकार करूँगा।"

पूज्य बेन : कौनसा गाँव है वो?

श्रोता : पार्श्वनाथ भगवान (का फोटो, जो बैंगलोर के पास) जिननाथपुरी (नामक गाँव में स्थित मंदिर है, उसमें विराजमान प्रतिमा का फोटो है)।

पूज्य बेन : पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा है, उसका यह फोटो है। यह फोटो देखा और गुरुदेव ने रखा और उसके सामने गुरुदेव णमोकार मंत्र बोले, माँगलिक कहा और **"प्रभु! (मैं) आपका सच्चा धर्म अंगीकार करता हूँ, इस खोटे धर्म का त्याग करता हूँ।"** ऐसा कहकर मुँहपट्टी निकाल दी। **"इसका त्याग करता हूँ और आपका दिगम्बर मार्ग सच्चा है, उसको पूरे हृदयपूर्वक अंगीकार करता हूँ।"** फिर बोले, सबके बीच कि **"मुझे यह बहुत खटकता था कि मैं मानता हूँ कुछ और मैं दिखता हूँ कुछ और, ये मुझे पोसाता नहीं था। ये मुझे मनुष्यपना, यह मुझे मिला, ऐसा धर्म मिला, कुन्दकुन्द आचार्य देव की मुझे शरण मिली और मैं ऐसा झूठा (धर्म धारण) रखकर के बैठा हूँ, मेरी ज़िन्दगी बिगाड़ूँ, मेरी ज़िन्दगी मुझे बिगाड़नी नहीं, इसलिए अब मेरा आज से इसका त्याग है। इसलिए मैं तो दिगंबर ब्रह्मचारी हूँ, इस तरह से तुमको जाहिर करता हूँ।"**

(और फिर कहा कि) "हरिभाई! आपको ज़रा छापना हो (समाचार-पत्र में) तो छाप दो। आपको जैसा छापना हो, वैसा छापना। लेकिन ज़्यादा विरोध न हो, ऐसा करना।"

स्थानकवासी ने तो बहुत तूफ़ान किया। इतने बड़े-बड़े अक्षरों में, **कानजी स्वामी ने मुँहपट्टी का परिवर्तन किया, स्थानकवासी का त्याग किया।** इसके अलावा कितने अपशब्द, बहुत अपशब्द पर्चे (समाचार-पत्र) में, खराब-खराब शब्द (लिखे)। फिर ये सब (बातें) कोई गुरुदेव को कहे नहीं कि इस छापे (समाचार-पत्र) में ऐसा आता है। वहाँ हरिभाई, हरगोविंदभाई, (हीराभाई) तीनों थे। वे कहने लगे कि, "गुरुदेव के दिमाग में (क्या पता क्या) बैठ जाये, तो कोई (कुछ) कहो (ही) नहीं।"

बस (गुरुदेव ने) परिवर्तन किया, फिर पंद्रह दिन (के लिए) मौन, मौन धारण किया कि कोई मुझे पूछने नहीं आये। ये जवाब देंगे, हरगोविंदभाई और हीराभाई। मैं जवाब नहीं दूँगा किसी को। मेरे को जवाब देने की, माथाकूट करने की (ज़रूरत नहीं)। मुझे (किसी को) जवाब देना नहीं। ये हरगोविंदभाई और हीराभाई जवाब दे देंगे। इसलिए पंद्रह दिन का मौन धारण किया। पीछे समाचार-पत्र में छपा था (कि) कानजी स्वामी का पंद्रह दिन का मौन है।

इन लोगों ने इतनी सेवा की भाई कि रात को चौकीदारी करें, बारी-बारी से। इन सबको डर लगे और ये तीनों जन, दो महीने तक, रात और दिन चौकीदारी करते थे, गुरुदेव की। बँगले में फिरते रहें कि किसको खबर (कब क्या हो जाये)? भाई! ये (तो) महापुरुष हैं (अर्थात् इनका ध्यान रखना चाहिए)। इसलिए ये हरिभाई, हरगोविंदभाई और हीराभाई और उनके लड़के लोग, ये सब फिरें बंगले में। तीन-चार भाई लोग रात-दिन जागें, बारी-बारे से। किसी को आने नहीं दें यहाँ। ऐसा गुरुदेव की रक्षा करने के लिए सब (कुछ किया)। उस बँगला के क्या (नाम है)?

ब्र. रमाबेन : **Star of India.**

पूज्य बेन : हाँ! Star of India. मैं गुरुदेव की बात करूँ, तो मेरा सारा दर्द मिट जाये। मुझे भले जैसा दर्द हो, वह सब मिट जाये और मुझे एकदम रोम-रोम में उल्लास आ जाये और मेरी सर्दी पूरी मिट जाये।

हरगोविन्दभाई ने बहुत बड़ा काम किया और पूरे चौमासे में जितने मेहमान आयें, उन सबको हरगोविंदभाई भोजन करायें, अपने घर पर कि मेरे ऐसे कहाँ से भाग्य (जागे) कि ऐसे महापुरुष मेरे आँगन में पधारे। शुरू हो गया वहाँ से, चौमासा शुरू हो गया।

फिर हम चले गए थे ना, तो फिर गुरुदेव ने कहा कि, "अभी हमको (शास्त्र) वाँचना नहीं है।" फिर (माहौल) शांत पड़ गया, तो (गुरुदेव) समझ गए कि अब बहनें आयें तो कोई परेशानी नहीं।

इसलिए गुरुदेव ने हरगोविंदभाई को कहा कि, "बहनों को, दोनों बहनों को बुलाओ। अपने को समयसार पढ़ना है। बहनें आयें, तो हम समयसार पढ़ेंगे।" इसलिए हरगोविंदभाई ने कागज़ लिखा कि "गुरुदेव को समयसार वाँचना है, गुरुदेव ने कहा है (कि) बहनों को बुलाओ। इसलिए मैं आपको लिखता हूँ कि आप आओ। गुरुदेव ने कहा है कि बहनों को बुलाओ। बहनें आये तो हम समयसार का वाँचन शुरू करें। अब समयसार का वाँचन, व्याख्यान शुरू करना है।" व्याख्यान वाँचते नहीं थे। स्वयं पढ़ते थे, लेकिन सभा में नहीं। सभा कोई थी ही नहीं, क्या वाँचें? फिर हम आये, फिर समयसार शुरू किया।

श्रोता : बहिनश्री साथ में आये?

ब्र. रमाबेन : कि दोनों बहनें साथ में आयीं थीं ना सोनगढ़?

पूज्य बेन : (हाँ!) साथ में ही आये थे। उसके पहले से ही हम, परिवर्तन की शुरुआत थी ना, तो हम साथ में ही रहते थे। वो वाँकानेर जायें, तो मैं (भी) वाँकानेर जाऊँ। मैं अमरेली आऊँ, तो बहिनश्री अमरेली आयें कि गुरुदेव का ऐसा (परिवर्तन-काल) है, इसलिए अपने को साथ में ही रहना। इसलिए हम साथ में ही रहते थे। मेरे गाँव में वो आती थीं, उनके गाँव में मैं जाती थी। इसलिए गुरुदेव के समाचार आये। इसलिए हम दोनों बहनें तुरंत साथ में आये, सोनगढ़ में, कि, "गुरुदेव को समयसार वाँचना है और अपने को याद किया, अपना महाभाग्य (है)। इसलिए अपने को जाना है।" उस दिन से हम यहाँ रहने लगे थे, विक्रम संवत् 1991 (ईस्वी सन् 1935) की साल (से)। और हम जब

आये थे, तब चैत्र (का) महीना था, चैत्र (का) महीना। गुरुदेव (ने) चैत्र में परिवर्तन किया (था)।

एक बार वाँचें, दोपहर में। दो बार नहीं वाँचते थे। एक लाइन भाइयों की तरफ। पाँच-दस भाई थे, पाँच-दस बहनें थीं। इतना बड़ा हॉल था, खाली पड़ा रहता था। कौन आये उसमें?

पर्युषण आये पहले-पहले। तो पर्युषण में, पहले ही पर्युषण में, तीन सौ लोग आये। बोटाद के स्थानकवासी के मुखिया थे ना, रायचंद गाँधी। वो पूरा उनका कुटुंब लेकर आये। वो मुख्य (थे), बोटाद सम्प्रदाय के और (उनको) गुरुदेव के ऊपर बहुत प्रेम, बहुत प्रेम था। इसलिए गुरुदेव के प्रेम के कारण (आए)। गुरुदेव ने परिवर्तन किया, (इस बात का) उनको बहुत दुःख हुआ कि ऐसे महापुरुष अपने में से (चले) गए। फिर उन्होंने समाधान किया कि, "(गुरुदेव) जो वहाँ बात करते थे (वही यहाँ करते हैं)।"

फिर उन्होंने समाधान किया कि, "ये (गुरुदेव) कहीं गए नहीं (हैं)। ये तो यहीं हैं। हम उनके चरणों में जाकर के पड़ें, हम उनके चरणों में रहें, बस तो अपने सामने ही हैं गुरुदेव। कहाँ चले गए हैं? हम क्यों दुखी हो रहे हैं?" उन्होंने (ऐसा) समाधान किया और बोटाद के कितने लोग, स्थानकवासी, उनको सबको लेकर आये, यहाँ। पहले ही पर्युषण में।

उन्होनें कहा कि, "महाराज! आप तो हमारे आत्मा में अंदर बैठ गए हैं। आप हमारे आत्मा में घर कर गए हो। आपका तत्व हमको बैठ गया है। इसलिए हम आपको छोड़ेंगे नहीं।" तो रामजीभाई ने कहा कि, "ये शगुन बहुत अच्छा हुआ कि रायचंद गाँधी बोटाद सम्प्रदाय के, फिर भी उन्होंने सबसे पहले ही संप्रदाय का वाड़ा तोड़ा, इसलिए बहुत अच्छा हो गया।"

श्रोता : रामजीभाई तब साथ में थे ना?

पूज्य बेन : रामजीभाई तब तो वकालत करते थे। लेकिन पर्युषण आयें या ऐसा कोई बड़ा प्रसंग आये, तो (पधारें) सोनगढ़। महीने में एक बार तो आयें ही, आठ दिन रहें। ऐसा कहते थे कि मुझे वकालत छोड़ देनी है, लेकिन थोड़ा टाइम है अभी। पर्युषण में तो आयें ही (आयें)।

पूरी व्यवस्था करनी हो ना, तो हरगोविंदभाई, रामजीभाई को पूछकर करें सब। फिर इतने बड़े हॉल में...इतना बड़ा गुरुकुल है ना, उस गुरुकुल की जगह माँगें, व्याख्यान के लिए, (लोग) समाते नहीं थे। फिर वहाँ जायें गुरुदेव आठ दिनों के लिए। (Star of India के निवास के समय)।

इस तरह गुरुदेव ने इतनी निर्भयतापूर्वक (परिवर्तन किया)। जीवनलालजी महाराज गुरुदेव के शिष्य थे। उन्होंने कहा गुरुदेव को कि, **"महाराज! आपके पीछे हम हैं। हमसे यह काम होता नहीं। यह साहस जो आप करते हो, समाज में रहकर यह मुँहपट्टी का त्याग और पूरे स्थानकवासी संप्रदाय के सामने, यह आपका काम (है), हमारा काम नहीं। हम तो भेड़ और बकरे हैं, आप तो सिंह हो।"**

(तालियों की गड़गड़ाहट)

जीवनलालजी कहें (कि) **"आप सिंह हो, सिंह जैसा काम करते हो।"**

ये स्थानकवासी के इतने लोग, (उनको) गुरुदेव के प्रति प्रीति (थी)। उनकी (गुरुदेव की) वाणी में मिठास इतनी कि, स्थानकवासी सब ऐसे, ऊपर जैसे झड़ी पड़े, ऐसे झड़ी पड़ती थी।

"इन सबको लात मारकर आपने इस दिगंबर धर्म को स्वीकारा," जीवनलालजी महाराज कहें कि, **"महाराज! यह आपके जैसे सिंह का काम है, हमारा काम नहीं। हम तो भेड़ और बकरे कहलाते हैं। हम आपके पीछे-पीछे हैं।"**

गुरुदेव कहें कि **"यह मार्ग सच्चा है। अनंतकाल से इस सच्चे मार्ग की सेवा नहीं की, इसलिए मुझे तो इस मार्ग की ही आराधना करना है।"** ऐसा गुरुदेव ने साहस किया।

(समयसार शास्त्र मिला) तो प्रमोद आने से उनको ऐसा लगा कि वास्तव में यह शास्त्र ही, अपने जन्म-जरा-मरण का नाश करने वाला, यही शास्त्र है। तो यह कुन्दकुन्द आचार्य का शास्त्र ही, यही भव का उद्धार करने वाला है। उसमें से उनको घोलन चलते-चलते उसमें से उनको सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया। ऐसा गुरुदेव स्वयं कहते थे। फिर छोड़ने का निश्चय बाद में किया, बाद में कि, अब अपने को (ये) छोड़ना है।

श्रोता : इसलिए अनुभव होने के बाद दृढ़ता आयी?

ब्र. रमाबेन : अनुभव हो गया फिर बाद में ज़्यादा दृढ़ता आयी कि अब यह कुछ नहीं?

पूज्य बेन : हाँ! हाँ! फिर इस झूठे (धर्म) में से निकलने के लिए बहुत प्रयत्न किया। लेकिन ऐसे किस तरह से निकलना? ऐसा कि अप्रभावना तो ज़्यादा हो जायेगी, (लेकिन ज़्यादा) न हो (कम से कम हो), इसके लिए प्रयत्न किया। लेकिन जिस काल में जो बनना हो, उस प्रमाण बनता है। उनका जिस प्रमाण से बनना था, उस प्रमाण में, (विक्रम सम्वत्) 1991 (ईस्वी सन् 1935) की साल में परिवर्तन हो गया।

Track Number 67

परिवर्तन संबंध के हस्ताक्षरों में, पूज्य कहान गुरुदेव द्वारा हस्तलिखित भाव - पूज्य बेन शांताबेन द्वारा वाँचन।

पूज्य बेन : आज तो मुझे परिवर्तन की बात करनी है।

श्रोता : बहुत बात आयी।

पूज्य बेन : बहुत आनंद था। गुरुदेव ने स्वयं का हृदय लिखा, किस कारण से उन्होंने परिवर्तन किया, कारण बताया है। (उन्हें) आघात लगता था, वो सहन नहीं कर सके।

श्री वीतरागाय नमः। अब **निवेदन।** ऐसा करके शुरू किया है कि **अब तक मैं जो इस स्थिति में हूँ,** अर्थात् यह स्थानकवासी, **मैं जिस स्थिति में हूँ, उस स्थिति में, मुझे मेरी कोई वृद्धि बहुत लगती नहीं। इसलिए फेरफार करने का (विचार) मुझे, विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) की साल में राजकोट चातुर्मास था, उसके पर्युषण से मुझे ये विचार शुरू हो गया हैं।** ऐसा लिखा है, स्वयं। **राजकोट के पर्युषण में, विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) के पर्युषण से मुझे ये विचार एकदम चालू हो गया।** उसका कारण क्या? कि **जो धर्म की विशालता का स्वरूप है,** अर्थात् धर्म का सच्चा स्वरूप है, **वह मैं जहाँ कहने जाता हूँ, वहाँ मुझे हिचकिचाहट होती है,** उसका कारण मुँहपट्टी। **मुँहपट्टी में बैठे-बैठे वह मुझे कहना हो तो मुझे हिचकिचाहट होती है। उसका मुझे बहुत आघात लगता है। ये मुझे जो हिचकिचाहट होती है, उसका मुझे बहुत आघात लगता है, इसलिए (फेरफार होता है)। और**

दूसरा, कितने तो संप्रदाय के प्रतिबंध के कारण। उसका कारण ऐसा है कि इस संप्रदाय में कुछ विरुद्धता न हो (ऐसा विचार किया), इसलिए अभी तक मैंने निभाया और मेरा समय इसमें बीत गया। लेकिन अब मुझे ऐसा लगता है कि, मुझे इसमें मेरा वृद्धिपना दिखाई नहीं देता। इसलिए विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) की साल में मैंने निर्णय किया कि विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) साल पूर्ण हो जाये, तब फेरफार कर देना चाहिए और निर्णय पर आ जाना चाहिए। लेकिन कहाँ रहना, यह नक्की नहीं होता था। यह नक्की नहीं होता था, इसलिए विक्रम सम्वत् 1990 (ईस्वी सन् 1934) की साल में फिर से राजकोट में चातुर्मास करने का नक्की किया और राजकोट चातुर्मास करके वहाँ निर्णय लेना, ऐसा नक्की किया।

ऐसा सब लिखा है, (उन्होंने) स्वयं। ऐसे विक्रम सम्वत् 1990 (ईस्वी सन् 1934) की साल में, हम सब (मैं और बहिनश्री और बाकी और भी लोग राजकोट में) वहाँ थे, उस समय। वहाँ निर्णय लेंगे ऐसा नक्की किया।

ऐसा करके, बाद में फिर से उन्होंने लिखा है कि, **मुझे इसमें, यह जिस स्थिति में मैं हूँ, उसमें मुझे मेरी कोई वृद्धि दिखती नहीं है, इसलिए मेरा अब यह परिवर्तन हो रहा है। और मुझे दीक्षित हुए अभी 21 साल हुए हैं। 21 वर्ष हुए हैं और इसमें मैंने रहकर मेरी शक्ति (के) अनुसार सूत्र, ग्रंथ, शास्त्र, उनका वाँचन, मनन (मैंने) मेरी शक्ति अनुसार किया है, अब यह परिवर्तन हो रहा है।**

कितने सुंदर लिखे हैं सभी अक्षर! पढ़कर मुझे बहुत आनंद आया। इन सभी भाइयों को, आज मुझे यह बात बताना है।

गुरुदेव ने (अपने) हस्ताक्षरों में उनका स्वयं का हृदय लिखा, बाकी तो सबकी, इन सबकी सिर्फ लिखावट (कापी) ही की है (अंतरंग नहीं लिखा)। आनंदघनजी के कितने (पद) हैं, आनंदघन जी के बहुत पद - "आशा औरन की क्या कीजे"।

ये सब आनंदघनजी के हैं कि "हवे मारे रमत रमवी नथी। होये रमत घड़ी बे घड़ी, युगंतर बीति गया, मारे रमत रमवी नथी।" ये सभी वैराग्य के पद हैं, वे सब लिख लिए थे। उसका कारण क्या? कि पहले विहार करें ना, तो किताबें साथ में लेकर जानी पड़ती थी। ये बड़े-बड़े ग्रंथ होते हैं ना, आनंदघनजी के (ग्रंथ) बड़े हैं। उनको उठा नहीं सकते थे। इसलिए इतना सारा लिख-लिखकर, जो प्रयोजनभूत हो तो वह लिखें और ये सब साथ में ले जायें, जहाँ जायें वहाँ। इसलिए वे सब हस्ताक्षर में लिखे हुए हैं।

एक बार पँचाध्यायी पढ़ा, गुरुदेव ने। पँचाध्यायी पढ़कर उन्होंने ऐसा सूत्र निकाला कि पँचाध्यायीकार ने ऐसा लिखा है कि शरीर में असाता का उदय नहीं आये, उसके पहले आत्मा का (काम) कर लेना। ऐसा, ज्ञानियों ने पंचमकाल के जीवों की असमर्थता देखकर, ज्ञानियों ने ऐसा उपदेश दिया है। ये कितनी अच्छी बात है! ये बात भी मुझे बहुत अच्छी लगी कि वाह! गुरुदेव ने बराबर मुद्दा उसमें से खींच निकाला, क्योंकि जब तक शरीर में असाता का उदय नहीं आये, तब तक आत्मा का (काम) कर लेना।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : ऐसी पंचमकाल के जीवों की असमर्थता देखकर, ज्ञानियों ने ऐसा उपदेश दिया है। ये दो वाक्य मुझे बहुत अच्छे लगे।

श्रोता : बहुत अच्छा!

पूज्य बेन : बाकी ये परिवर्तन का पूरा पन्ना है, पूरा पन्ना है। ये पन्ना तो मुझे बहुत अच्छा लगा। सुबह में मैंने पाँच बार, छह बार पढ़ा। हर शब्द मुखपाठ कर लिया, पूरा पन्ना मुखपाठ कर लिया। (ऐसा सोचा कि) आज सब भाइयों को बताऊँगी कि यह तो गुरुदेव का अक्षर-देह मिल गया। साक्षात् यह औदारिक देह (तो) नहीं लेकिन अक्षर-देह तो मिल गया। तो गुरुदेव के दर्शन हो गए, मुझे बहुत आनंद हुआ। कल मुझे बहुत आनंद आया।

मैंने फिर से पढ़ा पूरा पन्ना, पक्का कर लिया, मुखपाठ। परिवर्तन का इतना सुंदर लिखा है, पूरा हृदय लिखा है ना। उसको पढ़कर बहुत आनंद हुआ कि इतने वर्ष हो गए, हमको कोई खबर (नहीं थी)। गुरुदेव उनकी पोथी में बंद करके रखते थे, कुछ दिखाते नहीं थे किसी को। जो स्वयं का हो वो किसी को कहें नहीं। इसलिए अभी इतने सालों के बाद हमने, बहिनश्री और मैंने आज ही पन्ना देखा। पहले देखा ही नहीं था यह पन्ना। परिवर्तन का लिखा है बहुत अच्छा।

श्रोता : (गुरुदेव ने) मुख से भी ये बात नहीं की थी, आप से किसी से?

पूज्य बेन : ऐसी कोई (बात नहीं की थी)। परिवर्तन की बात बहुत करते थे सब (कि) परिवर्तन करना है। वो भाई, वनीचंद सेठ, अपने साथ अगास-वड़वा (गुजरात के गाँव) ले जाने का बहुत कहते हैं। हम दोनों बहनों के सामने (गुरुदेव ने) कहा कि (वनीचंद सेठ मुझे) अगास - वड़वा ले जाने का कहते हैं, लेकिन मैं किसी के हाथ के नीचे रह सकूँ, ऐसा मुझे रुचता नहीं है (क्यों)कि किसी संप्रदाय में रहना हो तो, उनकी आज्ञा के अनुसार करना पड़ता है ना। हाँ! सम्प्रदाय में रहना हो तो उनकी आज्ञा के अनुसार करना पड़ेगा। वह मेरे से हो सकेगा

नहीं। हमको कहें कि आप दोनों बहनों के ऊपर भी उन लोगों का दबाव आयेगा ना, तो फिर (तो अगास नहीं गए)।

परिवर्तन किया, तब कौन से विचार किए, ये सब एक कागज़ में लिखा है। ये कागज़ कल हसमुखभाई ने छपाया ना, उसमें उन्होंने 60 (कॉपी) पन्ने छपाये। 60 पन्ने लंबे-लंबे। बाद में मैंने कहा और है? तो उन्होंने कहा कि अब नहीं है। किताब में लिखा हुआ हो तो वह तो किस तरह से छपावें? यह तो अलग से पन्ना था, (इसलिए) 60 पन्ने छपाये। कल पहली बार देखा। उसमें (से) पहला ही (पन्ना उन्होंने) मेरे हाथ में दिया, परिवर्तन का, (तो) मुझे बहुत ही आनंद आया।

गुरुदेव ने परिवर्तन किया, तब स्वयं के कौन से विचार (थे) और किस तरह से किया, (यह) सब अपने हाथ से लिखा है। यह तो एक अक्षर-देह हमको मिला ना, अपने हाथ से लिखा हुआ। इस अक्षर-देह का दर्शन हुआ तो मुझे बहुत आनंद हुआ कि आज तो गुरुदेव के एक अंश का दर्शन हो गया।

यहाँ लिखा है पहले ऊपर,

ओम शांति! ओम शांति! वीतरागाय नमः। निवेदन।

निवेदन लिखता हूँ कि **मैं जिस स्थिति में वर्तमान में हूँ, उस स्थिति में मुझे मेरी आत्मा की वृद्धि दिखती नहीं इसलिए मुझे विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) के पर्युषण में बहुत विचार आये कि हमको इस स्थिति से परिवर्तन कर लेना चाहिए। निवृत्ति ले लेनी (चाहिए) और विक्रम सम्वत् 1987 (ईस्वी सन् 1931) की साल में भी मुझे ऐसे विचार आते थे कि निवृत्ति ले लेना और संप्रदाय के प्रतिबंधों को कम कर देने चाहिए। ऐसे विचार आया करते थे विक्रम सम्वत् 1987 (ईस्वी सन् 1931) की साल से,**

पोरबंदर में चातुर्मास था, विक्रम सम्वत् 1987 (ईस्वी सन् 1931) में। विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) में राजकोट में (चातुर्मास) था। विक्रम सम्वत् 1987 (ईस्वी सन् 1931) से ऐसा करते-करते भी ऐसा लगा कि इस संप्रदाय में कोई भी प्रकार की विरुद्धता न हो, इसके कारण इतना समय व्यतीत हुआ। लेकिन अब तो बहुत विकल्प आते हैं, बहुत विचार आते हैं, राजकोट विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) में कि परिवर्तन कर ही देना है। उसका कारण क्या है? कि, सच्चे धर्म की विशालता का स्वरूप, यह दिगंबर धर्म, इस सच्चे धर्म की जब बात करता हूँ, तब मेरा हृदय हिचकिचाता है क्योंकि मुँहपट्टी में बैठे-बैठे कह सकते नहीं ज़्यादा। इसलिए विरोध होगा, ऐसा सोचकर (मेरे हृदय में) हिचकिचाहट होती है। इसका मुझे बहुत आघात लगता है। समझ में आया? ये, हृदय में हिचकिचाहट होती है, उसका मुझे आघात लगता है, इसलिए मुझे यह परिवर्तन करना है। मुझे सच्ची बात जाहिर करनी है। जो मैं सत्य बात बाहर करने जाता हूँ, तो मुझे ऐसा लगता है कि ये विरोध करेंगे, इसलिए मेरे हृदय में हिचकिचाहट होती है। हिचकिचाहट होती है, उसका मुझे आघात लगता है। इसलिए विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) से जोरदार मुझे विकल्प उठा है। बहुत विकल्प आते हैं। बहुत विचार आते हैं। इसलिए विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933 चातुर्मास) से बाद में, यहाँ से जाना और फ़ौरन परिवर्तन कर देना (ऐसा नक्की किया)। लेकिन विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933 का चातुर्मास) पूरा हुआ तो ऐसा लगा (कि परिवर्तन तो करना) परन्तु, कहाँ रहना वह कुछ नक्की किया नहीं था। इसलिए फिर ऐसा

लगा कि विक्रम सम्वत् 1990 (ईस्वी सन् 1934) की साल का चातुर्मास भी राजकोट कर लेना, बाद में निर्णय पर आना।

ये सब हो गया, लम्बा नहीं लिखा कि विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933 का चातुर्मास) हो गया, विक्रम सम्वत् 1990 (ईस्वी सन् 1934 का चातुर्मास) हो गया पूरा, बाद में यहाँ सोनगढ़ आये।

यह परिवर्तन जिस दिन किया था स्वयं ने, उस दिन लिखा था यह सब। **इसलिए,** फिर से दूसरी बार लिखा है कि, **इसमें दीक्षित हुए मुझे 21 वर्ष हुए। इसमें रहकर मेरी आत्मा में, धर्म में, मुझे (कुछ) वृद्धि-कारण दिखता नहीं, इसलिए यह परिवर्तन हो रहा है और इसमें रहकर मेरी शक्ति अनुसार इसके शास्त्रों, सूत्रों, को मैंने पढ़ा, विचारा, जाना और ये सब करने (बहुत सोचने-समझने) के बाद अब यह परिवर्तन हो रहा है।** ऐसा आखिरी शब्द लिखा है।

परिवर्तन करने के लिए कितने विचार किए (यह पढ़कर), बहुत आनंद आया मुझे। यह गुरुदेव का हृदय आ गया ना, पूरा हृदय आ गया इसमें कि, किस कारण से परिवर्तन किया है, यह तो हम जानते थे। हमको तो सब कहा था, गुरुदेव ने सामने सब बात की थी कि यह (धर्म) झूठा है। मैं सच्चा (धर्म) गुप्त रखूँ और झूठे (धर्म) का बाहर दिखावा करूँ, यह मेरे से सहन होता नहीं। मुझे इस मुँहपट्टी में देखकर महाराज मानें, साधु मानें, तो मैं साधु नहीं और मुझे साधु के जैसे लोग मानते हैं, यह मेरे से सहन होता नहीं।

श्रोता : बहुत अच्छा!

पूज्य बेन : मैं तो एक दिगंबर ब्रह्मचारी हूँ और यह तत्व की, कुंदकुंद आचार्य देव की बात जो है, वह बात मुझे जाहिर करनी है। कुंदकुंद आचार्य की ही नहीं, दिगंबर आचार्यों की। उनकी सत्य बात

जो मुझे बैठी है, वह मुझे जाहिर करनी है। वह जाहिर होती नहीं (मुझसे, इसका) मुझे आघात लगता है, इसलिए मैं परिवर्तन कर रहा हूँ। कारण-कार्य सहज है, ऐसा है। मुझे बहुत आनंद आया कल यह पढ़कर कि वाह!

ब्र. रमाबेन : हसमुखभाई कहते थे कि बेन को बहुत आनंद आया था।

पूज्य बेन : हसमुखभाई ने ऐसा कहा था? मैं तो इतनी खुश हो गयी कि वाह! गुरुदेव ने अपना हृदय लिखा और यह तो (अपने को) गुरुदेव की अक्षर-देह के दर्शन हो गये। बहुत अच्छा! उन्होंने हेतुत्व-कारणत्व स्वयं ने बताया ना। (उसका) हेतुपना-कारणपना (बताया)। (स्वयं) अपने सामने बात की, लेकिन हाथ से लिखकर यह सब बताया!

इसका मुझे आघात होता है, यह तो नया शब्द (है)। यह तो हमने सुना ही नहीं था। (गुरुदेव) हमको तो ऐसा कहते थे कि हमारे हृदय में कुछ और बाहर कुछ और, यह मेरे से सहन नहीं होता। जो अंदर मानता हूँ, वह ही बाहर मुझे प्रगट करना है। यह तो अंदर लिखा कि

सत्य बात को जाहिर करने में हृदय हिचकिचाता है। हिचकिचाता है, उसका मुझे आघात लगता है। इसलिए मुझे यह परिवर्तन करना है। और इसमें (मुँहपट्टी में) रहकर मेरे आत्मा (के धर्म) का वृद्धि-कारण दिखता नहीं, बस ऐसा लिखा है। यह हमें नहीं कहा था कभी।

इसमें रहकर मेरे आत्मा का वृद्धि-कारण मुझे दिखता नहीं, इसलिए मेरे आत्मा की वृद्धि करने के लिए यह शास्त्र, सूत्र सब मैंने पढ़े हैं, यथाशक्ति, अब मेरा यह परिवर्तन होता है। यह

करके अंतिम शब्द रख दिया। इतना बड़ा पन्ना है। छोटे-छोटे अक्षर में सब लिखा है।

श्रोता : बहुत अच्छा! अक्षर कितने सुंदर थे!

पूज्य बेन : अक्षर के अंक, बनावट और सब बहुत सुंदर हैं, बहुत सुंदर है। मुझे देखकर बहुत आनंद हुआ। इसमें गुरुदेव का हृदय इसमें कितना अच्छा आया। मुझे बहुत आनंद आया। मैंने कहा - वाह!

फिर विक्रम सम्वत् 1989 (ईस्वी सन् 1933) की साल, विक्रम सम्वत् 1990 (ईस्वी सन् 1934) की साल, विक्रम सम्वत् 1987 (ईस्वी सन् 1931) की साल, हम तो सब जगह साथ में ही थे। विक्रम सम्वत् 1987 (ईस्वी सन् 1931) में भी हम साथ थे। वहाँ देवीदास घेवरिया आये थे, पोरबंदर में। उनके सामने गुरुदेव ने कहा था कि मुझे परिवर्तन करना है, यह संप्रदाय छोड़ना है। वो तो बिचारे ऐसे एकदम ऊँचे उछलते थे। करो, करो, करो, स्वामी! मैं आपके साथ में हूँ। देवीदास घेवरिया, बहुत प्रमोदी थे। तब से हमने सुना था कि गुरुदेव परिवर्तन करने वाले हैं। लेकिन गुरुदेव खुद कहें तब ज़्यादा अच्छा।

मैंने आपको उस दिन बात किया था ना।

श्रोता : जी हाँ!

पूज्य बेन : पहले हम दोनों को थोड़ा कहा। फिर बेन (बहिनश्री) चले गये सूरत और मैं चली गई, अमरेली। (परंतु) गुरुदेव को जो मुख्य कहना था, वह रह गया। उसके बाद नानचंद काका को गुरुदेव ने कहा कि शांताबेन कहाँ है? (काका ने कहा-) कि साहेब! यहीं हैं। यहीं हैं लेकिन (अभी) अमरेली गईं हैं। (गुरुदेव ने पूछा-) अमरेली गईं हैं? बाद में (गुरुदेव) कुछ बोले नहीं।

बाद में नानचंद काका ने यहाँ आकर मुझसे बात की कि गुरुदेव आपको याद करते थे, (ऐसा पूछते थे कि-) शांताबेन कहाँ है? मुझे थोड़ी बात करनी है।

मैंने कहा - अरर्र काका! आप से गुरुदेव ने ऐसी बात की। गुरुदेव तो कभी-कभी ही बोलते थे। बहुत तो बोलते ही नहीं थे। बहुत ऐसे कड़कपने से रहते थे। तो मैंने कहा कि आपको मुझे वहाँ तो कहना था कि गुरुदेव ऐसा कहते हैं तो मैं तो फौरन ही (जाती)। फिर मैंने कहा कि अभी कहाँ दूर हैं? अभी तो गुरुदेव तो राजकोट में है, चलो हम चलें। तो दूसरे दिन सुबह तो हम रवाना हो गये, काका और मैं दोनों। राजकोट गये। गुरुदेव को नानचंद काका ने टाईम पूछा। तो (गुरुदेव ने) कहा बारह बजे आना। (हम) बारह बजे गए। बारह बजे जाकर बैठे हम, तो गुरुदेव ने कहा, (परिवर्तन का) सुना? (तो मैंने कहा-साहेब!) आप के मुख से सुनें, वो ज़्यादा अच्छा रहेगा।

(गुरुदेव बोले-) बहुत फेरफार करना है, बाद में भड़केंगे तो नहीं ना? (मैंने कहा-) ना साहेब! भड़कें ऐसा कुछ है नहीं। आप जो करो, वह हमारे लिए सत्य ही है। हमको आपके ऊपर इतना विश्वास है कि आप जो करते हो, वह कल्याण के लिए ही करते हो और हमारे भी कल्याण के लिए ही करोगे। (तो गुरुदेव कहें) लेकिन मैं तो कहीं का कहीं चला जाऊँगा। मैं तो जंगल में चला जाऊँगा, कहीं भी चला जाऊँगा।

(मैंने कहा-) अरर्र गुरुदेव! आप जंगल में चले जायेंगे? तो फिर हमारा क्या होगा? हम कहाँ रहेंगे?

(गुरुदेव कहने लगे कि) मैं तो कहीं भी चला जाऊँ, जंगल में चला जाऊँ, मेरा कोई ठिकाना नहीं।

(तो मैंने कहा-) अरर्र गुरुदेव! आप जंगल में चले जाओगे तो हम क्या करेंगे? हमारा क्या होगा? उनको बहुत प्रमोद आ गया था (क्योंकि) मैंने बहुत वेदन से कहा ना। तो इतना प्रमोद (कि गुरुदेव ने एकदम से कहा-) जहाँ हम जायेंगे, वहाँ आप आना।

(मैंने खुश होकर कहा-) तो अब भले आप जंगल में जाओ, तो हम जंगल में (रहेंगे)। मुझे ऐसा प्रमोद आ गया कि मैंने तो एकदम लंबा (शाष्टांग) नमस्कार किया। गुरुदेव! आपके चरणों के बिना तो हमारा जीवन (सूना हो जायेगा)।

हमने तो पहले से गुरुदेव तरीके आपको स्वीकारा है। आपकी वाणी, वह ही हमारा जीवन है। आपके बिना हम जी सकते नहीं। (तो गुरुदेव ने कहा कि) जहाँ हम वहाँ तुम। इतना ज़्यादा प्रमोद आया कि हाईश! अब गुरुदेव के चरणों में अपना जीवन पूरा होगा। लेकिन पूरा नहीं हुआ, गुरुदेव चले गये, हम बैठे रह गये इधर। हमें तो ऐसा लगता था कि उनके चरणों में जीवन पूरा होगा।

ऐसा उस दिन सबको कहा, मुझे कहा, वैसा ही दासभाई को कहा, वैसा ही प्रेमचंदभाई को कहा, सभी मुख्य-मुख्य लोगों से बात की।

(पहले) बहिनश्री और हम थे, तब थोड़ी बात की थी। इसके बाद दूसरी जब ज़्यादा बात करनी थी तब बेन (बहिनश्री) सूरत चले गये थे और मैं यहाँ से अमरेली (गयी थी)। बाद में बात की।

फिर उन्होंने नक्की किया कि सब मुख्य-मुख्य भक्त तैयार हैं कि नहीं, वह उनको जानना था। तो सब ही तैयार थे। कोई ना (नहीं बोला)। गुरुदेव पर पूरा विश्वास (था) कि ये कल्याण का करने वाला पुरुष है। यह पुरुष पीछे पड़े (पीछे रह जाये) ऐसा नहीं, इतना विश्वास

(था)। ये (पुरुष) कोई निम्न बात में, हल्की बात में रुके, ऐसा नहीं है। ये तो आगे बढ़े ऐसे ही हैं। तो मैंने कहा कि - गुरुदेव! आपके ऊपर तो हमें विश्वास है। आप अपने तो कल्याण में वृद्धि करोगे (ही), लेकिन हमारे भी कल्याण में वृद्धि करोगे। इसलिए गुरुदेव को बहुत खुशी हुई, एकदम खुशी हुई।

(मैं बोली कि) हमें आपका पूर्ण विश्वास है। (अगर) आप मुँहपट्टी निकालेंगे, तो कोई यहाँ चला जायेगा कोई वहाँ, लेकिन हम रहेंगे साथ। जो हो भले हो। हमको तो एकदम दृढ़ श्रद्धा है आपकी। ये तो संप्रदाय की, आज से 40-45 वर्ष पहले की बात है। हमको तो पूरा विश्वास था। बाद में इन सब दस पाँच-पँद्रह भक्तों को कहा। बहुत लोग नहीं थे लेकिन गुरुदेव को ऐसा था कि इतने हैं, तो मैं जो कहूँगा, तो ये सब सुनेंगे।

विक्रम सम्वत् 1990 (ईस्वी सन् 1934) की साल में, वहाँ उनका नक्की हो गया। विक्रम सम्वत् 1990 (ईस्वी सन् 1934) की साल (का चातुर्मास) पूरा हो गया। पूरा हो गया, इसलिए उनका नक्की हो गया कि इस वर्ष तो फेरफार (परिवर्तन) कर ही देना है।

* * *

Track Number 68

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन तथा पूज्य बेन शांताबेन, दोनों बहनों का प्रथम मिलन विक्रम सम्वत् 1986 में, इंग्लिश (साल) प्रमाण 1930 में विछिया गाँव में हुआ था। सोनगढ़ में आने के बाद, पूज्य गुरुदेव Star of India में (विराजमान) थे और दोनों बहनें दुधीबेन के मकान में थीं। तब पूज्य गुरुदेव ने (दोनों बहनों के सम्यक्) ज्ञान की परीक्षा करने के लिए हस्तलिखित पाँच प्रश्न भेजे और दोनों बहनों ने जवाब लिखकर विक्रम सम्वत् 1993, इंग्लिश साल प्रमाण 1937, मागसर मास में, लिखकर, सुबह पाँच बजे भेजे थे और दोनों बहनें, सम्यग्दर्शन (की परीक्षा) में उत्तीर्ण हो गयीं थीं।

ब्र. रमाबेन : (आपको बहिनश्री का परिचय) कब हुआ?

पूज्य बेन : बहिनश्री का परिचय तो, हमने (विक्रम सम्वत् 1986, ईस्वी सन् 1930) में पहली-पहली बार विछिया में (बहिनश्री को) देखा था। विछिया में नारणभाई का घर था ना, नारणभाई की बात की ना मैंने, संथारा किया जिन्होंने। कल सब बताया था ना। बहिनश्री विछिया में आये थे, एक वो समझुबेन थीं विछिया में, हमारी वढवाण वाली। वो समझुबेन मुझे अच्छे से पहचानती थीं। उनके साथ ही बेन (बहिनश्री) आये थे। उन्होंने (समझुबेन ने मुझे) कहा कि यह बेन (बहिनश्री) हैं ना, इनको बहुत वैराग्य है और इनको ससुराल नहीं जाना। मुझे बहुत आश्चर्य लगा कि ससुराल नहीं जाना, इतना ज़्यादा वैराग्य है। तो बोलीं, हाँ ऐसा ही है।

मेरे बापाजी थे ना, वो दलीचंदभाई (मेरे बापाजी प्रेमचंदभाई, उनके पुत्र) हैं ना, उनके घर, बापाजी के घर मैं उतरी (ठहरी) थी। वो

(प्रेमचंदभाई) मेरे बापा थे। वहाँ हम उतरे थे, तो फिर उनको (बहिनश्री को) घर पर बुलाया, तो वे आयीं। फिर पूछा, (मुझसे) प्रश्न पूछा (बहिनश्री ने) कि आप क्या पढ़ती हो? (मैं तब श्रीमद् राजचन्द्र शास्त्र, पढ़ती थी)।

ब्र. रमाबेन : आपको श्रीमद् के कौन से वाक्य प्रिय लगते हैं?

पूज्य बेन :

सुखधाम अनंत सुसंत चही, दिनरात रहूँ तद्ध्यान महीं।

प्रशांति अनंत सुधामय जे, प्रणमुं पद ते वरते जय ते।।

संग त्यागी, अंग त्यागी, वचन तरंग त्यागी,

मन त्यागी, बुद्धि त्यागी, आप शुद्ध कीनो है।

कायानी विसारी माया, स्वरूपे समाया एवा,

निर्ग्रन्थनो पंथ भव अंत नो उपाय छे।।

थोड़े दिन रहे बहिनश्री, (लेकिन) ज़्यादा बोलती नहीं थी। फिर सामने नहीं देखा, पहले-पहले देखा, विछिया में।

फिर गुरुदेव का चातुर्मास मैं तो करती थी। उनको चौमासा करने की इच्छा थी, लेकिन उनको अनुकूलता नहीं थी तो (नहीं किए)। उनको (बहिनश्री को) सम्यग्दर्शन (विक्रम सम्वत्) 1989 (ईस्वी सन् 1933) के साल में हुआ था।

(सम्यग्दर्शन प्राप्ति के समय पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन की उम्र 19 वर्ष थी।)

इसलिए (विक्रम सम्वत्) 1989 (ईस्वी सन् 1933) के साल के बाद में मैंने बात की, उसके बाद उन्होंने विचार किया कि अब मुझे

चौमासा करने जाना है। तो (विक्रम सम्वत्) 1989 (ईस्वी सन् 1933) के साल में हम राजकोट चौमासा करने गए। सही परिचय राजकोट से शुरू हुआ।

फिर बहिनश्री जब यहाँ (राजकोट) आने वाले थे तब उनको ऐसा स्वप्न आया था कि मैं शांताबेन के साथ चर्चा करती हूँ, बातचीत करती हूँ, (उनके साथ) बैठी हूँ।

उनको (बहिनश्री को) ऐसा लगा, अनजाने थे ना सब, (तो ऐसा लगा कि) मुझे किसका परिचय करना है? तो उन्होंने विचार कर लिया कि मुझे तो शांताबेन का परिचय करना है। और मुझे ऐसा विचार आया कि किसी दिन चंपाबेन आयें, तो मुझे अंदर की, आत्मा की, अध्यात्म की बात करना है, तो मैं उनके साथ बातचीत करुँगी। उनकी और मेरी पहले से ऐसी भावना थी। फिर आये यहाँ (राजकोट में), तो मुझे कह दिया था वजुभाई ने। वजुभाई और हिम्मतभाई (उनके भाई) दोनों यहाँ आये थे। उन्होंने मुझे कहा था कि बेन (बहिनश्री) के लिए कोई मकान देख लेना। मैं बेन (बहिनश्री) के लिए मकान देखती थी तो साथ-साथ मेरे लिए भी देखती थी। फिर (विक्रम सम्वत्) 1989 (ईस्वी सन् 1933) की साल से हम साथ में रहने लगे।

बहिनश्री मिले तो उन्होंने (मुझसे) सब बात की, हृदय की, ऐसा विचार किया, ऐसा विचार किया, ऐसा विचार किया - ऐसा करके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की। दूसरी कोई बात नहीं की। इतनी उन्होंने मुझसे (बात की)। वो आए थे तो मुझे बहुत हृदय में उल्लास था। मुझे ऐसा लगा कि मैं तो गुरुदेव का चौमासा करती हूँ, उपाश्रय में रहती हूँ। लेकिन (बहिनश्री को) तो सम्यग्दर्शन, गुरुदेव के कम परिचय में ही सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया, इसलिए मुझे बहुत वेदन होता था कि अब तो

अपने को सम्यग्दर्शन होना ही चाहिए। पहले ऐसा विकल्प तो आता था, लेकिन फिर वेदन, वेदन, वेदन, वेदन से यह आया। उसके बाद एक वर्ष के बाद मुझे सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ और इस तरह से, (विक्रम सम्वत्) 1989 (ईस्वी सन् 1933) की साल से (हम दोनों बहनों का) खास परिचय हुआ। और गुरुदेव ने मुझे कहा, मुझे उद्देश करके (मुझे लक्ष्य में लेकर) कहा। सम्यग्दर्शन का स्वरुप गुरुदेव कहते थे, राजकोट सद्दर में (विक्रम सम्वत्) 1990 (ईस्वी सन् 1934) की साल में। और उसके बाद हम गुरुदेव के दर्शन को गए, दर्शन करते थे, व्याख्यान बंद था (क्योंकि गुरुदेव के परिवर्तन की बात फ़ैल गयी थी)।

(पूज्य) गुरुदेव ने मुझे कहा कि चंपाबेन आये हैं, मिले आपको? तो मैंने कहा - हाँ साहेब! (तब गुरुदेवश्री ने कहा) उनको बहुत गंभीरता है और आपको उनसे परिचय करने जैसा है। हमने कहा - हाँ! आपकी आज्ञा प्रमाण। इसलिए हमने परिचय किया। मेरा स्वयं का आत्मा अंदर से बोलता था कि मुझे मेरे आत्मा की बात जो कहना है, वो मुझे चंपाबेन को कहना है। मुझे उनकी इतनी गंभीरता लगी (कि उनको ही अपने मन की बात कहूँ)।

उसके बाद (गुरुदेवश्री के कहने के बाद) मैं बहिनश्री के साथ एकांत में बैठूँ चर्चा करूँ, वार्ता करूँ, वो भी मुझसे (उनकी बातें) कहते थे। तब से हम चौमासा (साथ) करने लगे।

साथ में रहने लगे, एक मकान में, (विक्रम सम्वत्) 1989 (ईस्वी सन् 1933) की साल से। (विक्रम सम्वत्) 1989 (ईस्वी सन् 1933) से सही परिचय हुआ।

कितने चौमासे किये मैंने तो (विक्रम सम्वत्) 1986 (इंग्लिश कैलेंडर 1930) की साल से, मैंने आठ चौमासे किये। और (विक्रम सम्वत्) 1989 (ईस्वी सन् 1933) और (विक्रम सम्वत्) 1990 (ईस्वी सन् 1934) दोनों (चौमासे में) मैं और बहिनश्री (चौमासे में, साथ में) थे।

पहले-पहले गुरुदेव को खबर पड़ी कि ये (शांताबेन) बहुत जिज्ञासु हैं। गुरुदेव को ऐसा लगा कि (शांताबेन को) आत्मा की जंखना बहुत है, उनको अगर चंपाबेन का परिचय हो, तो उनकी (शांताबेन की) आत्मा को लाभ (होगा)।

ब्र. रमाबेन : बहुत अच्छा!

पूज्य बेन : ऐसे हम बहुत उत्साह में आकर चर्चा करते थे। मेरे को पहले से नींद बहुत कम आती थी। फिर (नींद) आ भी जाए तो दो-तीन घंटे ही नींद आये, ज़्यादा नहीं आती थी। ऐसा करते-करते (बाहर का रस) कमज़ोर होता गया, कमज़ोर होता गया, (इतना) कि खाना पीना ही भूल गयी।

(सम्यग्दर्शन प्राप्ति स्थान का संकेत करती हुईं बेन) चौथ की रात को दस बजे मैं यहाँ बैठी थी। बहिनश्री सोती थीं और उनकी तबियत ठीक नहीं थी, इसलिए। मैं बैठी थी, बैठे-बैठे पहले (बहिनश्री से) कुछ चर्चा की, फिर मैं ध्यान में चढ़ गयी। ध्यान में चढ़ते-चढ़ते, एकदम चढ़ गयी एकदम। श्रेणी चढ़ गयी। रात के दस बजे। (इस समय पूज्य बेन शांताबेन को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई और उनकी उम्र 24 वर्ष थी।)

फिर पूरी रात, पूरी रात, उल्लास-उल्लास-उल्लास रहा। फिर मैंने किसी को नहीं कहा। बहिनश्री को भी नहीं कहा (ये सोचकर) कि

मुझे तुरंत किसी को कहना नहीं (है)। मैंने अंदर-अंदर उल्लास, उल्लास, उल्लास बहुत किया। फिर (तीन दिन बाद) बहिनश्री ने कहा कि मुझे ख्याल आ गया था आपके चेहरे को देखकर कि बेन (शांताबेन) का कहीं कुछ अलग परिणमन हो गया है।

ब्र. रमाबेन : छुपा हुआ ही ना रहे ना। ऐसा दीपक प्रगट हो तो छुपा हुआ कैसे रहे?

पूज्य बेन : फिर मैं आनंद और उल्लास के गीत गाती थी। सुबह उठी तो गीत गाती हुई उठी। तो वहाँ सभी बहनों को लगा कि आज तो बेन बहुत आनंद में हैं, बहुत गाती हैं।

(मेरे को तो ऐसा भाव आया) कि अपन तो भगवान के दास हैं इसलिए अभी बहुत करना बाकी हैं। हम जो प्रयत्न कर रहे थे, (कि) भव का अंत हो, यह अपने को गुरुदेव के प्रताप से हो गया।

परन्तु अभी तो ठेठ (सिद्धदशा तक पहुँचना है)। अपना ध्येय तो यही, यही कि जिसके लिए निकले हैं हम, **पूर्णता के लक्ष्य से शुरुआत,** कि पूर्णता के लक्ष्य से हम शुरू करें तो अपने को पूरा करना सरल पड़ेगा। अभी तो अपना अधूरा है।

ब्र. रमाबेन : फिर गुरुदेव को कब खबर पड़ी?

पूज्य बेन : स्वयं खबर पड़ गयी गुरुदेव को तो, सुन-सुनकर। जामनगर गए ना तब खबर हुई। फिर बहिनश्री स्वयं गुरुदेव को कहने गयीं, जामनगर में। फिर गुरुदेव ने हम दोनों को बुलाया था।

ब्र. रमाबेन : (गुरुदेव ने) बहुत परीक्षा की थी ना?

पूज्य बेन : उनको ऐसा था कि सम्यग्दर्शन है, इसके लिए बहुत परीक्षा की थी। बहुत परीक्षा की, इस तरह से, उस तरह से, बहुत की।

श्रोता : क्या पूछा?

ब्र. रमाबेन : परीक्षा क्या की थी? प्रश्न क्या पूछे थे?

श्रोता : आज फिर से कहो।

पूज्य बेन : कहा ना, यह (सम्यग्दर्शन) सही है कि नहीं, वह जानने के लिए। पहले तो थोड़ी प्रश्न चर्चा हमारे साथ की, बाद में गुरुदेव को ऐसा लगा कि ऐसी प्रश्न चर्चा कब तक करें? (जब तक ऐसा भाव नहीं आया बस) तब तक परीक्षा की। फिर गुरुदेव ने हमको पाँच प्रश्न लिखे, पाँच प्रश्न लिखे और शांतिभाई के साथ भेज दिये। और उसमें गुरुदेव ने कहा कि दोनों बहनों को अलग-अलग दूर-दूर बैठकर (जवाब लिखना है)।

कोई किसी का देखना नहीं, कोई किसी को पूछना नहीं, अलग बैठकर इसका जवाब लिखो। इसलिए बहिनश्री अलग बैठे और मैं अलग बैठी और (उसमें) ऐसा लिखा था कि, इसको पढ़कर फ़ौरन जवाब लिखो। फिर देर नहीं लगाना। इसलिए प्रश्न शाम को आये, हमने रात को सब लिखे, (अगले दिन) सुबह (पाँच बजे गुरुदेव को) भेज दिये।

वे सभी अंदर के प्रश्न थे। एक तो ये था मुझे याद है, अगुरुलघु का स्वरुप क्या है? ये तो जिसको अंदर अनुभव हो, उसको खबर पड़े। दूसरा, सर्वज्ञ का स्वरुप आप किस प्रकार मानते हो? दूसरा ये था। इसका अर्थ कि बहुत लोग सर्वज्ञ देव को नहीं मानते ना, तो ये सब कहीं ये वेदांत जैसे तो नहीं मानते हैं ना (ये जानने के लिए ऐसा प्रश्न किया)। सर्वज्ञ देव को किस प्रकार मानते हो, ये था। अगुरुलघु का और एक ये था। (तीसरा) आनंद और ज्ञान (निर्विकल्पता) इन दोनों के बीच में (भेद और काल का) फेरफार (अंतर) क्या लगता है, ऐसा? ऐसे गहरे प्रश्न पूछे ना, तो ऐसे जवाब आये। ये तीन (प्रश्न) हुए, ऐसे पाँच, दोनों बहनों को (पूछे फिर गुरुदेव को समाधान हो गया)।

सोने के अक्षरों से लिखे थे, हमारे घर में। इन पाँच प्रश्नों के (उत्तर पढ़ने के) बाद गुरुदेव को समाधान हो गया, इन पाँच प्रश्नों (के उत्तर से) कि (बहनों को सम्यग्दर्शन है) बराबर है।

बाद में, गुरुदेव को समाधान हुआ तो (उसके बाद) हम अमरेली गए। मेरे पिताजी मणीभाई थे ना। उनको मैंने कहा कि बापूजी! मुझे (गुरुदेव के) इस अक्षर (पाँच प्रश्नों के पत्र) को सोने में करवाना है। फिर बापूजी ने करवा दिया, सोने का पत्ता और अंदर अक्षर गुरुदेव के ही हस्ताक्षर। ऐसा लगा कि कहीं कागज़ फट जाये, इसलिए मैंने सोने के पत्ते पर कराया (लिखवाया) था। सोना तो किस तरह से फटे? इसलिए पत्ते पर बापूजी ने तुरंत करवा दिया (लिखवाया)।

ब्र. रमाबेन : पीछे, ये सोने से नहीं लिखवाये, जवाब?

पूज्य बेन : सोने में**?** गुरुदेव के प्रश्न ही कराये **(**लिखवाये**)**। जवाब नहीं कराये। उन्होंने प्रश्न तो दो शब्दों में पूछे**,** हमको उसके जवाब तो पंद्रह लाइन में लिखने पड़े।

ब्र. रमाबेन : पास हो गए परीक्षा में**?**

पूज्य बेन : हाँ**!** पास हो गए**!**

ब्र. रमाबेन : पहले नंबर से पास हो गए**?**

पूज्य बेन : फिर प्रश्न नहीं पूछे गुरुदेव ने, पाँच प्रश्न पूछे उसके बाद, नहीं पूछे। समाधान हो गया।

फिर हम उस फोटो को ट्रंक (बैग) में हाज़िर रखते थे। गुरुदेव को खबर पड़ी। तब गुरुदेव अमरेली पधारे, बापूजी आये व्याख्यान में (सोने में) लिखाकर, तो (गुरुदेव) बहुत खुश हुए। फिर हमने ट्रंक (बैग) में रखी थी। फिर (गुरुदेव) राजकोट में सबको कहते थे कि बहनों ने

सोने में अक्षर लिखवा दिए थे, लेकिन बाहर नहीं पाड़े। रखे हैं, तो रखे हैं। फिर हमने सोचा कि गुरुदेव बहुत कहने लगे हैं इसलिए (वो सोने का पन्ना हमने हमारे कमरे में फ्रेम में) लगवाया।

राजकोट की बात को बहुत वर्ष हुए। (सोने में लिखवाने के बाद) दस-पंद्रह वर्ष हुए उसके बाद बाहर निकाला।

गुरुदेव के चरण, गुरुदेव के चरण, चाँदी में कराये। ये चाँदी के चरण वो बापूजी ने कराये। बापूजी ने कहा चाँदी के चरण कराये, देखे तुम सबने? टंकोत्कीर्ण करा दिए चरण (चाँदी में), टंकोत्कीर्ण करा दिए। बापूजी को विचार बहुत था, फिर चरण टंकोत्कीर्ण किये गए। महापुरुष का चिन्ह दिखता था। बार-बार उसको देखते थे, छोटी उम्र थी ना। ये तो अपना गुरुदेव के प्रति भक्तिभाव है। (गुरुदेव ने) ऐसा उत्तम-उत्तम कार्य किया है, इसलिए भक्ति आये बिना रहती नहीं।

* * *

Track Number 69

(गुरुदेवश्री) श्री शत्रुंजय सिद्धिधाम की यात्रा तथा श्री गिरनारगिरि सिद्धिधाम की यात्रा करके और वीतरागी प्रतिमाजी के दर्शन की भावना (लेकर) राजकोट आये। सीमंधर भगवान की महामहिम-पधरामणी! बोलिये सीमंधर भगवान की जय हो! जय हो! प्रभु जय हो!

ब्र. रमाबेन : उसके बाद यहाँ आये, उसके बाद स्वाध्याय-मंदिर की शुरुआत (किस प्रकार हुई)?

पूज्य बेन : बाद में तो ऐसा कहा ना कि इस प्रकार यहाँ रहे। गुरुदेव ने परिवर्तन किया, उसके बाद तीन वर्ष रहे यहाँ हीराभाई के बंगले में (स्टार ऑफ़ इंडिया में)। फिर स्थानकवासी के पर्युषण में, इतने बड़े हॉल में.....इतना बड़ा गुरुकुल है ना, उस गुरुकुल की जगह माँगे, व्याख्यान के लिए। समाते नहीं थे (लोग)। फिर वहाँ जायें गुरुदेव आठ दिनों के लिए (Star of India के निवास के समय, स्थानकवासी के पर्युषण के लिए)।

ऐसे एक वर्ष बीता, दो वर्ष बीते, तो गुरुदेव के भाई थे खुशालभाई, उन्होंने निवृत्ति ले ली थी, फिर वो सोनगढ़ में ही रहने लगे। तो उन्होंने रामजीभाई से बात की कि, "भाई! अब गुरुदेव को दो-तीन साल हो गए। अपने को सबको (हॉल) माँगना पड़ता है। अब अपने गुरुदेव को यहीं रहना है, तो हम अपनी घर की जगह ले लें।"

रामजीभाई ने कहा कि, "सच्ची बात है! आपकी बात सच्ची है खुशालभाई। चलो! हम ऐसा ही करते हैं।" ऐसा करके यह जगह अभी

जो मंदिर है, स्वाध्याय-मंदिर, चार आने (25 पैसा) में वार (3 फुट ज़मीन) थी। चार आने वार में, पूरा इस कोने से उस कोने तक खरीद लिया। इतनी बड़ी अभी जो है, वो सब ले लिया था कि भविष्य में नहीं मिलेगा, इसलिए अभी ले लो। पूरी जगह ले ली।

स्वाध्याय-मंदिर करने का नक्की किया। पैसा किसी के पास नहीं था। मुश्किल से तेरह हज़ार का स्वाध्याय-मंदिर हुआ, मुश्किल से। इसमें हमारे नानचन्द काका ने तीन हज़ार दिए। दूसरे किसी ने पाँच सौ (दिए), (और) किसी ने कुछ दिया। तो तीन हज़ार दिये तो उन्होंने तुरंत उद्घाटन कराया। अभी तो साधारण भाई भी दस हज़ार देता है, लेकिन उस समय पर पैसे की तंगी बहुत थी। इसलिए एक स्वाध्याय-मंदिर बड़ी मुश्किल से हुआ।

ब्र. रमाबेन : स्थापना कब की? स्थापना?

पूज्य बेन : (विक्रम सम्वत्) 1994 (ईस्वी सन् 1939) की साल में स्वाध्याय-मंदिर की स्थापना हुई, वैशाख महीने में। वैशाख वद आठम् को स्वाध्याय-मंदिर का उद्घाटन किया, समयसार की स्थापना कराई। ये बहिनश्री के हाथ से कराया, उद्घाटन और गुरुदेव वैशाख महीने में स्वाध्याय-मंदिर में पधारे।

तो फिर रामजीभाई ने कहा.... वे स्वयं प्रमुख थे। हरगोविंदभाई ने कहा कि, "ये वकील हैं ना, इनको अपने को प्रमुख रखना, तो अपना सबका काम सीधा चला जायेगा।" इसलिए उनको प्रमुखपने रखा। उसके बाद रामजीभाई ने ऐसा कहा कि, "साहेब! आपने परिवर्तन किया और सोनगढ़ रहे, अर्थात् सोनगढ़ में ही रहना और दूसरे गाँव में नहीं जाना, ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। हमने स्वाध्याय-मंदिर आपके लिए बनाया (है), तो आप ऐसा मत समझना कि मुझे यहीं रहना है।"

उनको राजकोट का बहुत (प्रेम) था, रामजीभाई को और गुरुदेव को भी राजकोट का बहुत (प्रेम था)। इसलिए निमित्त-नैमित्तिक मिल गया। "आपको हमारे राजकोट में आना ही पड़ेगा," ऐसा रामजीभाई ने बहुत ज़ोर से कहा, इसलिए गुरुदेव ने कहा, आयेंगे। ऐसा (विक्रम सम्वत्) 1994 (ईस्वी सन् 1939) में ही कहा।

फिर जाना था, तो गुरुदेव ने कहा कि तीन वर्ष हो गए परिवर्तन किये, पहली-पहली बार बाहर निकल रहे हैं, तो हम यहाँ, नज़दीक में ही पालीताना है, तो पालीताना की यात्रा करके हम बाद में राजकोट जायेंगे। तो हम शत्रुंजय (पर्वत) पर भगवान के दर्शन करके यात्रा करेंगे, फिर निकलेंगे। अर्थात् रामजीभाई ने कहा, "साहेब! बहुत अच्छी बात।"

हम सब बहनें-भाई लोग, तीन सौ लोग हो गए यात्रा में। गुरुदेव तो पैदल जाते थे। हम सब मोटर में, कोई पैदल, कोई मोटर में, पालीताना दो दिन में पहुँचे। सोनगढ़ से रवाना हुए तो दो दिन में पालीताना पहुँचे। पैदल आते थे ना (इसलिए)। फिर वहाँ रहे। वहाँ व्याख्यान वाँचने का शुरू किया। फिर वहाँ रहे तीन दिन, चार दिन रहे। (वहाँ) देरावासी के उपाश्रय के सामने ही रसोड़ा किया था ना, रामजीभाई ने। तीन सौ मेहमान थे। उसमें चूरमा और भजिया और सब बनाया। उसमें धर्म-लाभ इतना ज़्यादा मिल गया कि पूरी रसोई खलास हो गयी। पात्र लेकर के आयें, एक जाये और एक आवे, एक जाये और एक आवे, एक जाये और एक आवे। पूरी (रसोई) खलास। रामजीभाई ने बाद में कहलवाया कि अगली बार आयें तो हम यहाँ नहीं उतरेंगे, (ताकि) अपने को धर्म-लाभ बहुत मिले (इसलिए)। फिर से दूसरी बार पूरी रसोई बनानी पड़ी और वहाँ तीन दिन रहे।

फिर हमको ऐसा लगा, हम दोनों बहनों को...मैंने और बहिनश्री ने, हमने कभी भी दिगंबर की प्रतिमा देखी नहीं थी। हम तो स्थानकवासी में थे। गुरुदेव मिले इसलिए तत्व समझा, बाकी कोई खबर नहीं हमको। बहिनश्री और मैं, हम दोनों एक जैसे (थे)। आत्मा की जिज्ञासा (बहुत), आत्मा प्राप्त की गुरुदेव की वाणी से, ये सब किया, लेकिन यह कुछ खबर नहीं कि क्या स्थानकवासी। ये गुरुदेव बोलें उतनी तो खबर कि, दिगंबर (धर्म) सच्चा है। लेकिन प्रतिमा का किसी दिन दर्शन ही नहीं किया था। कभी नहीं किया था।

शत्रुंजय की यात्रा की (राजकोट जाने के पहले), तो वहाँ मंदिर में (दिगम्बर) भगवान दिखे। "ओहो! भगवान का दर्शन करने से तो अपने को कितना आनंद आता है।" हमने भगवान की मुद्रा देखी तो, मैं और बहिनश्री, दोनों जन बात करने लगे कि, "अपने को कितना आनंद आया।"

अपने को ये भगवान के दर्शन (के) अलावा सब कुछ अपने को मिला कि गुरुदेव मिले, अपने को रहने का स्थान मिला, अपने को दिगंबर धर्म मिला। वहाँ हमको दोनों को खेद हो गया, "अरे! हमने पूर्व में (सीमंधर) भगवान का विरह तो किया, (लेकिन) इस भव में अपने को (भगवान की) प्रतिमा का भी दर्शन नहीं। हम लोग ऐसे योग में जन्मे कि अपने को प्रतिमा का दर्शन तक नहीं।" ऐसा हम लोग आपस में कहते थे।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : अब अपने लिए ये कौन करके देगा? ये अपने को कौन करके देगा कि दर्शन नहीं (तो मंदिर बना दे)। अभी तो पैसे की खीचतान है, (फिर) ये किस तरह से हो? यहाँ तो स्वाध्याय-मंदिर तीन-

हज़ार में बड़ी मुश्किल से हुआ (है)। तो अपने लिए मंदिर कौन बनवायेगा? भावना भाते-भाते (आए)। (ऐसे) शत्रुंजय से भावना शुरू हो गयी (हमारी)।

यात्रा करने गए (थे शत्रुंजय), तब गांधीजी की लड़ाई चलती थी, उसमें रामजीभाई को पकड़ा (जेल में)। तब गांधी बापू की लड़ाई बहुत चलती थी ना, उसमें ये सब बहुत भाग लेते थे। उसमें रामजीभाई (जेल में) पकड़ा गए, बेचरभाई पकड़ा गए, सब पकड़ा गए। तो (उन सबको) एक महीने जेल में रखा। गुरुदेव ने कहा कि रामजीभाई जेल में हों, तो मुझे नहीं जाना राजकोट। इतने बड़े-बड़े लोग जेल में हैं, तो हम किस तरह से जायें? इसलिए गुरुदेव ने कहा अब अपनी (शत्रुंजय की) यात्रा करके, सोनगढ़ वापस चलो। जब तक (ये लोग) जेल में हैं, तब तक हमको नहीं जाना। छूट जायेंगे उसके बाद (हम) जायेंगे। इसलिए फिर यहीं वापस आ गए। नहीं तो सीधा, यात्रा करके सीधे (राजकोट) ही जाना था। फिर नहीं गए सीधे, यहाँ (सोनगढ़) वापस आ गए। फिर (बाद में, वे लोग) छूट गए।

फिर विक्रम संवत् 1995 (ईस्वी सन् 1939) में रामजीभाई ने कहा (कि) "इस वर्ष साथ चलो अब।" उनको ऐसा लगे कि महाराज साहब को सोनगढ़ पकड़ आ गया तो फिर (राजकोट) आयेंगे नहीं। "(इसलिए) इस वर्ष चलो।" तो गुरुदेव ने कहा कि, "सब इस वर्ष चलेंगे।" राजकोट गए, (तो हमने विचार किया कि) अब क्या (ऐसा करें कि) सोनगढ़ में मंदिर (तैयार) हो। हमें ही करना है। गुरुदेव अभी तो कुछ बोलते भी हैं, तब तो कुछ बोलते ही नहीं थे। एक शास्त्र वाँचन के सिवाय कुछ भी नहीं बोलते थे।

बेन (बहिन श्री) और मैंने विचार किया। उस दिन मैंने कहा था ना कि शुरुआत में पैसा था ही नहीं। एक ये तेरह हज़ार का स्वाध्याय-

मंदिर बनवाया (था)। (उसमें भी) दो-पाँच भाइयों ने मिलकर पैसा दिया। कुछ था ही नहीं कहीं, मंदिर का पैसा कहाँ से निकालें?

जड़ावबेन, उनके (नानालालभाई) घर में (जो थीं), (वे) बहुत उत्साही (थीं)। नानालालभाई, उनके घर हम उतरे थे और वो बहुत उत्साही व्यक्ति थे। (राजकोट गए तो) वहाँ नानालालभाई और जड़ावबेन ने इतने ज़्यादा भाव दिखाए, फिर हम दोनों ने विचार किया कि नानालाल कालिदास हैं, ये करोड़पति व्यक्ति हैं। और (वे) श्वेताम्बर थे लेकिन गुरुदेव के ऊपर बहुत भक्ति (थी)। इसलिए ये बहुत भक्तिवाले व्यक्ति हैं, अपने को थोड़ा दाना दबाना चाहिए, अपना भाग्य हो तो (मंदिर) हो जायेगा। उनसे सीधा तो किस तरह से कहें? फिर हम दोनों बहनों ने विचार किया कि इनको ही बराबर पकड़ना। ये अपने भाव पूरे कर देंगे। (नहीं तो) और कौन करेगा? फिर हम दोनों बहनों (ने) गीत गाया कि,

सोनगढ़मां मंदिर बंधावो रे नानालालभाई।

जिनेन्द्रना प्रतिमा पधरावो रे नानालालभाई।

भक्तोने आनंद करावो रे नानालालभाई।

ऐसा (गीत) गाया।

सोनगढ़मां मंदिर कराओ रे नानालालभाई।

सोनगढ़ हजूरा-हजूर बने।

तमे जिनेन्द्रना प्रतिमा पधराओ रे जड़ावबेन, सोनगढ़।

ऐसा हमने, दोनों बहनों ने खूब भक्ति से गाया। वे (लोग) इतने ज़्यादा सरल, बहुत सरल और बहुत भद्रिक (थे) और कूणा (सरल हृदय वाले)।

ऐसे (हमने) गाया और उन लोगों को इतना भक्तिभाव आया आनंदभाई! नानालालभाई तो कूदें कि आहाहा! हम गायें और उनके रोम-रोम खड़े हो जायें, रोम-रोम उछलने लगें। (और कहें-) "ओहोहो! ऐसा हमको कहते हैं कि भगवान का मंदिर बनवाना। अपनी यह मूढ़ी (पूंजी, रकम) किस काम की? हम सोनगढ़ में जरूर जिन-मंदिर बनवायेंगे।"

जड़ावबेन और नानालालभाई इतने (भक्ति से) उछलें और (हम लोग ऐसा) गाने लगे कि, "आप सोनगढ़ में मंदिर बनवाओ, भगवान की प्रतिष्ठा करवाओ और आनंद का महोत्सव करवाओ।" ऐसा हम लोग घूम-घूम कर गायें। तो उन्होंने नक्की किया कि अपने को मंदिर बनवाना है। जड़ावबेन भी इतनी भक्तिवाली थीं कि (कहें), "ओहोहो! बहनें अपने को ऐसा कहती हैं। बहनें अपने को ऐसा आमंत्रण देती हैं। अपने पास पैसा तो बहुत है, लेकिन अपने को ऐसा आमंत्रण किसी ने दिया नहीं (कभी)।"

एकदम (उनकी) आँखों में से आँसू निकलने लगे, नानालालभाई और जड़ावबेन के। (वे कहें), "अपना ऐसा सद्भाग्य कहाँ कि हम मंदिर करायें (बनवाएँ)?" नानालालभाई को तो एकदम उत्साह आ गया और गुरुदेव के पास गए (और कहा) कि, "साहेब! हमको तो सोनगढ़ में मंदिर बनवाना है।" हमारा (बहनों का) नाम (भी) लिया फिर।

गुरुदेव तो, अब तो बहुत ध्यान देते हैं, तब तो कोई ध्यान नहीं (देते थे)। तब ऐसा था ना कि किसी भी बाहर की बात में पड़ते नहीं थे। शुरुआत थी ना (इसलिए)। तो गुरुदेव कहने लगे, "मुझे नहीं रामजीभाई को कहो। मैं तो कोई बात में पड़ता नहीं। (या) बहनों को कहो।" तो कहा ठीक है!

तो वो (नानालालभाई) रामजीभाई को कहने गए। रामजीभाई ने कहा कि, "बहुत अच्छी बात है, नानालालभाई! एक समय की भी ढील नहीं करना।" वे (मंदिर का महत्व) सब जानते थे, शास्त्र पढ़े (हुए) थे ना। "बहुत आनंद की बात है (कि) सोनगढ़ में मंदिर हो। जल्दी करो, जैसे बने वैसे (करो)। तुम्हारी बात बिल्कुल सौ और सौ टका, बहुत ही ऊँची है। इसलिए ज़रा भी ढील नहीं करना। आप मंदिर बनाओ, तो हमको बहुत ख़ुशी होगी। हम आपकी मदद करेंगे।"

इसलिए फिर उनको ज़्यादा उल्लास चढ़ गया, नानालालभाई को। (फिर वे) हमारे पास आए, तो हमने कहा कि, "हमने तो गा ही दिया (है)। हमारी तो भावना यही है।" फिर इन लोगों ने तुरंत नक्की किया नानालालभाई ने कि, यहाँ (राजकोट) से गुरुदेव जायें, तब हम, सोनगढ़ में जगह लेकर, तुरंत मंदिर बनायेंगे।

राजकोट में गुरुदेव का चौमासा हुआ, वहाँ मोहनलाल कालिदास का मकान ऊँचा है ना, उसमें ओसरी थी, आँगन था। इतने लोग आयें, इतने लोग आयें, परिवर्तन हो गया था तब भी। चिक्कार (दहलान) भर जाये और गुरुदेव का वहाँ से उठने का मन (ही) न हो। चार महीनों का चौमासा (तो) नहीं, लेकिन (गुरुदेव) राजकोट में (जब) जायें, तो उधर बुद्धिवाला वर्ग (सुनने को आए), (तो) गुरुदेव वहाँ से निकलें ही नहीं किसी (भी) तरह से। कैसे भी न निकलें। हमको बहुत प्रयत्न करना पड़ा (लेकिन) कैसे भी वहाँ से इस तरफ आयें ही नहीं, राजकोट से, क्योंकि सोनगढ़ में तो दस-पच्चीस लोग आते हैं और यहाँ तो इतने (सारे) लोग आते हैं। वो (नानालालभाई) विनती करते रहे एक महीने (तक)। चौमासा तो पूरा हो गया और एक महीना, दो महिना, तीन महिना, (पूरे) दस महीने हो गये। कार्तिक सुद पूनम पूरी हुई, तब

भी बोले ही नहीं कि मुझे जाना है। और राजकोट वाले तो कहें कि, "आप जा रहे हो?" दस महीने (हो गए), माह (का) महीना आ गया।

फिर उस वर्ष में किसी दिन बरसात नहीं हुई थी, वहाँ। चौमासे में बरसात (नहीं हुई थी)। इसलिए पानी डहोला (पर्याप्त) नहीं था। हमको ऐसा लगा कि गुरुदेव तो कहीं खसकते नहीं। तब हमने एक भाई के द्वारा दो गिलास पानी भिजवाया गुरुदेव को कि, "देखो साहब! ऐसा पानी अपने को पीना पड़ता है। यहाँ पानी की तंगी है, तो अपने से नहीं रहा जायेगा।" तो कहने लगे कि, "बात सच्ची है।" भला बहुत! और हृदय हल्का (हुआ), तो हमने रामजीभाई को कहा कि, "हम नहीं रह सकेंगे अब। यहाँ (पर) पानी नहीं (है)।"

विहार करने का नक्की किया, फिर विहार किया। मांड-मांड (मना-मनाकर) वहाँ से निकले। फिर वापसी में गिरनारगिरी की यात्रा करने गए। गुरुदेव ने कहा गिरनार की यात्रा करने के बाद हम सोनगढ़ जायेंगे। रास्ते में गिरनार आता है। वहाँ भी तीन सौ लोग साथ में (थे), यात्रा में गिरनारगिरी में।

गिरनार की यात्रा करने गए। तो यहाँ तो शत्रुंजय (और) यहाँ (गिरनार) में तो साक्षात् नेमिनाथ भगवान (ही सामने)। इतने भाव आये सबको, इतने भाव आये। यह, भगवान की देरी सहस्त्रार वन में है ना, वहाँ बैठे और (सबने) भक्ति की। हम दोनों बहनें (तब भक्ति) कराते थे। लेकिन भक्ति करायी, तो सबको इतने भाव आये, इतने भाव आये कि गुरुदेव ने तो ऐसे जाली के सामने (नेमिनाथ भगवान को) साष्टांग नमस्कार किया। आहाहा! नेमिनाथ भगवान! गुरुदेव को बहुत भाव आये। सभी भक्तों को भी बहुत भाव आये। आहाहा! भगवान नेमिनाथ का यहीं तपकल्याणक हुआ। ऐसा करके, पूरी गिरनारगिरी में पाँचवी टोंक तक गए, वहाँ भी बहुत धुन चढ़ाई।

उसके बाद मंदिर में नीचे खूब गीत गाये हमने। हमारे गीत गाने का प्रयोजन तो ये था कि हमारे सोनगढ़ में मंदिर हो और भगवान के ऊपर भक्ति भी बहुत थी। हमारी उम्र कम और शक्ति बहुत थी शरीर में, तो गाते ही रहते थे। ये नानालालभाई साथ आये थे, वहाँ। उनके भाव दृढ़ होते गए कि अपने को मंदिर बनवाना है, मंदिर बनवाना है। (बस) एक ही बात। फिर गुरुदेव बहुत खुश हुए कि आज सबकी यात्रा सफल हो गयी। ऐसे वहाँ तीन दिन रुके और वहाँ से गिरनार की यात्रा करके (फिर) सोनगढ़ पधारे।

(सब) सोनगढ़ आये, तो नानालालभाई तुरंत आये। वे बहुत बड़े व्यक्ति थे। (कहें) कि, "मुझे तो मंदिर बनवाना है।" फिर यहाँ आने के बाद कहा कि, "मंदिर बनवाने की जगह ढूँढ लो, तुरंत।"

फिर इतनी सब जगह तो ले ली थी, पहले से ही। स्वाध्याय-मंदिर की स्थापना तो हो गयी थी। फिर मंदिर की जगह बताई। हाईश! बहुत अच्छा! अपने को संतोष हुआ कि उन्होंने स्वयं कहा तो अपने को कहना नहीं पड़ा। बार-बार कहना पड़े तो अच्छा नहीं लगता। उनको कुछ कहना नहीं पड़ा और उन्होंने जाकर माँगनी (इच्छा व्यक्त) की कि हमको मंदिर की जगह बताओ कि कहाँ (बनाना है)। चलो! शिलान्यास का नक्की करो और जहाँ जगह थी, वहाँ शिलान्यास और मुहुर्त (का नक्की) किया, तो शिलान्यास तुरंत ही हुआ। श्रावण मास सुद तेरस के दिन, इस मंदिर का (शिलान्यास किया)।

बहुत अच्छी बात! महाभाग्य की बात है। तो फिर सबकी सलाह लेते थे ना, इसलिए सब कहने लगे कि अभी तो ज़्यादा से ज़्यादा दो सौ, तीन सौ लोग आते हैं। इसलिए बहुत बड़ा मंदिर नहीं, छोटा कराओ (बनवाओ)।

शिलान्यास किया ना तो उसमें पालीताना के एक मिस्त्री को बुलाया था और उसने अंदर से धूल खोदी। धूल खोदी ना, फिर उसके बाद ये खड्डा भरा ना, जहाँ शिलान्यास किया, तो खूब ज़्यादा धूल निकली, ये शगुन के लिए। तो बहुत ज़्यादा धूल बढ़ गयी, तो वो भाई जो आया था ना कारीगर, वो कहने लगा कि, "ये बहुत शगुन है। धूल खोदी और पीछे गड्ढा भर और धूल बढ़े, ये बहुत शगुनवाला है।" तो वो मिस्त्री कहने लगा गुरुदेव के सामने कि, "साहेब! आपका ऊँचे में ऊँचा काम होगा। ये धूल इतनी ज़्यादा बढ़ी, इसकी बहुत शगुनरूप में गिनती होती है।" इसलिए गुरुदेव बहुत खुश हुए कि अच्छा! अच्छा! "आपका यह, यह बहुत शगुनवाला है" (कारीगर ने कहा)। "आपके इस धर्म का बहुत प्रचार होगा।" होना था, तो कितना प्रचार हुआ। हम सब बहुत खुश हुए कि, अच्छा कहा। इसलिए ये मिस्त्री (निमित्त हुआ)। सब अच्छा होना हो ना, उस समय अच्छा निमित्त मिल जाता है।

नानालालभाई और सब यहाँ रहे और शिलान्यास श्रावण महीने में किया। वो बेचरभाई बहुत बाहोस (बहादुर) व्यक्ति थे। नानालालभाई मानते थे दिगंबर धर्म, बेचरभाई नहीं मानते थे। (और) मोहनभाई (तो) बेचारे अपने (दोनों) भाईयों के साथ (थे)। नानालालभाई को ऐसा लगा कि यदि मेरा (भाई), बेचरभाई जिस किसी प्रकार (से भी) इसमें आ जाये, तो मेरा बहुत काम हो जायेगा। लेकिन अब इनको किस प्रकार मनायें?

बेचरभाई नानालालभाई को कहें कि तुम कानजी स्वामी को मानते हो ना, (तो) तुम्हारे लड़के-लड़कियों की शादी नहीं होगी। नानालालभाई कहें कि, "गुरुदेव की श्रद्धा पर मुझे श्रद्धा है, सब कुछ पुण्य के प्रमाण होता है। मैं किसी का कर्ता-हर्ता नहीं। इसलिए मेरे लिए तो कानजी स्वामी का ही धर्म बराबर है। वे (जो) कहें वैसा ही मुझे

करना है।" फिर वो (बेचरभाई) क्या बोलें? उनको बड़े भाई के ऊपर प्रेम था इसलिए भाई कहे, ऐसा करो, ऐसा करो (तो करे)। और फिर नानालालभाई और सब आये यहाँ और रुके, काम शुरू किया।

फिर तुरंत नानालालभाई की तबियत बहुत ज़्यादा नरम हो गयी, एकदम नरम हो गयी। इसलिए उन्हें लगा कि मेरे भगवान को मैं मंदिर में (जल्दी) पधराऊँ, क्योंकि मेरी तबियत नरम है। उनको ऐसा लगा कि ये मंदिर बनेगा तब तक मैं रहूँगा कि नहीं। गुरुदेव ने कहा कि, "अपन जल्दी प्रतिष्ठा कर लें, जिससे नानालालभाई की भावना पूरी हो जाये।" शिलान्यास किया और तुरंत मंदिर बनाना शुरू हुआ। छोटा सा मंदिर कराया (बनवाया)।

बेचरभाई यहाँ रहे और कहने लगे कि भाई की तबीयत ठीक नहीं है। तो एक महीने में सौ कारीगर रखे, सौ। सौ कारीगर रखकर एक महीने में मंदिर पूरा किया कि भाई की हैयाती में मेरे को तो मंदिर बनवाना है। भाई के ऊपर उनको बहुत मान (प्रेम था)।

फिर हमको गुरुदेव ने कहा कि, "आप (दोनों बहनें) प्रतिमाजी लेने जाओ क्योंकि नानालालभाई की तबियत नरम हो गयी है, इसलिए अपन जल्दी प्रतिष्ठा कर लें। वे (उपस्थित) हैं ना, तब तक प्रतिष्ठा हो जाये।"

हम दोनों बहनों को गुरुदेव ने भेजा कि, "आप दोनों बहनें जाओ। प्रतिमा जी लेने जाओ, जयपुर। वीतरागी मुद्रा की आप ही परीक्षा कर सकती हो। यहाँ कोई वीतरागी मुद्रा की परीक्षा नहीं कर सकता। वीतरागता कैसी होती है, यह आपको ख्याल आएगा। वीतराग मुद्रा अपने को चाहिए। अपने को नहीं चाहिए श्वेताम्बर, नहीं चाहिए दिगंबर। हमें तो वीतरागता का भाव आए, ऐसी प्रतिमाजी चाहिए कि

हमें दर्शन करते समय ऐसा लगे कि, वाह! ये वीतराग ऐसे होते हैं।" ऐसा गुरुदेव ने हमको कहा, दोनों बहनों को।

(हमारे अंदर) श्वेताम्बर का संस्कार रह गया था ना, स्थानकवासी का। वो लोग सब बहुत आँख (में जड़ाव) करते हैं ना, श्वेताम्बरवाले। हमको ज़रा संस्कार का मूल (बीज पड़ गया)। संस्कार के कारण ऐसा लगे कि आँख बगैर के भगवान हैं, दिगंबर के। इसलिए इसमें बहुत भाव नहीं आते। आँख वाले भगवान हों तो भाव आवें।

यहाँ (सोनगढ़) से जाते थे ना, तो गुरुदेव के साथ चर्चा की। हमने कहा, "साहेब! आँख नहीं होती इन लोगों में (दिगंबर में)? श्वेताम्बर का तो कुछ (जड़ी हुई आँख) अच्छी लगती नहीं। लेकिन दिगंबर में (तो) वो पुराना, आँख में धूल भरी-भरी, कहीं ऐसी चमत्कृति दिखती नहीं।" तो हमने कहा कि, "(फिर) क्या उसमें कीकी न करायें?" तो गुरुदेव को मेरी बात बैठ गयी। वो कहने लगे, "सच्ची बात, ये (कीकी) हो तो चमत्कृति हो।"

(गुरुदेव ने) फिर वो निकाला, लेख है ना नन्दीश्वर पूजा में कि, "लाल-नख और मुख-नयन," वो सब आता है ना, "लाल-नख मुख-नयन श्याम अरु।" अर्थात् गुरुदेव के लिए तो सब नया-नया (था) ना, तो उनको ऐसा कहीं ख्याल नहीं कि यह दिगंबर समाज का नहीं (है)। तो प्रतिष्ठा-पाठ में पूरा लेख था कि भगवान को आँख होती हैं। आँख में कीकी भरी होती है ना और ये सब उस लेख में से निकला, प्रतिष्ठा-पाठ में से। गुरुदेव ने निकाला था, हमको तो कोई खबर नहीं थी।

गुरुदेव को (ये) खबर नहीं (थी) कि यह तो शाश्वत प्रतिमा की (बात) है। ऐसा आया (प्रतिष्ठा-पाठ में), इसलिए गुरुदेव हमारे पक्ष में बैठ गए कि, "हाँ! सच बात है। यह सब आता है, शास्त्र में।" हमको

कहा गुरुदेव ने कि, "आप ये लेख लेकर जयपुर जाओ और बड़े-बड़े पंडित हों ना, उनको दिखाना, कि देखो! इसमें आता है।"

हमको ऐसा लगा कि, "सच्ची बात है। इसमें आता है तो शास्त्र में आता है, तो अपने को करना।"

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : हम सम्प्रदाय का कुछ पहचानते नहीं (थे)। अपने को (तो) शास्त्र का देखना है। गुरुदेव ने हमको कहा कि, "वहाँ पंडित है ना, बड़े, चैनसुखलाल, उनको दिखाना। वो जैसा कहें, वैसा करना।" फिर हमने कहा, ठीक साहेब! अपने को तो खबर ही नहीं पड़े कहीं। हम तो कहीं कुछ जानते (ही) नहीं थे। गुरुदेव (जैसा) कहें, वैसा हम (कर) लेते थे। तो वो शास्त्र लेकर हम दोनों बहनें गए, जयपुर गये।

हम दोनों बहनें गए और हमारे साथ नानालालभाई का एक बेटा आया। नानालालभाई की पत्नी जड़ावबेन आये थे और आनंदभाई हैं (ना), वो आनंदभाई भी (थे)। जयपुर गए, जयपुर।

जयपुर गए फिर हमें तो खबर थी कि धड़म-धड़ाम मंदिर तो बन रहा है और इस प्रतिमा का जो आर्डर देंगे तो (जाने) कितने महीने निकल जायेंगे। इसके लिए हम जहाँ गए वहाँ (पर) ये ओरडा (कमरा) होता है ना, ओरडा (कमरे) में, नाथा के घर, दरवाज़े के सामने ही ये तीन भगवान, जो हमने लिए हैं, दरवाज़े के सामने ही तीनों विराजते थे। ये जो हैं ना, सीमंधर, शांतिनाथ और पद्मप्रभु (भगवान), लाइन में बैठे थे तीनों, सामने बैठे हुए थे। एकदम समान।

हमने कहा कि, "ये भगवान तो बहुत सुन्दर है। हम तैयार (प्रतिमा) ही ले लेते हैं। अपने पास टाइम तो है नहीं (ताकि) नया बनाया जा सके। हमको बहुत पसंद आयी। मुद्रा बहुत अच्छी थी। हमने कहा

फ़ौरन हम (ले लेते हैं)। गुरुदेव ने कहा था कि हम आर्डर देंगे तो १२ महीने निकल जायेंगे। अपने को तो तुरंत चाहिए है।" तो हमने कहा कि, "ये एकदम बहुत अच्छी प्रतिमा है। इसलिए हम खरीद लेते हैं।"

फिर हमने देखा, भगवान को खूब निहारा।

गुरूदेव ने कहा था ना कि पंडितजी को पूछना। इसलिए हम पंडितजी के वाँचन में गए, हम दोनों बहनें। चैनसुखलाल थे। (हमने कहा कि) "हमारे सोनगढ़ में तो हम सब अनजान हैं, स्थानाकवासी के संस्कार हैं। हमारा तो भगवान का मंदिर तैयार होता है। भगवान की प्रतिष्ठा करानी है।" (तो कहने लगे) कि "खूब आनंद की बात है, कराओ।"

हमने कहा कि, "पंडितजी आपसे एक प्रश्न है हमारा। दिगम्बर समाज में आप आँख में (कीकी बिना का), ऐसे क्यों करते हो? ये हम सबको खटकता है, क्योंकि श्वेताम्बर की टेव (आदत) पड़ गयी ना। आप लोग दिगंबर में ये कीकी क्यों नहीं रखते हो? वो श्वेतांबर लोग तो गलती करते हैं, ये वीतरागभाव नहीं है। ऐसे चमत्कृति कुछ दिखाई देती नहीं, ऐसा कैसे रखते हो?"

बेचारा पंडितजी भोला, उसको क्या जाने उस समय ऐसा विकल्प आया, हमसे कहने लगे कि, "इन लोगों की गलती है।" किसकी? "दिगम्बर लोगों की गलती है। ये आँख अच्छी नहीं करते ना, यह इनकी गलती है।" उसको हमारी बात सच्ची लगी, ऐसा कि चमत्कृति होनी चाहिए। तो हमको कहा कि, "दिगंबर समाज की गलती है।" अच्छा! फिर हमने उसको प्रतिष्ठा-पाठ दिखाया कि, देखो! इसमें तो है। देखो! यह कानजी स्वामी ने बताया है। इसमें ऐसा आता है।

(पंडित बोला) "हाँ! हाँ! ठीक बात है। आप करना।" (हमने पूछा) आँख में कीकी करें ना? कि हाँ!

(हमने फिर कहा कि तो फिर) "आपकी समाज में (कीकी) क्यों नहीं डालते हैं?" तो (पंडितजी कहने लगे) कि, "समाज में कौन विचार करते हैं? आगे से जो आता है, चला आता है।" (हम बोले कि) "तो हमें तो चला आता है, ऐसे नहीं करना है। हमें तो विचार करके वीतरागभाव प्राप्त हो हमको, ऐसा करना है।" तो कहा कि, अच्छा! बहुत अच्छा हुआ! यह तो अपने को अनुकूल पड़ गया। हमें जो चाहिए था।

बेन और मैं, हम दोनों ने ऐसी ताली बजा दी देखकर के (कि) अपनी तरफ बोले (और) उनकी तरफ नहीं बोले। "तो जब गल्ती है तो हम आँख करें तो इसमें कोई परेशानी नहीं है ना?" (पंडित कहे) कि "नहीं कोई परेशानी नहीं है। शास्त्र में आता है, पीछे क्या?" (हम खुश हुये कि) "ठीक! चलो! अपने को इन पंडितजी का आधार तो मिल गया।" उन्होंने ऐसा ही कहा।

फिर हमने पुछवाया तार से। हमने सोनगढ़ तार भेजा पहले कि, "भाई! आँख (में कीकी) करना है कि नहीं? यह बड़ा प्रश्न था ना। रामजीभाई को तार किया कि गुरुदेव और आप क्या कहते हैं, उस प्रमाण से करें।

उन्होंने कहा कि, "यह आपके ऊपर है।" हमको जवाब ही नहीं दिया। तो वहाँ से किसी ने माथे पर नहीं लिया, जवाब में ये मिला कि तुमको जैसा ठीक लगे, वैसा करो। ठीक है! हमारे ऊपर आया तो हमको ठीक लगता है। यह तो बड़ा प्रश्न समाज का है, तो कहा कि भगवान! भगवान! अभी हम कीकी करा लें, फिर देखेंगे (कि क्या करना है)। समाज की बात है ना। इसलिए जो होगा देखेंगे, अपन तो कराओ।

फिर उसके बाद हमने उस रंगवाले को कहा कि यह श्वेताम्बर (जैसी) आँख चढ़ाते हैं (मूर्ति की), वैसी नहीं। मात्र आँख की कीकी में रंग लगाना। ऐसी सज्जीवित मूर्ति, ऐसी अच्छी लगे, इतने अच्छे भगवान (लगें) कि बहुत भाव आये सबको। उसके कारण ऐसी प्रतिमा जी लगे कि जाने (कोई) साक्षात् चैतन्यमूर्ति हो। मानो कि बोलती चैतन्य मूर्ति हो, ऐसी अच्छी मुद्रा लगे। हम उसमें स्थानकवासी में थे ना, उससे (से) इसमें आना (था) ना, इसलिए श्वेतांबर में (कीकी) होती थी, तो ऐसा लगे कि ये कीकी की आदत पड़ गई (है)। हमें तो अभी बस यह चैतन्यमूर्ति दिखे, ऐसे भावों से करवाया है। इसलिए हमने तो कहा कि यह तो बहुत अच्छा लग रहा है। फिर तीनों-चारों प्रतिमाओं का (ऐसा) कराया, ऐसा (ही) करा लिया।

फिर पंडितजी को बुलाया, चैनसुखलालजी, कि, "देखो! हमने ऐसा कराया है, कितनी अच्छी लगती है प्रतिमा जी। ये कोई शास्त्र विरुद्ध तो नहीं है ना? हमको कोई उलाहना तो नहीं देगा (ना)?" तो (बोले), "नहीं नहीं! शास्त्र में आया है पीछे क्या?" उनकी भी ऐसी ही बुद्धि चली, बिचारे की। (कहें) कि "नहीं नहीं! कोई गलती नहीं है। कोई गलती नहीं। बराबर है! बहुत अच्छा है!"

(तब हमने सोचा) अच्छा चलो! हम पास तो हो गए। (पंडित) चैनसुखलालजी, पूरे जयपुर में उस समय वे ही बड़े पंडित गिनाए जाते थे। इसलिए गुरुदेव ने हमको बड़े-बड़े (पंडित का) कहा था, इसलिए हम उनके पास गए।

पंडितजी ने हाँ पाड़ी तो अपने को क्या परेशानी? फिर जहाँ से हमने प्रतिमा कराई ना, प्रतिमा जी उसने 5-7 दिन रोककर रखी। ठंडी-ठंडी-ठंडी जयपुर में बहुत पड़ती है। पौष महीने में हम गए थे। वहाँ से

कहा कि अब हम सोनगढ़ ले जायेंगे, खबर दी कि प्रतिमा जी की खरीदी हो गयी है। हम लेकर के आ रहे हैं।

तब हरगोविंदभाई वहाँ आये थे, सोनगढ़ से। (उनको ऐसा लगा) कि मेरे गाँव में मंदिर होता है, बहुत उत्साह वाले थे ना, तो वे भी जयपुर आये। फिर वहाँ से प्रतिमा जी को रवाना करने के लिए सब खोखा और उस सबमें पैक किया। हमने कहा कि ये ले किस तरह से जायें? क्योंकि 70 मण का वज़न था सीमंधर भगवान का। इतना ज़्यादा वजन, तो ये साथ में नहीं आयेंगे। इसलिए वो जयपुरवाला कहने लगा कि ये रेल में नहीं जायेगी, ये प्रतिमा। वो कहने लगा कि गुड्स में (ले जाओ)। (हमने कहा) "गुड्स में भगवान को (हम नहीं भेजेंगे), हम तो अपने साथ में यह भगवान को रखेंगे। हमको भरोसा नहीं आता किसी का गुड्स-वुड्स का।" तो वो कहे कि, "उसकी हाँ मिले, परवानगी (अनुमति), तब जाओगे ना।" (हम बोले) "परवानगी (अनुमति) नहीं मिले, तो हम बैठे हैं यहीं। जिस दिन परवानगी (अनुमति) मिलेगी उस दिन जायेंगे, जयपुर से। नहीं तो बैठे है यहाँ।" ऐसा कहकर बैठे हम तो।

हमको तो भगवान मिले ही नहीं अब तक। हम भगवान को छोड़कर कैसे जायें? अगर (भगवान) साथ में न आयें तो हमको नहीं जाना। भगवान को लेकर ही जायेंगे। हमारे भगवान को अकेले छोड़कर नहीं जायेंगे। हरगोविंदभाई, वो अजमेर गए और अजमेर जाकर के सारी परवानगी (अनुमति) मिलने की बहुत मेहनत करी। अजमेर गए, जयपुर गए, (फिर) ये स्टेशन गये, वो स्टेशन गये, बहुत मेहनत की कि हम इसमें बैठें और भगवान को भी हम साथ में ही रखें। (फिर) मिल गई मंजूरी कि ये भगवान को साथ में ले जाओ आप। बहुत खुश हुए भगवान साथ आयेंगे, तो साथ में ही ले जायेंगे।

उसके बाद हम तैयार होकर भगवान की पेटी सब लेकर....हमारे साथ में एक दूसरे भाई थे, चुन्नीभाई। इन सबने, भगवान की पेटी थी ना, (वो) जहाँ चढ़ानी थी वहाँ चढ़ाई और हमें भी बैठाया गाड़ी में और रवाना किया। आये अजमेर। तो अजमेर में तो किसी ने रोका नहीं। महेसाणा आया। तो महेसाणा आया फिर गाड़ी बदले ना, तो वहाँ पेटी उतार दी। (कहने लगे) कि यह पेटी उस गाड़ी में नहीं चढ़ेगी, भावनगर की गाड़ी में। अरे भगवान! कि नहीं इतना वजनदार ये नहीं ले जा सकते (हैं)। तो हमने कहा कि, "पेटी उतर जायेगी तो हम भी उतर जायेंगे। हम हमारे भगवान को छोड़कर नहीं जायेंगे। हमारे भगवान को ऐसे गुड्स में (रखकर), इस प्रकार तो हमें भरोसा नहीं आता है।" वो सब मजदूर कहें कि, "अरे भाई! यहाँ से तो ऐसी कितनी सारी पेटी जाती हैं। ये तुम्हारे भगवान कैसे (अलग हैं)?"

तो (हमने कहा) "हमारे भगवान अपूर्व हैं। हमको तो भगवान मिले ही नहीं, ये पहली-पहली बार भगवान मिले हैं। इसलिए हम तो हमारे भगवान को साथ में ही लेकर जायेंगे। हम भगवान को छोड़कर नहीं जायेंगे।" तो वो सब खुश हो गये कि इन लोगों को वास्तविक भगवान के ऊपर प्रेम है। (हमने कहा कि) "हम तो भगवान को साथ में ही ले जायेंगे, छोड़कर नहीं जायेंगे। हमको किसी का विश्वास नहीं आता।" अगर रजा (अनुमति) नहीं मिले तो? "तो हम भी यहीं रुकेंगे। भगवान रुकेंगे तो हम भी रुकेंगे।"

तो वो पेटी फिराये ना, ऐसे-ऐसे, झट-झट, पेटी खिसकाए, कोई ऐसे करे। हमने कहा कि, "तू पेटी को ऐसे कैसे धक्का मारता है? इसमें हमारे भगवान है। धीरे-धीरे चलाओ।"

हमने कहा कि, "दूसरे के होंगे, हमको तो भगवान बहुत कीमती हैं। हमको बहुत मुश्किल से भगवान मिले हैं। इसलिए तू इसको ऐसे धक्का मत मार।" (वो कहे) "बेन! ऐसी तो कितनी पेटियाँ भगवान की यहाँ आ गईं। आपके जैसी भगवान की रक्षा किसी ने नहीं की।" मैंने कहा, "भाई! हमको बहुत दुर्लभ भगवान मिले हैं। दूसरों को (भले) सुलभ मिले होंगे। हमको तो महामूल्यवान भगवान मिले हैं।" इसलिए हमने उसको कहा कि, "तू धीरे-धीरे चला। धक्का मार के मत चला। धीरे-धीरे गाड़ी चला।" तो वो सब हँसें।

बाद में वहाँ भी बहुत मेहनत की इन लोगों ने, हरगोविंदभाई ने। तब हम सुबह से शाम तक मेहसाणा में रुके। हरगोविंदभाई ने तो कहा कि यह मंजूरी मिले तो अपने को जाना। एक दिन, दो दिन हम मेहसाणा स्टेशन पर रहेंगे। वहाँ से मंजूरी मिल गई थी। शाम की गाड़ी से निकलेंगे। भले! शाम की गाड़ी से निकलें। फिर शाम की गाड़ी से निकले। बहिनश्री ने भी कहा कि अपने को भगवान लिए बिना नहीं जाना।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : महेसाणा से रात को रवाना हुए और सुबह सोनगढ़ आ जाना था। फिर महेसाणा से रवाना हुए इसलिए तार कर दिया कि हम सुबह में भगवान को लेकर के वहाँ उतरेंगे। अच्छा हुआ!

गुरुदेव उनके कमरे में बैठकर, वो ओरडी (कमरा) है ना, उन दिनों ये सब मकान आड़े नहीं (आते) थे। तो गाड़ी (रेलगाड़ी) सीधी आये, तो उनको (गुरुदेव को) दिखे। तो उनको मिक्स (ट्रेन) दिखाई दी, चली आती हुई। तो गुरुदेव ने कहा, "इस गाड़ी में भगवान आते हैं ना, बहनें इस गाड़ी में आ रही हैं ना?" (तो कहा) कि, "हाँ! इस गाड़ी में।" तो कहने लगे कि, **"मुझे तीन लाइट इतनी ज़बरदस्त दिखीं ऐसी जग-जग-जग-जग-जग। मैंने तीन-तीन लाइट ऐसी देखीं, ऐसी**

देखीं, कि झगमगती-झगमगती तीन लाइट ऐसी देखीं, ऐसे तेज करती थीं। इतनी तेज मुझे दिखीं कि मैंने नक्की किया ये तीन भगवान बहुत अच्छे हैं।"

गुरुदेव कहें कि, **"तीन लाइट के ऊपर मेरी नज़र गयी इसलिए मैंने नक्की किया कि तीनों भगवान बहुत अच्छे हैं।**"ऐसा गुरुदेव सभी के सामने कहते थे कि, **"आज तो तीनों भगवान बहुत अच्छे आनेवाले हैं।"**

फिर यहाँ आये। फिर हमें ऐसा लगा कि मुहूर्त देखकर के यहाँ पधरायें कि गाँव-प्रवेश भगवान को कब करवाना है। तो वो मुहूर्तवाले ने कहा कि महासुद बीज के दिन करवाना और हम यहाँ आये अमावस को। तो अमावस के दिन नहीं करना था। महासुद बीज के दिन गाँव-प्रवेश कराना था। फिर हमने कहा कि, "भाई! इस स्टेशन में भगवान को रखने की व्यवस्था करो। किसी का ओरडी (कमरा) ले लो और उसमें रखी पेटी।" एक आदमी को रक्षा के लिए रखा और फिर हम लोग गाँव में गए घर।

महासुद बीज के दिन पूरा मण्डल धाम-धूम, धाम-धूम, बाजे बजाते-बजाते, हम सब साथ (स्टेशन) गए। भगवान का स्वागत करने के लिए गए, बीज के दिन। फिर गुरुदेव भी साथ में आये थे।

श्रोता : स्टेशन आये थे?

पूज्य बेन : हाँ! लेकिन पेटी वगैरह खोली नहीं थी और सभी रामजीभाई और सब ढोल-नगाड़े, ध्वजा-बावटे, ऐसा लेकर स्टेशन साथ में आये कि भगवान पधारे, भगवान पधारे! पहले-पहले भगवान थे ना। पहले भगवान ना, ऐसा रंग, ऐसा रंग, सबको।

हम स्थानकवासी में थे तो किसी भी दिन ढोल-ताशे देखे नहीं था। अपाश्रय में एक भीतडुं (दीवाल) होता था (और) दूसरा कुछ नहीं होता था। सब बाजा और ध्वजा देखकर के हम इतने खुश हो गए कि आहाहा! कैसा भगवान का महोत्सव होता है! कितना अच्छा! ऐसा हर्ष आये! ऐसा हर्ष आये! फिर सब साथ में आये। रामजीभाई स्वयं आए और सब भाई लोग (आये थे)। बहुत ज़्यादा नहीं थे, १५-२० भाई और १५-२० बहनें।

बेचरभाई हैं ना, उनको तब ये बैठता नहीं था, अपना दिगम्बर धर्म। लेकिन वो नानालालभाई को अच्छा लगने (भलू मनावन) के लिए करते थे सब। परंतु जहाँ भगवान आये तो स्वागत किया ना, तब उनको बिचारे को उछाल आया एकदम। उनको श्रद्धा बैठ गयी कि ये भगवान बहुत अच्छे हैं। अहाहा! ऐसे भगवान! देखे नहीं थे (तब तक) भगवान। पेटी तो बंद थी। तो वे (बेचरभाई) तो गाड़ी के सारथी हो गए। सारथी होकर बैठ गए गाड़ी के ऊपर कि मैं गाड़ी चलाऊँगा। गाड़ी अर्थात् बैलगाड़ी। इसमें बेचरभाई मुँडाई (पलट) गए। उनको उत्साह आ गया एकदम।

नानालालभाई की तबीयत नरम है इसलिए मेरी जिम्मेदारी है (कि) मैं मंदिर का काम करूँ और उन्होंने 100 आदमी रखकर (एक महीने में मंदिर तैयार करा दिया)। भाई की तबीयत नरम है, इसलिए भाई की हाज़िरी में मुझे प्रतिष्ठा करनी है। भाई पर (उनको) बहुत प्रेम। रामजीभाई, नानालालभाई, बेचरभाई, मगनभाई प्रेमचंदभाई, सभी आगे-आगे आये। बहनें भी गाते-गाते ध्वजा-बावटा लेकर आयीं।

स्वाध्याय भवन में जहाँ पेटी रखी, (सब बोले) जल्दी खोलो, जल्दी खोलो, पेटी खोलो, पेटी खोलो। कितने भाई तो बहुत भावुक थे

कि जल्दी भगवान दिखाओ, जल्दी भगवान दिखाओ। तो हमने कहा कि, पूरी पेटी खोलने में तो देर लगेगी। हमने कहा कि पहले नीचे का नहीं खोलो, पहले ऊपर का खोलो। तो ऊपर का खोला तो धीरे-धीरे-धीरे करते-करते, ऐसे पहले सीमंधर भगवान की मूर्ति खुल गयी। तो जैसे ही पाटिया खुला और मुद्रा दिखने पर सब लोग एक साथ (बोले) - आहाहा! वहाँ तो सब नाचते-नाचते ताली बजाने (लगे और) कूदे। अहाहा! ऐसे अच्छे भगवान अपने यहाँ आए! ऐसे अच्छे भगवान! इतने खुश हुए छोटालाल रायचंद (भाई) कि पृथ्वी के ऊपर से चार फुट ऊँचे कूदने लगे। अहाहा! ऐसे भगवान! ऐसे भगवान अपने को मिले! ऐसे भगवान तो कभी किसी ने देखे ही नहीं। कीकी लगी थी, ऐसे भगवान कहाँ से देखें? श्वेताम्बर नहीं, दिगंबर नहीं, ये तो तीसरे ही भगवान निकले कि आहाहा! ये भगवान बहुत अच्छे हैं।

गुरुदेव तो एकदम स्थिर हो गए। **"ओहोहो! यह तो चैतन्यमूर्ति भगवान। आहाहा! नाथ! आपका हमें विरह था। ये प्रतिमा देखकर के आपका विरह हमको शांत हुआ।"** गुरुदेव तो एकदम, ऐसे आँखे बंद करके गुरुदेव (खड़े रहे) कि अपने को भगवान मिले, उसका आनंद मनाने लगे। **"आहाहा! अपने को भगवान मिले आज। ऐसे भगवान! यह तो वीतरागी मुद्रा है, ये ही भगवान हैं अपने। आपका हमको विरह था। पूर्व में हम क्या दोष करके आये कि साक्षात् भगवान का विरह हुआ।"** आँख में से श्रद्धा के आँसू। बहुत अच्छी मुद्रा!

गुरुदेव कहें कि, "जाने मुझे तो ऐसा लगता है कि साक्षात् भगवान पधारे। हम इन भगवान में भगवान का विरह भूल जायेंगे।" दूसरे भाई लोग तो कितने कूदने लगे, कोई नाचने लगे, कोई कुछ करने लगे। इतने अच्छे भगवान और वो आँख में (कीकी) की ना, तो बहुत

चैतन्यमूर्ति दिखाई देने लगी, आँखों से। काली कीकी ऐसी डली थी, अभी रह गई। ऐसी डली थी, लेकिन उसके अंदर ज़रा काली कीकी की। इतनी अच्छी लगे, चैतन्यमूर्ति, साक्षात् जैसे देखते हों, ऐसे। सब बहुत खुश हो गये कि यह आपने ठीक किया, यह आपने ठीक किया।

चंदूभाई जहाँ अभी रहते हैं ना कमरे में, वहाँ तीनों भगवान विराजमान (किये)। ऊपर के नेमिनाथ भगवान (भी), चारों भगवान विराजमान किए। फिर बहुत भक्ति-भाव से उनको विराजमान किया। फिर तो गुरुदेव को इतना हर्ष हुआ कि यह प्रतिमा इतनी अच्छी (हैं)। हमसे कहा कि, "आपने पंडित को पूछा था?" (हमने कहा) हाँ! साहेब! पंडितजी ने जो कहा वह सब हमने गुरुदेव को कह दिया। उन्होंने ऐसा कहा कि हमारे समाज की गलती है, ऐसा कहा था। यह शब्द गुरुदेव ने पकड़ लिया।

(विक्रम सम्वत्) 1995 (ईस्वी सन् 1939) में तो राजकोट में थे। राजकोट से विहार करके यहाँ (विक्रम सम्वत्) 1996 (ईस्वी सन् 1940) की साल में गिरनार गए। (विक्रम सम्वत्) 1996 (ईस्वी सन् 1940) की साल में श्रावण सुद तेरस (गुजराती) को, मंदिर का शिलान्यास किया नानालालभाई ने और (विक्रम सम्वत्) 1997 (ईस्वी सन् 1941) की साल में प्रतिष्ठा हुई।

* * *

Track Number 70

श्री कहान गुरु इतिहास - श्री सीमंधर भगवान का स्वागत-गीत पूज्य बहिनश्री चंपाबेन और बेनश्री शांताबेन द्वारा, एक-एक लाइन में दोनों बहनें भक्ति करती हैं।

ब्र. रमाबेन : फिर गाँव में रबारी को भगवान देखने को बुलाते थे ना?

पूज्य बेन : गुरुदेव हैं ना....ये (रमाबेन) एक-एक (घटना) याद करती है। स्वाध्याय मंदिर में चंदूभाई सोते हैं, उस कमरे में भगवान को एक महीने रखा (क्योंकि) प्रतिष्ठा में देर थी, इसलिए। तो गुरुदेव को ऐसे भाव आयें भगवान के ऊपर, ऐसे भाव आयें कि गुरुदेव रोज़ दोपहर भोजन करके जायें, प्रतिष्ठा के पहले की बात है, भोजन करके बैठ जायें भगवान के सामने। आहाहा! नाथ! आपकी मुद्रा तो अलौकिक है। फिर जब भी भोजन करके फुर्सत मिले, तब गाँव में आए वो एक भरवाड़ (भेड़-बकरी को चराने वाला), वो नत्थू आया, किसी काम से आया। (तो गुरुदेव कहें) "ऐ नत्थू! ऐ नत्थू! तूने देखा, भगवान को देखा?" तो (नत्थू) कहे, "ना माई-बाप! नहीं देखा।" "चल-चल दिखाते हैं। चल-चल दिखाते हैं।" कोई भी आवे, "हाँ! हाँ! हमारे भगवान आए, तुम्हें खबर नहीं? चलो! चलो!" उसका हाथ पकड़कर उसे कमरे में ले जायें। देखो ऐसे भगवान आए हैं। कोई भी व्यक्ति आये, तो (गुरुदेव कहें) "चलो भगवान दिखाते हैं तुमको। आपने देखे क्या ऐसे भगवान?" तो वो कहे, "ना माँ-बाप! अभी तक देखा नहीं।" तो सब ऐसा कहें कि, "अरे नाथ! ऐसे भगवान तो कहीं किसी गाँव में मिलें ही नहीं। आपके प्रताप से ऐसे

भगवान भी हमको मिले।" और गुरुदेव को (तो) बहुत खुशी हो और सबको लेकर (जायें), इतना स्वयं को प्रमोद (हो)। स्वयं के प्रमोद का दूसरे के ऊपर आरोप करें। इतने छोटे लड़के आयें, उनको भी ले जायें। फिर गुरुदेव दोपहर में रात को, शाम को, फुर्सत हों तो भगवान के सामने जाकर बैठ जायें। फिर वहाँ बैठे-बैठे गायें।

विमल सीमंधर जिन दिठा लोचन आज,

अमी भरी मूर्ति रची रे उपमा घटे नहीं कोई,

विमल सीमंधर जिन दिठा लोचन ||

ऐसे गायें गुरुदेव। इस तरह एक महीने तक गुरुदेव ने बहुत प्रमोद किया। बहुत भाव भगवान के प्रति आयें तो गुरुदेव तो बहुत-बहुत खुश हुए, बहुत खुश हुए। माह सुद बीज से फाल्गुन सुद बीज (तक भगवान को रखा)। फाल्गुन सुद बीज को प्रतिष्ठा हुई।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : प्रतिष्ठा हुई तो भगवान को कमरे में से मंडप में लेकर जाते थे, तो ऐसे सब लप-झप हो। तो मैं और बेन (बहिनश्री) हम साथ में फिरें और गुरुदेव भी साथ में आयें कि भगवान को लेकर जाते हो तो संभालकर लेकर जाना, आराम से लेकर जाना। आराम से लेकर जाना।

तो हम (भगवान के) साथ में ही फिरें। ऐसा चाकड़ा (हाथ से चौकड़ी) किया हो ना, एक तरफ पकड़ लें ताकि कहीं, कोई ज़रा ऐसी (खलल न हो)। तो गुरुदेव साथ-साथ में चलें कि भगवान को ध्यान से ले जाना, अच्छे से ले जाना, ऐसे सब भाव से (करें)।

वो प्रतिष्ठा-पाठ वाला किसको बुलाना, प्रतिष्ठा करवाने के लिए, ये किसी को खबर नहीं पड़े कि प्रतिष्ठा किससे करवाना। प्रतिष्ठाचार्य का हमने नक्की किया, उनको रामचंद जी (को), जसकीर्ति (गाँव) का है। हम भगवान लेने गए थे (जयपुर) तो वहाँ एक रामचंद्र जी पंडित थे। वो भी वहाँ भगवान लेने आये थे। तो हमको उस प्रतिमा जी वाले ने कहा कि ये पंडित हैं। ये थे तो काष्टापंथी, काष्टापंथी। लेकिन आनंदभाई इतना अच्छा देखाव करें, (तो) हमने (उस पंडित को) नक्की किया। (नहीं तो) यहाँ सोनगढ़ में कौन करेगा? किसी को खबर नहीं थी कि कौन प्रतिष्ठा करावे।

तो हमने कहा, "पंडित जी कि आप प्रतिष्ठा कराते हो?" तो कहे, हाँ! "तो हमारे सोनगढ़ में आओगे (क्या) आप?" (तो कहें) "क्यों नहीं आऊँगा?" "अच्छा! तो आओ, फाल्गुन महीने में बीज के दिन।" हमने (तब) उनका पता (एड्रेस) ले लिया। "और हम आपको पत्रिका भेजेंगे तो आप आयेंगे?" तो (कहें कि) ज़रूर आयेंगे। "तो फिर आपके सिवाय दूसरा पंडित नक्की नहीं करें?" (तो कहें) "नहीं करना, मैं ही आऊँगा।" बहुत अच्छा! वो बेचारे बहुत उल्लासी थे। श्रीचंदजी, इतने उल्लासी कि पहले-पहले सभी स्थानकवासी को परिवर्तित करने में वे ही पंडितजी काम आवें, ऐसे थे। इतने उल्लासी और वो समझ गए कि ये सभी मूर्ख जैसे हैं, कोई कुछ समझते नहीं हैं। इसके बाद वो तो बेचारे आए। हमने लिखा कि इस टाइम में प्रतिष्ठा करवाना है।

एक महिने पहले आ गये, एक महिना पहले। सीधा एक महिने पहले आया कि मुझे दर्जी चाहिए, मुझे सुथार (मिस्त्री) चाहिए, मुझे लुहार चाहिए, मुझे कड़िया (सीमेन्ट का काम करनेवाला) चाहिए। ठीक

भाई! जो चाहिए वह देंगे, क्योंकि पहला-पहला था ना इसलिए समझ में कुछ आता नहीं था।

नानालालभाई की तबीयत अच्छी हुई (तो) प्रतिष्ठा उन लोगों ने ही की। उसका खर्च पूरा नानालालभाई ने, उन तीनों भाइयों ने किया, दूसरा कोई नहीं (था)। सभी दिनों का (खर्चा उन्होंने किया)। सब उनका था, इंद्र-इंद्राणी, माता-पिता और कुटुंब (सब)। वे सम्पत्तिवाले थे (इसलिए) सब उन्होंने किया। उन्होंने प्रतिष्ठा बहुत आनंद से कराई।

फिर बेचरभाई से कहा कि यह भाई, यह पंडित जो माँगता है, सब दो इनको। हमारे घर में, नागरभाई का मकान है ना, नया, उसमें रहता था। तो वहाँ बेचरभाई को बुलाया, पंडित को बुलाया। पंडित ने लिखवाया कि इतनी-इतनी चीज़ें आप मुझे दो। तो बेचरभाई ने कहा कि, "इसका क्या करेगा?" (तो कहे) कि, "मैं ले जाऊँगा।" "अररर! तेरे कितने बच्चे हैं? (जिनके लिए) इतना सारा तूने लिखवा दिया है।" (तो कहने लगा कि) "मैं तो बाल ब्रह्मचारी हूँ। मेरा तो कोई लड़का नहीं है।" तो (फिर)? "ये तो हमारी रीति है तो मैं ले जाऊँगा।" ठीक है! बेचरभाई ने कहा कि कौन माथाकूट करे, जो कहता है अपने को लिख लेना। सब लिखवाता गया। फिर एक महिना पहले आ गया (था ना और) यहाँ कोई कुछ जाने ही नहीं। बेचारा अकेला ही (सब काम) किया करे।

प्रतिष्ठा शुरू की, आठ दिवस में। उदक चन्दन बोलें तो उसमें भी कुछ समझ ही नहीं। ये उदक चन्दन कभी बोला ही नहीं, कभी सुना नहीं। वो बोले ना उनकी मारवाड़ी भाषा में कि 'उदक चन्दन तंदुल पुष्प कै....' ऐसे, इस तरह से। तो अपने वाले चाणा (नकल) पाड़े उसका, तो इसमें कितनी असातना हुयी। फिर, यह ठीक नहीं, हमने कहा। यह बेचारा पूजा कराता है, तो अपने को पूजा भाव से करना। फिर बेचारा

हमको कहे कि, इसमें पाँच कल्याणक की विधि, पूजा, मण्डल-विधान करवाना चाहिए। तो सब इकट्ठे हुए, कहीं कोई समझे ही नहीं। क्या मण्डल विधान? कुछ खबर ही ना पड़े। उस समय पाटनी जी नहीं थे यहाँ। फिर हमने आनंदभाई को कहा। बिचारे भक्ति वाले आनंदभाई, तो आनंदभाई को उनको सौंप दिया हमने। इन भाई को तुम्हें जितनी भी पूजा करानी हो, इनके साथ करो। तो कहा कि, "आनंदभाई को आप कराओ।" (बस) एक आनंदभाई खड़े रहें, पूरे दिन खड़े रहें। केसरी खेस पहनकर, उनके सामने बेचारा पूजा करावे। दूसरा कोई करे ही नहीं।

पूरी पूजा आनंदभाई (ने की), उनके (साथ) विधान कराया। कल्लोल वाले सभी भाई आये हुए थे, कल्लोल वाले, सोमचन्द, अमथालाल। कल्लोल की भजन-मंडली आयी थी। ये सोमचन्दभाई को खबर पड़ी कि सोनगढ़ में पंचकल्याणक है और ये सब अनजान हैं। तो वो भजन-मंडली लेकर के आये। पूजा हो तब बाजा बजायें, ऐसा करें, ऐसा करें, सब करें।

भगवान को ना, अभी (तो) हम एक वेदी बनाते हैं। अभी तो हमने एक वेदी की थी ना, ऐसी नहीं की थी (तब)। उन्होंने 5-6 छोटी-छोटी वेदियाँ अलग-अलग बनाईं। गर्भ कल्याणक की वेदी अलग, जन्म की अलग वेदी, विधान-पूजा की अलग वेदी, सब अलग-अलग वेदियाँ थीं। एक (भगवान के) माता-पिता (को) बैठने की वेदी, एक इंद्र-इंद्राणी की वेदी, एक मण्डल-विधान की वेदी, एक (के ऊपर) भगवान विराजमान हों, ऐसी 5-7 वेदियाँ (ये मंदिर के) चौक में बनायीं। तो भगवान को एक वेदी से दूसरी वेदी के ऊपर बदलावें ना, तब गुरुदेव से सहन न हो कि तू ध्यान रखना। (और गुरुदेव) स्वयं साथ-साथ में

घूमें। भगवान के साथ-साथ में सभी फिरें। जैसा हमको (था) वैसा ही गुरुदेव को (था) कि भगवान को फिराता है, तो तू ध्यान रखना भगवान का। ऐसा बार-बार फेरफार मत कर।

भगवान को वेदी के ऊपर विराजमान करने वाला जो व्यक्ति था ना, वो उल्लासी बहुत था। अपना सद्भाग्य कि इतना उल्लासवाला व्यक्ति मिल गया अपने को, पंचकल्याणक में। पहला-पहला (पंचकल्याणक था), हम तो कुछ भी समझते नहीं थे। स्थानकवासी के संस्कार (थे), किसी दिन पंचकल्याणक देखा ही नहीं था। प्रतिमा तो श्वेताम्बर में थी, इसलिए (हमको प्रतिमा की) खबर (तो) थी। बाकी दिगंबर का तो कभी देखा ही नहीं था। इसलिए जो (कुछ) करता हो, वो (पंडित) करे। अलग-अलग वेदियों में पूरा काम कराता था।

इसके बाद उसने इतनी अच्छी प्रतिष्ठा करायी। उसको खबर पड़ी ना कि यहाँ सब अनजान हैं, तो रात को जब सब सो जायें, तो पूरा देखाव करना हो, वो कर दे। फिर अपने को सुबह बुलाये कि सुबह आना। हम जायें तो पूरा नया ही दिखे सब। सब लोग देखकर खुश-खुश और खुश हो जायें कि, "ओहोहो! कभी देखा ही नहीं (था)। ऐसा तो किसी दिन देखा ही नहीं था। ये तो जाने साक्षात् गर्भ कल्याणक हो (ऐसा लगे)।"

अपना यह जन्म कल्याणक होना था, तो खबर न पड़े कि कब (होगा)? इतना कह दें कि सुबह आपको इतने बजे आना है। दूसरा और कुछ भी न कहे और रात में पूरी तैयार कर दे। हम सुबह देखें कि यह तैयारी और यह (सब) कब किया इन्होंने? हम सब ऐसे इतना आश्चर्य करें, इतना आश्चर्य करें कि नाचने लग जाते थे। ओहोहो! इतना अच्छा

ये करते हैं। तो भगवान का कल्याणक साक्षात् हो, ऐसा हमको भाव आया कि अपने यहाँ तो साक्षात् कल्याणक होता है।

गर्भ कल्याणक पर नानालालभाई और जड़ावबेन बेठे (थे)। पुण्यशाली (थे), इतने अच्छे लगें वो। (ऐसा लगे कि) ये गर्भ कल्याणक कितना अच्छा! इंद्र भी उनके थे ना, वो बेचरभाई और मोहनभाई और वो सब, उनकी ही प्रतिष्ठा थी। लेकिन ये सब पुण्यशाली थे ना, तो बहुत शोभते थे। सब लोग बहुत खुश हुए कि, "आहाहा! देखो! साक्षात् इंद्र अपने यहाँ पधारे हैं।"

फिर जन्म कल्याणक के समय तो बस ऐसा कहा कि आप सुबह ५-५.३० बजे आना। ५.३० बजे हम लोग पहुँचे, तब घड़ी से एकदम घंटे बजने लग गए, एकदम झालर बजने लगी, एकदम से बैंड बाजे बजने लगे। तो (कहें कि) ये क्या हुआ? खबर नहीं पड़े। एकदम जय-जयकार होने लगी, (तो बोले) कि भगवान का जन्म हो गया। कहीं खबर नहीं कि जन्म कल्याणक में ऐसा होता है, अब सारी खबर पड़ी (है)। आहाहा! कितनी अच्छी बात! पहला-पहला था ना तो बहुत नया लगता था। अभी तो सब आदत पड़ गयी ना, इतनी सारी प्रतिष्ठाएँ हो गयीं तो। वो तो पहला-पहला था, इसलिए ऐसा हम स्वयं ही पागल-पागल हो जाते थे। ऐसे-ऐसे खुश हुए, इतने खुश हुए।

ये सब लोग घूमते जायें और बोलते जायें। वो भाई दूसरे भाइयों को कहे कि, "भाई! ऐसा देखा था किसी दिन? ये तो कितना अच्छा होता है, ऐसा तो हमने देखा ही नहीं।" वो दूसरा भाई कहे, बेचरभाई कि, "ना रे भाई ना! यह तो हम सबका पहली-पहली बार है।" ऐसी सब बातें करें और और हम सुनें। तो ये लोग तो खुश होते थे कि यह तो हम लोगों ने कभी देखा ही नहीं (था)। ऐसी प्रतिष्ठा की, सब धाम-धूमपूर्वक।

इतने ज़्यादा खुश हों, खुश हों कि ये तो अपने साक्षात् भगवान के कल्याणक हैं, ऐसा (लगता है)। इस तरह से रचना उसने की थी। वो व्यक्ति बहुत उल्लासी था।

उसने समवशरण बनाया था, समवशरण। तो बेचारा कहे कि समवशरण किस तरह से बनाएँ? कुछ लाकर ही ना दे बेचरभाई तो। इसका क्या करेगा, क्या करेगा, ऐसे ही कहा करे। फिर उसने क्या किया (कि) लकड़ियाँ मँगवाईं (और) उसके टुकड़े किए। टुकड़े करके, ध्वजा तो थीं ही बहुत। एक लकड़ी में एक ध्वजा, एक लकड़ी में एक ध्वजा, ऐसे करके आठ भूमियाँ बनाईं, ऐसे। तो सबको बहुत अच्छा लगा कि, "ओहोहो! ये तो बहुत अच्छा समवशरण (बन गया)।" बीच में गंधकुटी बनाई और तीन चौकी के ऊपर भगवान को विराजमान किया। इसमें तो सब इतने खुश हुए, इतने खुश हुए कि दासभाई और हरगोविंदभाई और वजुभाई, सबने पैर में ढोलका (ढोलक) बाँधे। बाँधकर के प्रदक्षिणा दी। क्या नाचे, क्या नाचे सभी भाई कि, आहाहा! अपने घर पर समवशरण आया। ऐसे सब भाई और बहिन सभी पागल हो जाते थे। इतना भाव, भाव इतना। ढोलका (ढोलक) बाँधकर नाचे। हम सबने प्रदक्षिणा दी। सब नाचते जायें और गाते जायें।

भगवान की पहली प्रतिष्ठा थी ना।

श्रोता : उत्साह बहुत था?

पूज्य बेन : उत्साह बहुत था। बहुत उत्साह, मानो कि साक्षात् भगवान का कल्याणक होता हो, ऐसे भाव आवें। इतने ज़्यादा भाव आयें कि हम (रंग में) रंग जायें कि वाह! वाह! वाह! अपने गाँव में **अपना** पंचकल्याणक हुआ। उसको ना, शोभा-श्रृंगार करते बहुत आता था। ये

श्रीचंदजी थे। (वे) इतना अच्छा शोभा-श्रृंगार करें ठाठ-बाट से कि दूसरों कि आँखें फट जायें।

सभी कल्याणक पूरे हो गए। प्रतिष्ठा बहुत आनंदपूर्वक हुई।

पहली प्रतिष्ठा में ना गुरुदेव माइक ही नहीं रखते थे। इतनी आवाज़ ऊँची थी कि दो हज़ार लोग थे, सभी तक आवाज़ पहुँच जाती थी उनकी।

महामंगल प्रतिष्ठा की जय हो! सद्गुरु महाप्रभाव की जय हो!

भगवान को प्रतिष्ठा (करके) मंदिर में ले जाने (की बारी आई)। तो मंदिर में भगवान प्रतिष्ठा के दिन विराजमान करें ना, तो वो लकड़ी और वो सब करें। तो सब भाई केसरी धोती पहनकर लकड़ी का प्राको (पालकी) करके, भगवान को लेकर अंदर वेदी के ऊपर विराजमान करने आये।

तो मंदिर में आये भगवान, तो गुरुदेव एकदम ऐसे बोलें कि भगवान का खूब स्वागत करें। तो रामजीभाई बोलने लगे - पधारो भगवान! पधारो भगवान! पधारो भगवान! एक के साथ सब दस लोग बोलने लगे - पधारो भगवान! पधारो भगवान! हमारे मंदिर में पधारो पधारो पधारो! ऐसे उनकी धुन में बोलने लगे। पधारो भगवान! पधारो भगवान! पधारो भगवान! ऐसे बहुत कहने लगे तो गुरुदेव को इतने ज़्यादा भाव आ गए कि, आहाहा! ये भगवान! उनको धुन चढ़ गयी गुरुदेव को। धुन चढ़ गयी तो गुरुदेव ने साक्षात्, पूरे लम्बे होकर, (नमस्कार किया)। एकदम लम्बे हो गए। ओहोहो! भगवान पधारे! ऐसा कि ये ही अपने भगवान हैं। जिनका अपने को विरह हुआ, ये ही अपने सामने आकार के खड़े हैं।

पहले तो (इस जगह पर) पुराना मंदिर था। उस मंदिर के दरवाज़े पर लेटकर (गुरदेव ने) साष्टांग नमस्कार किया। साष्टांग नमस्कार तो किया लेकिन शरीर इतना ज़्यादा काँपें और आँख में से आँसू आते जाएँ और खड़े (भी) न रह सकें कि ऐसे खड़े रहें, इतने ज़्यादा आँख में से आँसू (आयें) कि (एकदम) धार निकले। और अरे भगवान! ऐसा कहकर विरह याद आ गया। हम आपका विरह करके यहाँ आये, अब हम आपकी प्रतिमा में संतोष मानते हैं। लेकिन ऐसा हृदय भर गया। रोवें-रोवें इतने आँसू बह जावें और काँपें एकदम। उसमें उनको बहुत दुःख हुआ और पूरा शरीर ऐसे काँपे और आँख में से जोरदार आँसू (निकलें)। पानी का ढगला हो गया नीचे। पाँच-सात मिनिट हो गए लेकिन खड़े नहीं हो पाए। फिर रामजीभाई हाथ पकड़कर (बोले), "गुरुदेव! अपने को तो भगवान को विराजमान करना है। गुरुदेव आज तो अपने लिए आनंद का प्रसंग है। भगवान अपने आँगन में पधारे हैं, आप आनंद का वातावरण करो।" फिर गुरुदेव मुश्किल से खड़े हुए। आँख में से आँसू निकलें (क्योंकि) उनको भगवान का विरह बहुत याद आ गया कि अरे रे! हम विरह में यहाँ आये। (लेकिन अब) इस प्रतिमा से संतोष मानेंगे।

(रामजीभाई ने कहा कि) "आप स्वागत करो।" तो गुरुदेव ने बोला, "पधारो भगवान! पधारो भगवान!" ऐसा कहा। अंदर भगवान विराजमान हुए। इतने ज़्यादा भावपूर्वक भगवान की प्रतिष्ठा हुयी, इतनी अच्छी (तरह से हुई)।

उसमें ज्वारा बोया था ना, ज्वारा, रामचंद जी ने। ये ज्वारा क्या फटा ऐसा, एकदम फाला-फाला-फाला हो गया, इतना ज़्यादा फाला। तो वो रामचंद जी बोले कि, "देखो! यह शकुन (शुभ संकेत) है। ये,

भगवान का धर्म इतना फ़ैलने वाला है।" ऐसा फैला, ऐसा फटा, ऐसा फटा। इतना तो ऊँचा फैला कि फ़ैल-फ़ैल-फ़ैलकर चारों ओर (में गया), खूब फैला। (उन्होंने कहा) कि, "यह आपका शकुन है और यह बहुत आपका फैलाव होनेवाला है।" (फैलाव) हुआ बहुत, ये बात भी सच्ची है।

इतना अच्छा उन्होंने (पंडित जी ने) प्रस्तुत किया। हमको तो बहुत ख़ुशी हुयी और फिर हमने बाद में, अपने को जितना ठीक लगे उतना पैसा दिया। इतनी (अच्छी) तरह से (उन्होंने) पंचकल्याणक की प्रतिष्ठा करवाई है।

भगवान की प्रतिष्ठा हुई तो सब आनंद मंगल हो गया। फिर गुरुदेव को उस वर्ष कहीं जाना था, बाहर गाँव। गुरुदेव ने कहा कि, "मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, प्रतिज्ञा, कि एक वर्ष तक भगवान की भक्ति मुझे करना चाहिए, तो मैं एक वर्ष तक (कहीं) बाहरगाँव नहीं जाऊँगा।" गुरुदेव को ऐसा लगा कि हम भगवान की विराधना करके आये हैं, इसलिए भगवान कि भक्ति रोज़ (अपने को) रखना, ताकि अपने से भगवान की आराधना हो, इसके लिए। इसलिए गुरुदेव ने सबके समक्ष कहा कि, "मैं एक वर्ष के लिए भगवान के सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि भगवान मेरे यहाँ पधारे (हैं), मोंघेरा (बहुमूल्य) भगवान मांड-मांड (देर से) पधारे (हैं)। तो एक वर्ष तक मैं कहीं बाहरगाँव नहीं जाऊँगा (और) भगवान की भक्ति करूँगा।" एक वर्ष नहीं गए कहीं (फिर)।

(तो) भक्ति का प्रोग्राम ऐसे चालू हुआ कि अपने को व्याख्यान के बाद भगवान की भक्ति करने आना। हमको कहा कि, "आप दोनों बहनें गाओ और सब झीलें (दोहराएँ)।" तो हम दोनों बहनें बैठें और

गायें और सब भाई-बहनें भक्ति में आयें। हम गायें तो गाने में इतने भाव आयें, इतने भाव आयें, बहुत भाव आयें।

गुरुदेव कहें कि बहनें दोनों भक्ति करती हैं, अपने को भक्ति में जाना। आधे घंटे रोज़ भक्ति करते थे। लेकिन रोज़ इतनी भक्ति कहाँ से निकालें? (और) तब खबर (भी) नहीं थी कि श्वेताम्बर (में भगवान के) क्या अतिशय कहते हैं और दिगंबर (में) कितने अतिशय कहते हैं। ये (सब) कहीं खबर नहीं थी। लेकिन (भक्ति में) कोई दोष न आवे, इस तरह से ऐसा कहते थे कि

"महामंगल अतिशय छाजे छे"।

"दिव्यध्वनिना नादे गाजे छे"।

जात्रा (तीर्थ-यात्रा) की, तो इतने भाव (आए)। भगवान पधारे, तो (भी) इतने भाव (आए)। एकदम ऐसे, भाव से पेट भर गया अपना। दूसरा कुछ खाना ही न पड़े।

ब्र. हरिभाई : सोनगढ़।

पूज्य बहिनश्री बेन, चम्पाबेन तथा शांताबेन भक्ति करती हैं।

एक लाइन पूज्य बहिनश्री चंपाबेन बोलती हैं और एक लाइन पूज्य बेन शांताबेन बोलती हैं।

श्री सीमंधर जिन स्तवन

आवो-आवो सीमंधरनाथ अम घेर आवो रे,

रूडा भक्तिवत्सल भगवंत नाथ पधारो रे।

(अर्थ :- हे सीमंधर भगवान! हमारे घर पधारिये। सुंदर भक्तिवत्सल भगवान! नाथ आप पधारिये)

श्री त्रिभुवन तारकदेव मारे घेर आवो रे,

मारा मनना मनोरथ आज पूरा पाडो रे।

(अर्थ :- तीनलोक के तारणहार, मेरे घर पधारिये। मेरे मन की इच्छा को पूरा कीजिये)

आवो-आवो सीमंधरनाथ अम घेर आवो रे,

रूडा भक्तिवत्सल भगवंत नाथ पधारो रे।

प्रभु! देखी उपशम नूर हैडे हरख्यो रे,

मैं देख्यो जिन दीदार वांछित फलियो रे,

(अर्थ :- प्रभु! उपशम नूर देखकर मेरा हृदय हर्षित हुआ। आपकी मूरत देखकर इच्छा फली)

आवो-आवो सीमंधरनाथ अम घेर आवो रे,

रूडा भक्तिवत्सल भगवंत नाथ पधारो रे।

प्रभु! भेट्यो श्री जिनराज सार ऐ दिनथी रे,

मैं देख्यो ऐ सुखकार दर्शन जिनथी रे।

(अर्थ :- प्रभु की भेंट से सार समझ आया। जिन-दर्शन से सुखस्वरूप को देखा)

आवो-आवो सीमंधरनाथ अम घेर आवो रे,

रूडा भक्तिवत्सल भगवंत नाथ पधारो रे।

हूँ कई विध पूजूँ नाथ कई विध वंदूँ रे,

मारे आंगणे विदेहीनाथ जोई-जोई हरखुं रे।

(अर्थ :- किस विधि से पूजा-वंदन करूँ? मेरे आँगन में विदेहीनाथ, देख-देखकर हर्षित हूँ)

मारे आंगणे विदेहीनाथ जोई जोई हरखुं रे।

(अर्थ :- मेरे आँगन में विदेहीनाथ, देख-देखकर हर्षित होता हूँ)

आवो-आवो विदेहीनाथ अम घेर आवो रे,

रूडा भक्तिवत्सल भगवंत नाथ पधारो रे।

(अर्थ :- हे विदेहीनाथ! हमारे घर पधारिये। सुंदर भक्तिवत्सल भगवान! नाथ आप पधारिये)

आवो-आवो सीमंधरनाथ अम घेर आवो रे,

आवो-आवो सीमंधरनाथ अम घेर आवो रे।

प्रभु सुरतरुथी पण अधिक मुजने मलियो रे,

मारो जन्म थयो कृतार्थ सुरमणि फलियो रे।

(अर्थ :- आप कल्पवृक्ष से भी अधिक, मुझे मिले। मेरा जन्म कृतार्थ हुआ, सुरमणि फलित हुई)

आवो-आवो त्रिलोकीनाथ अम घेर आवो रे,

रूडा भक्तिवत्सल भगवंत नाथ पधारो रे।

(अर्थ :- हे त्रिलोकीनाथ हमारे घर पधारिये! सुंदर भक्तिवत्सल भगवान, नाथ आप पधारिये)

कहान प्रभु प्रतापे आज जिनवर मलिया रे,

मारा आतमनां ऐ दुःख सर्वे टलिया रे।

(अर्थ :- कहान गुरु प्रताप से आज जिनवर मिले। मेरी आत्मा के सब दुःख दूर हुए)

मारा आतमनां ऐ दुःख सर्वे टलिया रे।

(अर्थ :- मेरी आत्मा के सब दुःख दूर हुए)

कहान गुरु प्रतापे आज जिनवर मलिया रे,

(अर्थ :- कहान गुरु प्रताप से आज जिनवर मिले)

गुरुराजे कर्यो उपकार राखी नहीं खामी रे,

आ पामर पर करुणा अति वरसावी रे।

(अर्थ :- हम पामर जीवों पर अति करुणा बरसाई। उपकार किया, कहीं कमी नहीं रखी)

गुरुराजे कर्यो उपकार राखी नहीं खामी रे,

(अर्थ :- गुरुदेव ने इतना उपकार किया कि कहीं कमी नहीं रखी)

आ पामर पर करुणा अति वरसावी रे।

(अर्थ :- हम पामर जीवों पर अति करुणा बरसाई है)

आवो-आवो सीमंधरनाथ अम घेर आवो रे,

रूडा भक्तिवत्सल भगवंत नाथ पधारो रे।

आवो-आवो त्रिलोकीनाथ अम घेर आवो रे,

रूडा भक्तिवत्सल भगवंत नाथ पधारो रे।

श्रीदेव अने गुरुराज मारे घेर आवो रे,

हूँ अंतरना उछरंगे प्रभुजी वधावुं रे।

(अर्थ :- हे भगवान और गुरुवर मेरे घर पधारिये। मैं अंतरंग के उछाल से स्वागत करूँ)

हूँ अंतरना उछरंगे प्रभुजी वधावुं रे।

(अर्थ :- मैं अंतरंग के उछाल से, प्रभुजी का स्वागत करूँ)

हूँ अंतरना उछरंगे प्रभुजी वधावुं रे।

(अर्थ :- मैं अंतरंग के उछाल से, प्रभुजी का स्वागत करूँ)

श्रीदेव अने गुरुराज मारे घेर आवो रे,

हूँ अंतरना उछरंगे प्रभुजी वधावुं रे।

(अर्थ :- हे भगवान और गुरुवर मेरे घर पधारिये। मैं अंतरंग के उछाल से स्वागत करूँ)

आवो-आवो सीमंधरनाथ अम घेर आवो रे,

रूडा भक्तिवत्सल भगवंत नाथ पधारो रे।

आवो-आवो विदेहीनाथ अम घेर आवो रे,

रूडा भक्तिवत्सल भगवंत नाथ पधारो रे।

बोलो विदेहीनाथ सीमंधर भगवान की जय हो!

बोलो विदेहीनाथ सीमंधर भगवान की जय हो!

बोलो देव-गुरु की अपूर्व जोड़ी की जय!

बोलो देव-गुरु की अपूर्व जोड़ी की जय!

बोलो देव-गुरु अपूर्व महिमा की जय!

बोलो! जिनेन्द्र महिमा की जय!

बोलो गुरुदेव महिमा की जय!

*** * ***

Track Number 71-A

श्री कहानगुरु इतिहास - अनादि के गलत संस्कार निकालने के लिए बहुत ही पुरुषार्थ चाहिए।

ब्र. रमाबेन : फिर सबको पूजा करना किस तरह से सिखलायी?

पूज्य बेन : फिर साकरचंद मुनीम ने हमको पूजा (करना) सिखाया, तो हमने पूजा सीखी। लेकिन ये जो, शास्त्र में अभी जो पूजा लिखी है, उसमें (हमको) भाव नहीं आवें। पहले की आदत नहीं थी ना। संस्कार जो स्थानकवासी के पड़ गए थे ना, बहुत ख़राब। कोई भी खोटा संस्कार, वो बहुत खोटा (और) ख़राब है। उस (संस्कार को) अच्छे में बदलने के लिए बहुत पुरुषार्थ करना पड़ता है।

इसमें एक बात बीच में कह दूँ कि गुरुदेव ने (परिवर्तन बाद) मुखपट्टी छोड़ दी, पर ये रजोहरण किसी दिन छोड़ते नहीं थे (परिवर्तन के बाद भी)। उनको तो ऐसा ही संस्कार पड़ गया था कि रजोहरण को छोड़े ही नहीं। हमने कहा कि इसका क्या काम? हमको सबको मन में तो यह खटकता था।

तो मुझे यहाँ यह कहना है कि संस्कार ऐसी खराब चीज़ है कि प्रेम छूटे नहीं। फिर 99 की साल में फिरने (विहार करने) गए (गुरुदेव) सौराष्ट्र में। तो झालावाड़ वालों ने इतना सख़्त विरोध किया। (झालावाड़ वाले स्थानकवासी ने कहा) कि लाओ हमारा रजोहरण! (दिगम्बर होकर) हमारा रजोहरण लेकर किसलिए घूमते हो? तो गुरुदेव बोले कि-यह लो तुम्हारा रजोहरण।

मुझे यह कहना है कि संस्कार बहुत ख़राब चीज़ है कि हमको संस्कार स्थानकवासी का था ना, तो पूजा इन सब (में रस नहीं आता था)।

अभी जो पूजा करते हैं उसमें तो बहुत रस आता है, (क्योंकि) संस्कार पड़ गया ना। पहले की छपी हुई पूजा में किसी को रस ही नहीं आता था। फिर क्या करें? तो एक गुजराती पूजा हमने रची। उसमें श्रीमद् राजचंद्र का नहीं है वो, सन्मार्गदर्शी बोधिदाता कृपा अति वरसावता। उसमें से बेन (बहिन श्री) ने और मैंने, दोनों जनों ने थोड़ा-थोड़ा निकाला और समयसार की गाथा डालीं और आत्मसिद्धि की गाथा डालीं, ऐसी (पूजा तैयार करके) पूजा की, तो वो सबको अच्छी लगी। (तो कहें कि) हाईश! यह पूजा अच्छी। फिर, हमने रोज़ पूजा करवाई, बेन और मैं। सभी झीलें (दोहरायें)।

ऐसा करते-करते संस्कार पड़े। नहीं तो संस्कार ही किसी को पड़ता नहीं था। वो छपी हुई पूजा तो कोई करता ही नहीं था। इसमें कहीं कुछ समझ में आता ही नहीं। (एक तो) हिंदी और फिर समझ में आए ही नहीं कुछ और आदत नहीं बदली। वो पूजा कोई करे (ही) नहीं। यह एक की एक पूजा करे, एक ही एक, गुजराती पूजा। अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे? उसमें डाला है ना, वो ही पूजा करें सब। वर्षों तक वही पूजा की।

फिर नेमीचंदभाई (पाटनी जी) आए, नेमीचंदभाई। कोई-कोई लोग आते थे। मार्ग दिखाने वाले आयें तो (कुछ) हो। नहीं तो अकेले-अकेले क्या करें स्थानकवासी? फिर नेमिचंदभाई (पाटनी जी) आये तो वो कहें कि इसमें नंदीश्वर में मांडला होता है। दिगंबर में बहुत धाम-धूमपूर्वक पूजा होती है (ऐसा कहा)। उन्होंने धाम-धूम कहा इसलिए

मेरा रोम-रोम उछल गया। हमको भी धाम-धूम सिखलाओ ना, हमको कहाँ आता है कुछ?

फिर नेमिचंदभाई (पाटनी जी) को ८ दिन रोका। (उन्होंने) मांडला कर दिया। मांडला (हमको) करते आता नहीं था। फिर नक़्शा दिया मांडला का। नक़्शा बांध दिया और फिर इस प्रमाण से पूरा किया और स्वयं रहे हाज़िर और पूजा कराई। ऐसा करते-करते हम पूजा करना सीखे। मांडला के पीछे चौपड़ी (किताब में लिखी हुई) पूजा में, फिर हमको रस आने लगा। फिर हम पूजा करने लगे। फिर कब तक तो सामूहिक पूजा चालू और चालू ही रखी, कितने वर्षों तक। फिर सब स्वतंत्र हो गए। दूसरे मंदिर और दूसरे गाँवों में प्रतिष्ठा होने लगी ना, फिर सब स्वतंत्र हो गए। ऐसा है।

ये संस्कार को मिटाने के लिए कितनी मेहनत करनी पड़ी। यदि पहले से ही सच्चे-धर्म में जन्मे होते तो इतनी सारी मेहनत नहीं करनी पड़ती।

श्रोता : गुरुदेव पात्र लेकर जाते थे (विक्रम) संवत् 2013 (ईस्वी सन् 1957) में? आहार लेने पात्र लेकर जाते हैं। वह पात्र किस तरह छूटा?

ब्र. रमाबेन : गुरुदेव ने पात्र कब तक छोड़ा नहीं था, (वह कैसे छोड़ा)?

पूज्य बेन : कहीं भी छोड़ते नहीं थे। यह रजोहरण तो स्थानकवासी (के विरोध के बाद) छोड़ दिया, लेकिन पात्रा था ना (उसे नहीं छोड़ा)। फिर दुलीचंद जी यहाँ आये, छोटालाल जी ब्रह्मचारी आए, पूरणचंद जी आए। फिर हम लोगों से तो कहते ही नहीं बनता था, क्योंकि (पहले कह चुके थे, लेकिन गुरुदेव) छोड़ते नहीं थे।

फिर हम लोगों ने इन सबको सिखलाया कि आप लोग मेहरबानी करके गुरुदेव के पास जाओ। आप कहो (क्योंकि) कि हम लोगों से नहीं कहा जाता। फिर गए वो तीनों लोग। दुलीचंद जी, छोटेलाल जी सब गये। गुरुदेव को कहा कि स्वामी जी! ये क्यों लकड़ी का रखा है? यह तो श्वेताम्बर का चिन्ह है। तो गुरुदेव ने कहा, मुझे थाली में बैठकर जीमना अच्छा नहीं लगता।

फिर (भाई) बोलें कि यह लकड़ी का छोड़ दो (और) वो पीतल, धातु का ले लो। तो फिर धातु का पात्र बनवाया और फिर....वो सूरत (वाले) फ़ावाभाई का बेटा है ना, उसने बेचारे ने ऑर्डर देकर धातु का पात्र बनवाया। धातु का पात्र लेकर आए और ये पात्र दिया, वो लेकर वोरावा के लिए निकालते थे। पर वो तो, वो का वो ही रहा ना, झोली तो हाथ में ही हाथ में (रही)। हमको तो वो (भी) खटके। सभी भक्तों को खटके लेकिन वो छोड़े नहीं। संस्कार की टेव (आदत) पड़ गई ना।

फिर हमारी १३वी साल की यात्रा हुई २०१३ की। २०१३ की यात्रा। फिर गुरुदेव को स्वयं को ऐसा भाव हुआ कि हम सब लोग यात्रा में (चलते हैं)। हम पहले-पहले (यात्रा) करके आ गये थे। हमने की और फिर हमने उत्साह बताया इसलिए गुरुदेव ने कहा हम यात्रा पर चलते है। बेन ने तो कर ली, अब हम चलते हैं, ये संघ लेकर चलते हैं।

फिर एक दिन यहाँ बैठे थे, श्रावण महीने में। तो गुरुदेव को स्वयं विचार आया कि हम यात्रा करने जाते हैं, इस वर्ष में। और खीमचन्दभाई बैठे थे, रामजीभाई बैठे थे। हम दोनों बहनें बाहर चले गए थे। तो वहाँ से बुलाया। बहनों को कहो कि (गुरुदेव) बुलाते हैं। स्वयं (गुरुदेव) बोले कि हम इस वर्ष के पूरे होने के बाद, दिवाली (के बाद), फिर यात्रा करने निकलेंगे। तो हमको इतनी खुशी हुई, सबको इतनी खुशी हुई कि ओहोहो! गुरुदेव आपके स्वर्ण वचन निकले। आपके स्वर्ण

वचन फलीभूत हों। ऐसी उन्होंने खीमचंभाई ने इतनी ज़ोर से जय बुलवाई। सभी बहुत ख़ुश कि आपके वचन फलीभूत हों, हम यात्रा करेंगे। फिर स्वयं (गुरुदेव) उस समय बोले कि **यात्रा करने जायें दिगंबर देश में,** स्वयं ही बोले, **तो वहाँ पात्रा लेकर नहीं जायेंगे**।

हमने कहा, बहुत अच्छा हुआ! बाद में हमने खुलासा नहीं किया। खुलासा करने जाओ तो सब चुप हो जायेंगे।

चलकर के तो वहाँ (इतनी दूर) जा नहीं सकते इसलिए हम सब मोटर में बैठेंगे। यहीं (गुरुदेव) बोले (कि) **मोटर में बैठेंगे।**तब तक चलकर के जाते थे (गुरुदेव)। डोली में जाएँ, चलकर जाएँ, मोटर में नहीं बैठते थे। **मोटर में बैठेंगे और थाली में जीमेंगे,** बस इतना यहाँ बोल गये। इतना हम दोनों जनों ने पकड़कर रखा।

फिर १३वीं साल में मुंबई गये और मुंबई से (पहले) तो कहीं शुरू नहीं हुआ (था, बिना पात्र के भोजन)।

फिर वहाँ भिवंडी में मगनभाई (सुंदर जी) का घर था। भिवंडी गये, वहाँ से यात्रा शुरू हुई। फिर मगनभाई को हमने कह रखा था कि आप सारी रसोई तैयार करो और 'भिक्षा लेने आओ', ऐसा नहीं कहना। आप जाओ और 'गुरुदेव भोजन के लिए पधारो', ऐसा कहना।

वो गए दोनों बाप बेटे, वजुभाई और वे (मगनभाई, और बोले), "गुरुदेव हमारे घर भोजन के लिए पधारो, सब आहार-जल शुद्ध।" थाली-चांदी, कटोरी तैयार की। हाईश! ऐसे बैठे जीमने को और वहाँ से शुरू किया जीमना, सुबह-शाम दोनों टाइम (पहले एक टाइम ही लेते थे)।

फिर वहाँ तो तीन महीने (यात्रा में) फिरे। हम लोग सब चाँदी के बर्तन साथ में ले गए और गुरुदेव जिसमें बैठे, वो बाजोट साथ में ली।

हमारे साथ मोटर थी, तो सब कुछ साथ में लेकर निकले कि गुरुदेव को कोई तकलीफ़ न पड़े। तो सब कुछ लेकर निकले। जात्रा (यात्रा) तो हो गयी अच्छी। पर यहाँ आये। सीहोर आया, सीहोर; तो यहाँ आकर के थाली में जीमेंगे। तो वो कहें कि पात्रा कहाँ गया (ऐसा अगर पूछा), तो क्या कहेंगे? पात्रा अपने को किसी भी तरह से लेने नहीं देना है (ऐसा हमने नक्की किया)।

फिर बेचरभाई थे एक। बेचरभाई और हिम्मतभाई पंडित और हम दोनों बहनें। हमने कहा कि हम सब चलते हैं सीहोर और हम नक्की करते हैं कि गुरुदेव थाली में ही जमें, ऐसा। फिर बेचरभाई को कहा कि आप बोलना, काम आपका है। इसलिए हमने सिखला दिया।

बेचरभाई ने वहाँ जाकर के कहा कि, "गुरुदेव आप पधारो! आपके लिए एक कमरे में रसोई बनायेंगे और दूसरे कमरे में आप भोजन जीमना। बस इस तरह से व्यवस्था की है," ऐसा कहा। तो ऐसे जोर से (गुरुदेव) पहले बोले, "कोई भी बहिन मेरे पास नहीं आवे। कोई नहीं आवे। जो कहीं थोड़ा भी फेरफार हुआ (कि कोई बहिन पास आए) तो मैं पात्रा ले लूँगा।" ऐसा डर बताया कि, अरर! बाप रे! हमने कहा कि, "उनकी (जो) आज्ञा। उनको जैसा मन ठीक लगे, वैसा अपने को करना है।"

हम बराबर ध्यान रखें, ये व्यवस्था हमारे ज़िम्मे। मैंने कहा, "आपको किसी प्रकार की परेशानी नहीं होगी, लेकिन आप थाली में जीमो।" तो उन्होंने स्वीकार लिया। यहाँ (सोनगढ़) आए ना, तो यहाँ तो (उस समय) था ही नहीं, यह मकान। हरिभाई के कमरे में रसोई बनाई और वहाँ जो भाई हैं मनसुखभाई, वहाँ (उनके कमरे में) गुरुदेव जीमने

बैठते थे। यहाँ सब था लेकिन वो रसोड़ा नहीं था। फिर तुरंत-तुरंत ऑर्डर दिया और फौरन दो महीनों में रसोड़ा तैयार हो गया।

फिर (गुरुदेव) बैठें तो कोई भी बाई सामने दिखे तो राड़ पाड़े (गुस्सा करें)। ऐसी राड़ पाड़ें - बहनें नहीं, बहनें नहीं, बहनें नहीं। फिर न जायें, बहनें जीमने की थाली दें, बस। पात्रा छूट गया। हमको तो पात्रा छुड़ाना था कि हमने दिगंबर धर्म स्वीकार किया और यह स्थानकवासी का चिन्ह किसलिए रह गया?

श्रीचंदजी, वो आलोचना कब तक बोलते थे, ये स्थानकवासी की? आलोचना दिगम्बर की, लेकिन स्थानकवासी के दिन (संवत्सरी) में आलोचना बोलें। आलोचना पाठ है ना अपना पद्मनंदि आचार्य का। श्वेताम्बर में ऐसा रिवाज़ है कि आलोचना हो ना तो संवत्सरी के दिन, पाँचम के दिन, आखरी दिवस पर बोलें। तो वह संस्कार हमारा जाये ही नहीं किसी भी तरह से। आलोचना अपनी पढ़ें, दिगम्बर की, लेकिन वो पंचमी के दिन बोलें कि ये सभी श्रावक-श्राविका अपने भक्तजनों ऐसा कहें कि आज तो हम खाकर बैठे हैं (अर्थात् उपवास नहीं है, आलोचना कैसे करें)।

रामजीभाई ने कहा कि साहेब! आलोचना तो अब अपनी दिगंबर की है, ऐसा कहा। बोल नहीं सकता था कोई (कुछ और)। फिर ऐसा करते-करते छूट गई, अब वहाँ से छूट गई। उपवास किया ही, दिगंबर का पहला दिवस हो, उस दिन आलोचना पढ़ो, तो प्रेम (से) सब सुनें। ऐसा सबको, सभी का, सभी भक्त-मण्डल का (ऐसा) भाव (था)। इस तरह से गुरुदेव के, पूरे धर्म (परिवर्तन का) इतिहास (है)। दिगम्बर धर्म की आराधना हुई।

श्रोता : पुराण हुआ पुराण। इतिहास रच गया।

पूज्य बेन : हाँ! इतिहास है।

ब्र. रमाबेन : वो कह रहे है कि मैंने तो सुना ही नहीं इतने वर्षों में।

पूज्य बेन : किसी ने सुना नहीं। बोलो! कुछ नहीं सुना था इतना सारा। बोलो!

फिर यात्रा में दूसरे बाहरगाँव जायें ना, वहाँ ८ बजे, ९ बजे तो पहुँचे। एक गाँव से दूसरे गाँव जायें तो। हमारी स्टेशन-वेगन गाड़ी इस तरह बहुत धीरे चले। तो सब पहुँच जायें और हमको देर हो। तो हमको पूछे कि कहाँ आहार कहाँ है गुरुदेव का? तो हम दोनों बहनें पहुँच जाये। खाया न हो, पिया न हो, कुछ भी न किया हो। तो हम जहाँ गुरुदेव उतरें हों, वहाँ पहुँच जायें। पहुँचकर रसोई की व्यवस्था करें। कहीं कुछ फेर पड़ता हो, तो न पाड़ें (मना करें)। इसलिए कि (यात्रा में) किसी तरह से (गुरुदेव का) मन बदल न जायें, इस तरह से (सब किया)। इतनी जात्रा (यात्रा) में हमने इतनी मेहनत करके आहार-दान वैसा का वैसा रखवाया।

ये तो रहा (यात्रा में), पर यहाँ (सोनगढ़ में उनके मन का) बदलाव होना संभव था। तो किसी तरह से (मन) न फिरे, ऐसा हमने दृढ़ता करके खूब मेहनत की।

(प्रतापगढ़ में) बहुत बड़े सीमंधर भगवान विराजमान किये, प्रतापगढ़ में। चौबीसों भगवान की तो प्रतिष्ठा होती है। तो प्रतापगढ़ में बहुत बड़े सीमंधर भगवान (की प्रतिमा) है।

देखा है, आपने प्रतापगढ़ में?

श्रोता : बोर्डिंग में। देखा है, बोर्डिंग में।

पूज्य बेन : हाँ! बोर्डिंग में। कितने बड़े हैं! अपने भगवान (जो यहाँ सोनगढ़ में हैं) उनसे भी बड़े हैं। बहुत बड़े भगवान हैं। इतनी बड़ी पालथी मारकर के बैठे हैं। सफ़ेद पत्थर में।

बोलो सीमंधर नाथ के महामहात्म्य की जय हो!

सीमंधरनाथ के महापावन चरणों की जय हो!

बीस विहरमान भगवान की जय हो!

सर्व महामुनिराज की जय हो!

परम कृपालु सदगुरुदेव की जय हो!

सद्गुरु महा उपकार की जय हो!

शुद्धात्मा की जय हो!

शुद्ध स्वरुप परिणति की जय हो!

देव-शास्त्र-गुरु भगवान की जय हो!

पूज्य भगवती माताओं की जय हो!

पूज्य बेन की भगवत वाणी की जय हो!

*** * ***

Track Number 71-B

पूज्य गुरुदेव कहते थे कि आत्मा के समीप में रहे वही सच्चा तप है। पर्युषण-पर्व में कर्मों का क्षय करने के लिए तप करते हैं। कर्म-क्षय, आत्मा की पहचान करे, आत्म क्षमा को पहचाने, तो ही कर्म-क्षय का कारण बनता है।

पूज्य बेन : पर्युषण-पर्व कर्म के क्षय करने के लिए हैं। तपश्चर्या करे, उपवास करे, प्रौषध करे, संयम धारण करे, तो ये सब कर्म को क्षय करने के लिए करे। तो कर्म-क्षय किस तरह से हो? कि प्रौषध करे, उपवास करे, तो उससे कर्म-क्षय तो कहीं होता नहीं। ये तो शुभभाव है। लेकिन आत्मा के स्वरुप में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति करे, सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा को पहचाने और आत्मा को पहचानकर आत्मा का स्वरुप प्राप्त करे, तो अनंतानंत कर्म-क्षय हो जाते हैं। सम्यग्दर्शन प्राप्त हो, तो कर्म के ढगले के ढगले (की) निर्जरा हो जाती है। तो कर्म के ढगले की निर्जरा हुई कि नहीं हुई, ये तो एक तरफ रहा। लेकिन स्वयं के स्वरुप का, आत्मा के स्वरुप का ज्ञान और भान कि जो ये अनादि काल से अज्ञान में था कि स्वयं, स्वयं को समझता नहीं था और मैं कौन हूँ, ये धर्म करता हूँ, ये सब पर्युषण करता हूँ, लेकिन ये क्या है, किसके लिए है, कहाँ लाभ होता है, क्या हानि होती है, ये समझे बगैर ऐसे के ऐसे ऊपर-ऊपर से हो, तो कुछ लाभ नहीं होता। लेकिन ये मैं चैतन्य आत्मा हूँ, इस चैतन्य आत्मा को पहचानकर और स्वयं के स्वभाव को पहचाने, तो उसको लाभ कहाँ है, हानि कहाँ है, ये सब खबर पड़े। और लाभ किस तरह से हो, (ऐसा ज्ञान हो) तो लाभ में प्रवर्ते और हानि से दूर रहे।

तो ये पर्युषण पर्व का अर्थ ये है कि पर्युषण में चैतन्य आत्मा का लाभ प्राप्त करना और कर्म की हानि करना। ये कर्म की हानि, ये सब कर्म कहे, प्रकृति, स्थिति, बंध, अनुभाग, इन सबका अभाव करना, लेकिन अभाव करने से होता नहीं। आया है ना समयसार में कि इच्छा करे कि यह बंधन मुझे चाहिए नहीं, बंधन टूट जाये, टूट जाये, तो इच्छा करने से बंधन टूटता नहीं। लेकिन बंधन टूटने का उपाय जो करे, तो बंधन टूटता है। तो बंधन टूटने का उपाय क्या है? कि उपाय ये है भगवान ने, आचार्य देव ने कहा, महावीर भगवान ने कहा, गुरुदेव ने कहा, गुरुदेव ने सब समझाया, बहुत समझाया है।

गुरुदेव ने ही ये सब समझाया है कि ये पर्युषण पर्व अर्थात् क्या? कि पर्युषण अर्थात् आत्मा के समीप में उपयोग को रखना, उसका नाम पर्युषण पर्व है। आत्मा चैतन्य है, उसके समीप में उपयोग को रखना, वह पर्युषण पर्व है। ये पर्युषण पर्व करे तो कर्म का क्षय होता है। अनंत कर्मों का क्षय होता है और कर्म से रहित होता है और आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वृद्धि (होना), आत्मा का स्वरुप समझे, तो ये (सम्यक) ज्ञान है और स्वरुप की श्रद्धा करे, वो सम्यग्दर्शन है। (श्रद्धा) कि यही मैं आत्मा हूँ, यही मेरा स्वरुप है, यही मैं हूँ। इसमें कुछ भी, इसमें कहीं भी किसी को पूछने जाना नहीं पड़ता कि मैं कौन हूँ भाई? मुझे सम्यग्दर्शन तो हुआ है, लेकिन मैं कौन हूँ? ये पूछने जाना नहीं पड़ता। मैं कौन हूँ, ये स्वयं, स्वयं को जानता है, उसको साक्षात् चैतन्य आत्मा नज़र से दिखता है कि यह मैं हूँ, ये ही मेरा स्वरुप है, ये मैं हूँ, ऐसी पक्की दृढ़ श्रद्धा हो जाती है, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसी पक्की दृढ़ श्रद्धा हो जाये, (तो) इसको किसी को पूछने जाना नहीं पड़ता। ऐसी सम्यग्दर्शन की श्रद्धा हो और उसका ज्ञान साथ में (हो)।

ये ज्ञान और दर्शन सब साथ ही साथ में है और उसमें लीनता करना, वह चारित्र है।

ये चारित्र के दिवस हैं। दसलक्षण धर्म, ये चारित्र के दिवस हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने के बाद, चारित्र की आराधना करने के लिए ये दस धर्म हैं। इन दस धर्मों का उत्कृष्ट पालन मुनिराज करते हैं, लेकिन एकदेश पालन श्रावक भी कर सकते हैं। एकदेश श्रावक पालन कर सकते हैं। अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक, देश-चारित्र का आराधन करना, उसका नाम यह पर्युषण पर्व है, दसलक्षण धर्म है। ये दस धर्मों की आराधना करना, उसका नाम यह पर्युषण पर्व है, आज पूरे होते हैं।

श्रोता : सम्यग्दृष्टि को शुरुआत हो जाती है दस ही धर्मों की?

पूज्य बेन : हाँ! मैं कौन हूँ, क्षमा स्वभाव जो आत्मा का है, आत्मा का क्षमा स्वभाव है, उस क्षमा स्वभाव को पहचाने। कोई कषाय न करे कि मुझे कोई कुछ कहे, तो कषाय (मुझे) नहीं करना। तो ये कषाय न करे, ये क्षमा तो प्रशस्त (भाव) मंद कषाय है। लेकिन ये तो मैं क्षमास्वरुप ही हूँ, मेरा स्वरुप ही क्षमा है, ऐसा स्वरुप समझे, वह सम्यग्दृष्टि। और मेरा स्वरुप ही क्षमा है, निर्मानता मेरा स्वरुप ही है, मान का विकल्प आये ही नहीं। ज्ञानी को मान का विकल्प ऐसा आता ही नहीं कि मैं बहुत आगे बढ़ गया। आगे क्या बढ़ा? मेरा स्वरुप तो बहुत पूर्ण है। पूर्ण वीतराग है, पूर्ण सर्वज्ञ है। ये पूर्ण सर्वज्ञ है, ये मेरा स्वरुप है। ये पूर्ण सर्वज्ञ (पर्याय में जब तक) न होऊँ, वहाँ तक मैं बहुत आगे बढ़ गया, ऐसा ज्ञानी को आता ही नहीं।

ये निर्मान स्वभाव है। इस स्वभाव को पहचानता है कि मेरा स्वभाव निर्मान है। सरल स्वभाव, सरल स्वभावी आत्मा है। आत्मा स्वयं सरल स्वभावी है, एकदम सीधा स्वभाव। जैसा चैतन्य सीधा, ऐसा

उसका चैतन्य स्वभाव सीधा। ये सरलता में उलट-पलट करे, ये माया है।

ज्ञानी धर्मात्मा समझते हैं कि मैं तो सरल स्वभावी हूँ। मेरा स्वभाव ही सरल है। निर्लोभता मेरा स्वभाव (है)। ये ममता करना, ये मेरा स्वभाव नहीं। ममता गृहस्थ आश्रम में तो हो जाती है, लेकिन मैं तो निर्ममत्व स्वरूपी हूँ। मेरा स्वरुप ही निर्ममत्व है। ये मुनिराज सभी निर्ममत्व स्वरुप को प्राप्त करके और वन में चले गए। तो निर्ममत्व स्वरुप ही मेरा है। ये ज्ञानी सभी स्वरुप को समझते हैं। दस ही धर्मों को समझकर धर्म की आराधना करते हैं।

उपवास करो, एकासन (एकठाणा) करो प्रौषध करो, बेला-तेला चाहे जितने उपवास करो, तो कर्म-क्षय हो जाते हैं (ऐसा नहीं है)। लेकिन कब होता है क्षय कि आत्मा का स्वरुप समझे (तब)। स्वरुप को समझे बिना (कर्म) मंद होता है, कर्म मंद पड़े, हल्का होता है, लेकिन मूल में से जो नाश होना चाहिए, वो नाश नहीं होता।

तो (मैं) ऐसा मानती थी कि स्थानकवासी के पर्युषण (ऐसे), तो फिर गुरुदेव एक दिन बोले, कि आज तो अनंत चतुर्दशी का दिवस है बड़ा। बड़ा दिन है आज। हमको तो किसी को खबर नहीं थी। (आगे गुरुदेव बोले) कि आज तो दिगंबर समाज की बड़ी धाम-धूम होती है। आज तो बहुत धाम-धूम दिगंबर समाज में (हो, ऐसा) आज का दिन बहुत बड़ा है। तो हमने कहा हम क्यों बड़ी धाम-धूम नहीं करें? हम दिगंबर हैं, लेकिन धीरे-धीरे करते-करते (मनाने लगे)। पहले खबर (नहीं थी)। अनंत चतुर्दशी की खबर नहीं थी। ये गुरुदेव ने समझाया। उसका स्वरूप गुरुदेव ने सब समझाया कि ये दस धर्म पर्युषण के पर्व हैं।

Track Number 71-C

पूज्य गुरुदेव श्री का उपकार कभी भूल नहीं पायेंगे। पूज्य गुरुदेव की श्रुतधारा बहुत सूक्ष्म थी और सभी जीव इस सत् स्वरूप में मग्न हों, ऐसा करुणा भाव, वात्सल्य भाव (उनको) था।

पूज्य बेन : भगवान के चरणों में जाऊँ, तो मुझे (तो) भगवान ही मिलने वाले हैं। फिर क्या काम (कि) ये मिले कि ये मिले, ऐसी कोई भावना नहीं। जो भगवान मिलें, वो। भगवान का मुझे काम (है), ये तो मिलना ही हैं।

श्रोता : एक ज्ञायक स्वभाव न छूटे।

पूज्य बेन : चरणों में मैं जाऊँ**,** ये बराबर**!** कि मुझे महापुरुषों के चरण मिलें और वहाँ मैं अपनी आत्मा का कल्याण करूँ। बस फिर वो महापुरुष जो मिलें**,** वो महापुरुष **(**ठीक**)**। महापुरुष सभी महापुरुष ही होते हैं।

श्रोता : किसी का भेद पाड़ने की क्या ज़रूरत**?**

पूज्य बेन : भेद पाड़ने का विकल्प ही नहीं आये।

श्रोता : विकल्प ही न आये।

पूज्य बेन : भगवान की शरण में जाऊँ, ये भावना ज़रूर। आत्मा का स्वरुप, इस आत्मा में से कल्याण हो, मोक्ष जाएँ, ये सब स्वरुप बताने वाले गुरुदेव ही हैं।

गुरुदेव का परम-परम उपकार है। अपने ऊपर तो जन्म से लेकर अब तक बहुत-बहुत उपकार है। गुरुदेव की जो श्रुतज्ञान की

धारा थी, गुरुदेव की श्रुतज्ञान की धारा तो इतनी ज़्यादा सूक्ष्म, इतना ज़्यादा सूक्ष्म ज्ञान कि (उससे) अपने को सबको इतने वर्ष (हो गए), ये पचास-पचास वर्ष तक समझाया। इतना श्रुतज्ञान से, सूक्ष्म ज्ञान से (समझाया)। इतना ज़्यादा वात्सल्यभाव गुरुदेव का (था) कि भाई समझो, तुम समझो, तुम समझो। गुरुदेव कहते थे कि समझाने में जो आता है, भाषा में, विश्राम में, इसलिए समझना बहुत दुर्लभ है। इसलिए उनकी भाषा में बारम्बार आता था कि समझो, भाई समझो, समझो तुम, ऐसा। अर्थात् समझो, उनको स्वयं इतना ज़्यादा वात्सल्य समझाने का है कि ये जो सत्य हमने समझा है, ये सभी जीव समझें। ये समझने का है। इतने वात्सल्य भाव से सभी जीवों को समझो, समझो, समझो, ऐसी उनको अंदर से भावना आती थी। ऐसा वात्सल्य भाव उनके अंदर (था)। जबरदस्त वात्सल्य भाव था कि सभी जीव समझें, सभी जीव समझो। पूरा जगत इसमें आ जाओ ऐसा कहते हैं। जैसे अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं ना कि पूरा जगत इस अमृत रस में मग्न हो जाओ। ये अमृत रस आत्मा का है। इसमें पूरा जगत मग्न हो जाओ। ऐसा अमृतचन्द्र आचार्य बारम्बार कहते हैं। कुन्दकुन्द आचार्य ने (भी) कहा, ऐसी गुरुदेव की भी यह सहज भावना थी। उनका सहज आत्मा यह बोलता था, पुकार करता था कि यह समझना बहुत दुर्लभ है। यह सत्य समझना बहुत दुर्लभ है। अनादिकाल से सत्य समझा नहीं।

गुरुदेव बारंबार कहते थे कि भाई तूने अनंत काल से सब किया, क्रिया-काण्ड। (अपना) ये क्रिया का रस उतारा हो, तो गुरुदेव ने (ही) उतारा (है)। नहीं तो संप्रदाय में तो क्रिया का रस कितना चढ़ जाता है कि ये क्रिया करूँ, ये क्रिया करूँ, ये क्रिया करूँ। लेकिन गुरुदेव ने कहा कि क्रिया करो तुम, भाव से, परन्तु, उसका जो वजन है ना, उसके

ऊपर उसका रस है, उस रस को छोड़कर आत्मा के रस में आ जाओ। आत्मा को समझे बिना सब कुछ नकामा है। आत्मा को समझे बिना सब कुछ नकामा है। ऐसा गुरुदेव स्वयं बारम्बार कहते थे। इतना उनको सत्य का प्रेम था। चैतन्य के सत्य स्वरुप का इतना प्रेम और इतना रंग था कि ये सभी (समझें)। अभी तक, पचास-पचास वर्षों तक, ऐसे जितनी भावना से प्रकाश हो उतनी भावना से प्रकाश (गुरुदेव ने) किया। देश-प्रदेश-विदेश फिर-फिरकर के भी (प्रकाश किया) कि भाई! जीव समझें, किसी तरह से समझें। तो सभी जगह घूम-घूमकर के भी सत्य को समझाने के लिए उनकी अविहर भावना थी, अंदर की। उस अविहर भावना से उनकी आत्मा का तो कल्याण ही है, लेकिन अपने जैसे भव्य जीवों का भी कल्याण करने में निमित्त बने हैं। इसलिए गुरुदेव का तो परम-परम उपकार है। उनका तो जितना उपकार मानें उतना कम है।

उनका उपकार तो हम ज़िन्दगी भर भूल सकते नहीं। पूरे दिन में कितनी बार गुरुदेव याद आते हैं, कितनी बार याद आते हैं। क्योंकि मुझे तो ऐसा विचार आता है कि बहुत (लोग) गए हैं (जिनका देह-विलय हुआ है)। (लेकिन) कोई (और) याद नहीं आता, (बस) एक गुरुदेव ही इतने याद आते हैं। गुरुदेव तो कितनी बार दिन में आखिरी स्थिति में यहाँ थे, तो आखिरी स्थिति में भी कितनी बार याद आते हैं। दिन में कितनी बार सहज-सहज याद आते हैं। ह्रदय ऐसा हो जाये कि उनके ऊपर बहुत प्रेम था, इसलिए ये बारम्बार याद आते हैं।

गुरुदेव इतने ज़्यादा क्यों याद आते हैं? (क्यों) कि उनके ऊपर अपने ह्रदय में बहुत प्रेम है। उन्होंने अपने ऊपर सच्चा उपकार किया है। अपने को सही समझाया है। इसलिए अभी तो (सोकर) उठी तो गुरुदेव, सोयें तो गुरुदेव, सहज-सहज गुरुदेव याद आया ही करते हैं।

ऐसे नज़र में से खिसकें नहीं और ऐसे मुझे विचार आये बहुत बार कि गुरुदेव इतने ज़्यादा क्यों याद आते हैं? बिना विचारे याद आ जाते हैं। अपने को उनके ऊपर सच्चा प्रेम था। अपने जीवन में वे (ही) आधार थे। अपने जीवन के वे रक्षण करने वाले थे। अपने जीवन का आधार हो, तो गुरुदेव ही थे।

अपने को भी सत्य का प्रेम और उनकी (कही हुई) सत्य (बात) अपने पास रही। इसलिए अपने को उनके ऊपर इतना ज़्यादा प्रेम है। इसलिए अपने को पूरे दिन (गुरुदेव) याद आते हैं। इसलिए उनका उपकार तो किसी तरह से भूल नहीं सकते। ये, क्षण-क्षण गुरुदेव तो याद आने ही वाले हैं। उनको तो किसी तरह से भूल सकते नहीं।

उनका वात्सल्य, प्रेम और सत्य ज्ञान की जो सूक्ष्म धारा (थी), वो कोई अपूर्व थी। गुरुदेव का ही प्रताप है (सब)। ये सब कुछ निधान, ये सब सत्य को समझाने वाले, ये सब तो गुरुदेव ही हैं। गुरुदेव सब में से बचाते थे (कि) भाई बचना, बचना, बचना। किसी प्रकार का ऐसा भाव नहीं होने देते थे।

* * *

Track Number 72-A

स्वर्णपुरी तीर्थधाम में श्री जिनेन्द्र भगवान की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा होने के बाद सौराष्ट्र में, गुजरात में, महाराष्ट्र में मुंबई जैसे शहरों में, गाँव-गाँव वगैरह में पंचकल्याणक तथा वेदी प्रतिष्ठाएँ हुईं। उसमें अंतिम, विदेश में नैरोबी-अफ्रीका में तथा गुजरात में, बरोड़ा में बहुत ही आनंद (एवं) उत्साहपूर्वक प्रतिष्ठा हुई थी। नैरोबी मैं पूज्य गुरुदेव के साथ जाने वाले मुमुक्षुओं को (बेन), श्री जिनेन्द्रदेव की अद्‌भुत महिमा बताती हैं, जो आत्म-सन्मुख होने में निमित्त होती है।

श्रोता : वो नोटबुक है, व्याख्यान का सार-सार लिखने की?

ब्र. रमाबेन : व्याख्यान में आप कहते थे ना कि सार-सार लिख लेती थी, विचार करने के लिए। उस समय के वो नोट्स पड़े हैं?

पूज्य बेन : हैं तो सही तेरे पास ही। लेकिन उस समय का अच्छा हो, उससे भी ज़्यादा अच्छा अभी का जो है, वो सब और ज़्यादा ऊँचा है। मेरे विचार के लिए मैं ग्रहण करती थी, लेकिन उस समय का (जो था) वह सामान्य बात। अभी का जो भाव गुरुदेव का (है), वो बहुत विशेष (ऊँचा) भाव आता है।

ब्र. रमाबेन : आप दोनों लिखते थे ना, समयसार में से। जीवाजीव अधिकार के प्रवचन बाहर आ (गए) थे ना।

पूज्य बेन : लिखने से ज़्यादा भगवान के ऊपर बहुत भाव आते थे। भगवान का कार्य हो वो बहुत जोर से करूँ। भगवान तो 97 की साल में आ गए थे।

विक्रम सम्वत् 1990 (ईस्वी सन् 1934) की साल में गुरुदेव को परिवर्तन करना था ना, (तब) वाँकानेर में (हम) आये। तब शीतलप्रसाद जी (वहाँ) आये थे, शीतलप्रसाद जी, ब्रह्मचारी। उनका नाम तो बहुत ज़्यादा सुना था। वो वनीचंद सेठ के घर उतरे थे। गुरुदेव (दूसरे दिन) सुबह आने वाले (थ)। हम लोग शाम को (ही) आ (गए), वाँकानेर में। तो वाँकानेर में शीतलप्रसाद जी आये। तब बहिनश्री और मैं, दोनों गए वनीचन्द सेठ के घर कि चलो! शीतलप्रसाद जी को हम देखें तो सही। बहुत नाम बड़ा सुना है। वहाँ गए और बैठे, तो वो समयसार पाठ पर पाठ, पाठ पर पाठ, पाठ पर पाठ बोलने लगे। हमने सब देखा तो सही (लेकिन) कुछ बोले नहीं। हम समझ गए कि ये तो इनको पाठ ही है, दूसरा कुछ नहीं।

गुरुदेव ने हमको कहा कि शीतलप्रसाद आए हैं। हाँ! आए तो हैं। (तो गुरुदेव ने कहा) कि बहुत बड़े पुरूष हैं। (हमने कहा) कि साहब! आप परीक्षा करो। दूसरा क्या कहें गुरुदेव?

हमने (गुरुदेव से) कहा - साहब! आप उनके साथ थोड़ी बात करो तो हमको खबर पड़े। (तो गुरुदेव ने उनसे) बात की। पाठ बोलते थे।

बोलें सब अध्यात्म के पाठ, कुन्दकुन्द आचार्य के पाठ और सब मुखपाठ, आत्मा कर्ता नहीं, भोक्ता नहीं, सब मुँह से बोलें पाठ, टीका की टीका मुँह से, एकदम बोलते जाएँ सब।

ये सब बोल जाते हैं, (आत्मा) कर्ता नहीं, अकर्ता है, ऐसा (मुख से) बोलते हैं लेकिन हृदय (तत्व से) स्पर्शित नहीं, ऐसा ख्याल आ गया हमको।

तो हमने गुरुदेव को कहा कि लगता तो है हमको, इसलिए आप परीक्षा करो। तो उन्होंने परीक्षा की (और) उनको भी ऐसा ही लगा।

पहले हमको बहुत महात्म्य आया क्योंकि दिगम्बर समाज का किसी का परिचय नहीं था ना। कोई-कोई बड़ा आवे तो उनका बहुत महात्म्य आए। ओहोहो! ये तो दिगंबर आए। लेकिन जब परीक्षा की तब खबर पड़ी।

गणेशप्रसाद जी वर्णी। वर्णी जी से पहले हम ही मिले, पाँचवी साल में यात्रा में, सम्मेदशिखरजी। यात्रा में गए तो वो लोग समझ गये कि ये दो बहनें (जो आईं) हैं, ये कानजीस्वामी की खास भक्त हैं। उन्हें खबर पड़ गई कि ये कानजीस्वामी की खास भक्त आयी हैं। इसलिए उन्होंने हमसे थोड़े प्रश्न पूछे, वर्णी जी ने। प्रश्न पूछने लगे तो हम जवाब देने लगे। थोड़े प्रश्न पूछे जो सबसे पूछ नहीं सकते थे वो ही हमसे पूछे, अगत्य के (मुख्य)।

"कानजीस्वामी (शास्त्र) समयसार ही क्यों वाँचते हैं? समयसार में जो है वो ग्रहण करते हैं, समयसार में से ही समझाते हैं, तो कोई कुछ (क्रिया) करता नहीं, किस कारण से समयसार वाँचते हैं? समयसार में और आदिपुराण में कोई अंतर नहीं है, तो समयसार क्यों (वाँचते हैं)? आदिपुराण वाँचे ना।"

"निमित्त में तो प्रत्यक्ष अंतर है", उनको हमने कहा। हमने थोड़े जबाव दिए, माथाकूट (तो हमको) करना नहीं था। इसलिए जवाब दिए (और) फिर आकर के गुरुदेव को कहा, गुरुदेव ने बुलाया हमको।

(गुरुदेव बोले) कि आपने वर्णीजी से क्या बात की? (हमने कहा कि) "साहब! उन्होंने हमसे प्रश्न पूछे? हमने नहीं पूछे। उन्होंने प्रश्न पूछे और हमने (जवाब) दिए।" बाद में फिर गुरुदेव का रूबरू परिचय हो

गया ना। विक्रम सम्वत् 2013(ई.स. 1957) की साल में (शिखरजी की) यात्रा गए ना। तो गुरुदेव का रूबरू परिचय हो गया।

श्रोता : आप लोगों ने क्या जबाव दिया? जवाब क्या दिया? वर्णीजी को जवाब (क्या दिया)?

पूज्य बेन : हमने? (वर्णीजी का प्रश्न था कि) आदिपुराण और समयसार में क्या अंतर, इसके ऊपर उन्होंने बहुत वजन दिया कि आदिपुराण और समयसार में क्या फेर (अंतर) है? (गुरुदेव) आदिपुराण नहीं वाँचते, समयसार क्यों वाँचते हैं?

(हमने कहा) इसमें अध्यात्म है, उसमें (आदिपुराण में) कथानुयोग है। (उनको) आत्मा की रुचि है। तो अध्यात्म की जिसको रुचि हो, वो समयसार वाँचें। कथानुयोग की रुचि हो, तो कथानुयोग वाँचें। लेकिन कानजीस्वामी को तो अध्यात्म की बहुत रुचि है, इसलिए समयसार वाँचते हैं।

(वर्णीजी का प्रश्न) समयसार से तो ज्ञान होता है ना।

(हमने कहा) ज्ञान तो ज्ञान में से होता है लेकिन समयसार तो निमित्त बनता है। ज्ञान तो ज्ञान में से होता है। समयसार ज्ञान दे नहीं देता। लेकिन अध्यात्म की रुचि है, इसलिए अध्यात्म की पुस्तक ही सामने आती है। रुचि हो, वो ही आवे। उनको अध्यात्म की रुचि है, इसलिए समयसार ही सामने आता है। जिसको कथा की रुचि हो, तो कथा सामने आए। ऐसा हमने कहा था।

हमने कहा, **"उनको (गुरुदेव को) अध्यात्म की बहुत रुचि है तो अध्यात्म का शास्त्र ही सामने आता है। ये तो निमित्त है। अपना सार उसमें से ग्रहण करते हैं।"**

समाज में उनकी प्रसिद्धि है, दिगंबर हैं, (इसलिए) हमने (उनसे) विनय से बात की। वर्णी जी समझ गए कि 'गंगाकांठे गंगादास जमुनाकांठे जमनादास', ऐसा नहीं था हममें। ये तो बहुत पक्के (भक्त) हैं। अपने पास आयें तो अपने जैसे बोलें (ऐसा नहीं)। ये कानजीस्वामी की बहुत पक्की भक्त हैं।

श्रोता : परम भक्त।

पूज्य बेन : तुम्हारे आगे तुम्हारी (बात) सही और उनके आगे (उनकी) बात सही, (ऐसा हममें नहीं था)। बड़े-बड़े (पुरुष) दिगंबरों में जिनका नाम हो ना, उनका गुरुदेव को बहुत महात्म्य आए क्योंकि किसी का परिचय नहीं ना। इनको सुनें, तो उन्होंने ऐसा कहा, उन्होंने ये शास्त्र कहा, उसने ऐसा किया, (ऐसे) बहुत महात्म्य आए।

कोई भला पुरुष (गुरुदेव) हैं ना, तो गुण-दृष्टि से देखें, गुण-दृष्टि से। गुण ग्रहण करें कि वो ऐसे-ऐसे हैं। बाद में, अंदर जाकर चर्चा करें तो खबर पड़ जाये। जो मुख्य लोग (जो) प्रसिद्ध हों, उनकी बात करें।

ब्र. रमाबेन : गाँव-गाँव में प्रतिष्ठा कर ली।

पूज्य बेन : (सोनगढ़ में) भगवान (की प्रतिष्ठा) के बाद कितनी प्रतिष्ठा, कितनी प्रतिष्ठाएँ हुई। ये बेचारा कहता था रामचंदजी, "देखो! यह तुम्हारा शकुन बताता है कि इतने पेड़ फाल-फालकर कुंडे के बाहर निकल जाते हैं और ऊँचे तो इतना ज़्यादा हैं।" (अर्थात् यह धर्म के फैलाव होने का संकेत है।)

जिनेन्द्र भगवान की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा होती है, इसलिए हम जाते हैं। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा अपने देश में तो होती है, लेकिन अभी विदेश (नैरोबी) में भी हो रही है, इसलिए इसका बहुत महात्म्य है।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : इसलिए ऐसे महात्म्यपूर्वक ऐसे भगवान की प्रतिष्ठा होती है, तो अपने को भी बहुत उल्लास है। तो उल्लासपूर्वक भगवान की यह प्रतिष्ठा देखने के लिए जाते हैं। प्रतिष्ठा करने वाला तो प्रतिष्ठा करेगा, परंतु हम तो दर्शन करने के लिए जाते हैं। प्रतिष्ठा का दर्शन करने के लिए।

श्रोता : हम भी करेंगे साथ में। साथ में करेंगे।

पूज्य बेन : करेंगे प्रतिष्ठा। हाँ! करना। प्रतिष्ठा भी करना और तन-मन-धन से खर्चना, सब करना। ऐसे दूर देश में भगवान पधारे, ऐसा पहला-पहला प्रसंग है।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : जिनेन्द्र-महिमा कोई अजब है। जिनेन्द्र की महिमा बहुत करते-करते जाना। गुरुदेव का प्रभाव अजब है। गुरुदेव का प्रभाव और जिनेन्द्र की महिमा। जिनेन्द्र-महिमा तो ऐसी (गजब) है कि जिनेन्द्र की महिमा करते-करते जिनेन्द्र हो जाये।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : समझ में आया ना? जिनेन्द्र की महिमा करते-करते वीतराग भाव प्रगट हो जाये, (तो) भविष्य में जिनेन्द्र हो जाये। इसलिए जिनेन्द्र की महिमा और उनके पंचकल्याणक उल्लासपूर्वक देखना है और उल्लासपूर्वक उनका दर्शन करना, इसके लिए हम जाते हैं वहाँ। तो जिनेन्द्र, जिनेन्द्र की भक्ति करते हुए रास्ते में जाना, भक्ति करते जाना, भाव-भक्ति करते-करते जाना, जिनेन्द्र की महिमा करते-करते (जाना)।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : बस! जिनेन्द्र की महिमा सर्वोत्कृष्ट है। आत्मा की महिमा, आत्मा की महिमा तो सर्वोत्कृष्ट (है), बराबर है। लेकिन आत्मा की माहिमा जब तक नहीं आ सके, तब तक जिनेन्द्र भगवान की महिमा करना। जिनेन्द्र की महिमा करते-करते आत्मा लायक हो जाता है। लायक हो जाता है, लायक। पात्र हो जाता है क्योंकि जिनेन्द्र का बहुमान आये, तो जिनेन्द्र भगवान का बहुमान आते-आते स्वयं के आत्मा का आदर, वीतराग के नज़दीक होता जाता है, एकदम। वीतराग के नज़दीक होता जाये, तो आत्मा की लायकात प्रगट हो। भविष्य में उसको आत्म-ज्ञान प्रगट करने का अवकाश है। जिनेन्द्र महिमा का ये फल है। बहुत महिमा कि, अहाहा! ऐसे जिनेन्द्र भगवान, ऐसी वीतरागदशा, ऐसी महिमा करते-करते स्वयं (महात्म्य) आये कि मुझे ये वीतराग दशा हो। धन्य हैं! धन्य प्रभु! लेकिन, मुझे यह दशा प्राप्त हो, ऐसी भावना करते-करते, रास्ते में भक्तिभाव करते-करते जाना।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : पंचकल्याणक में भी जिनेन्द्र भगवान की महिमा ही है।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : जिनेन्द्र भगवान जन्में तो ओहो! तो उन्होंने पूर्व में किस जाति की आराधना की कि जिसके प्रताप से उन्होंने यह तीर्थंकर पद प्राप्त किया है। ऐसे तीर्थंकर भगवान का जन्म हो तो एकदम जीव को उल्लास आ जाता है। वाह! धन्य प्रभु! आप तो इस तीनलोक के नाथ हो, तीनलोक के नाथ। प्रभु! आप तीनलोक के नाथ (हो)। आपका जन्म तो पूरी दुनिया भर में कल्याण का कारण है। दुनिया (ही) नहीं पर तीनलोक में, सभी जीवों को, नारकी, तिर्यंच, सभी को कल्याण का कारण है।

भगवान जन्में तब तीनों लोकों में उजाला हो जाये। नारकी को भी एक-दो मिनिट के लिए शांति हो जाती है। ऐसा आपका महाप्रताप है। ऐसे भगवान जब जन्में, तब खूब भक्ति-भाव करे। ओहो! ये तो जिनेन्द्र, उसमें भी सच्ची भावना हो। स्थापना-निक्षेप है, उनको भाव-निक्षेप से देखे कि, प्रभु आज ही जन्में हैं। प्रभु! आज जन्में हैं। ऐसे भाव से नाचे (कि) प्रभु का आज जन्म हुआ, प्रभु का आज जन्म हुआ।

ऐसे भाव से भक्ति करके कल्याणक (मानना), जैसे यह साक्षात् कल्याणक हो, ऐसे भावों से भगवान को निरखना। इसमें भी सबमें अपना आत्मा का कल्याण समाया हुआ है। जिनेन्द्र की महिमा हो ना, इसमें हृदय में, आत्मा, स्वयं का आत्मा, नज़दीक होता जाता है।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : जिनेन्द्र भगवान की महिमा करते-करते पात्र हो जाता है और वीतराग भाव के समीप होता जाता है। इसलिए आत्मा में भी शुभभाव बढ़ता है। है शुभभाव, लेकिन इस शुभभाव के अंतर्गत, अंदर में नज़दीक होता जाता, आत्मा में। जितनी शक्ति हो उतने प्रमाण में, उतने प्रमाण में भक्ति-भाव सब करो। शुद्धभाव प्रगट न हो तब तक तो ये इतनी ज़्यादा जिनेन्द्र महिमा तो करने योग्य है। जिनेन्द्र महिमा तो इस जगत में उत्कृष्ट में उत्कृष्ट है। हमको तो हृदय में जिनेन्द्र-महात्म्य बहुत आता है, ऐसा कि भगवान धन्य हैं। जिनेन्द्र महिमा तो कोई अद्‌भुत है। उनका, जीवों पर प्रताप ही कुछ अद्‌भुत है।

जिनेंद्र भगवान हैं तो कुदरत, कुदरत कैसी रचाई कि अकृत्रिम चैत्यालय, अकृत्रिम वीतराग बिंबों.....पुद्गल की भी ऐसी रचना हो गयी है कि तीर्थंकर सर्वोत्कृष्ट पुरुष हैं। तो पुद्गल (की) भी ऐसी रचना हुई

कि शाश्वत प्रतिमा जी, शाश्वत तीर्थंकर देव की मूर्ति। कितनी ज़्यादा महिमा है उसमें कि पुद्गल भी इस तरह से रच गया।

तीर्थंकर की महिमा जितनी बने उतनी करनी (चाहिए)। आहार-दान के समय, दीक्षा कल्याणक के समय, सभी समय महिमापूर्वक भगवान को देखना। जन्म कल्याणक के समय तो बहुत ही भाव आते हैं। गर्भ कल्याणक के समय, भगवान गर्भ में आयें (तो) उसमें, वो शास्त्र में एक आता है, जिनसहस्त्रनाम की पुस्तक है। आशाधर पंडित जी ने किया (लिखी)। उसमें यह लिखा है कि भगवान माता के गर्भ में आयें, तब माता के पेट में सिंहासन हो जाता है, सिंहासन। सिंहासन बन जाता है और कमल खिल जाता है, कमल। कमल के ऊपर सिंहासन होता है और उसके ऊपर भगवान (विराजकर) वृद्धि को प्राप्त होते हैं। सिंहासन के ऊपर भगवान की वृद्धि होती है और भगवान काउस्सग ध्यान (मुद्रा) में उस सिंहासन के ऊपर विराजते हैं। ये सब देव और इंद्रों के द्वारा इस तरह की रचना होती है।

श्रोता : पेट के अंदर सिंहासन?

पूज्य बेन : हाँ! अंदर। अंदर। इंद्राणी अंदर पेट साफ़ करती है और फिर इस तरह से कमल, सिंहासन और उसके ऊपर भगवान बड़े होते जाते हैं, तो काउस्सग ध्यान (मुद्रा) में। माँ के शरीर में कोई विकृति के बिना, ऐसे के ऐसे वृद्धि को प्राप्त होते हैं। कितनी महिमा कहलाती है! कितनी महिमा। ऐसी महिमा वाले हैं तीर्थंकर देव हैं।

ये (पढ़ने में) आया, उस दिन तो हम (को लगा) कि वाह! धन्य अवतार है!

जगत से जुदा पुरुष हैं एकदम। पूर्व में ऐसी आराधना की थी इसलिए उसका फल मिल (ही) जाए, प्राप्त हो (ही) जाए।

महावीर भगवान दो वर्ष के थे। तब संजय और (विजय) दो मुनि आये। उन मुनिराजों को कोई शंका हुई। तो कहें कि, कहाँ जाएँ हम? तो कहें, चलो! हम महावीर भगवान के पास जायें। (महावीर भगवान) थे तो दो वर्ष के। (दोनों मुनिराज) बस वहाँ मात्र खड़े रहे, दर्शन किए, तो शंका टल गयी। कितना महात्म्य कितना है उनका कि मात्र दर्शन करने से मुनिराज की शंका टल गयी। ऐसे महिमावाले हैं। आत्मा महान महिमावाला है, आत्मा। इस आत्मा की महिमा से पुण्य में भी महिमा आ जाती है, तीर्थंकर की।

सभी कल्याणक भगवान की महिमापूर्वक, सभी कल्याणक देखना और उसमें तन-मन-धन से आनंद का उत्सव करना। इतना ज़्यादा दूर जाते हो, विदेश (नैरोबी) में, भगवान के कल्याणक के लिए, तो खूब भक्ति-भाव करना, जितना बने उतना कि जिनेन्द्र महिमा बढ़ती जाये, इसलिए हम आए हैं। दूसरा कोई प्रयोजन नहीं, कोई हेतु नहीं।

खूब भक्ति, हृदय से जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करना। तन-मन और धन से भी जितना खर्चा आये, उतना खर्च करना कि ऐसे विदेश में भगवान पधारे। इसलिए पहला-पहला एक, इतिहास में पहला ही प्रसंग है। गुरुदेव तो इस उम्र में तो कहीं पधारें नहीं, लेकिन अभी विदेश में भगवान पहले-पहले हैं, इसलिए जाते हैं।

श्रोता : बस एक कमी रहेगी वहाँ। एक कमी रहेगी।

पूज्य बेन :क्या?

श्रोता : दोनों बहनों की।

पूज्य बेन : बात सच्ची है। आयें, तो सबको रंग आए, उमंग आवे, परन्तु शरीर की स्थिति है, इसलिए जा सकते नहीं। प्लेन में बैठे जाता नहीं। अब शरीर से जा सकते नहीं। बहिनश्री से और मुझसे भी जाते बनता नहीं। जाने का विकल्प ही नहीं आता। जहाँ तक शरीर की (स्थिति थी, तब तक) पंचकल्याणक के प्रसंग जहाँ-जहाँ होते थे, तब तक जितना शरीर से खिंच सके उतना खींच-खींचकर के गए। अब तो खिंचता ही नहीं। बहुत शरीर तो अशक्त हो गया है। हमेशा शरीर एक जैसा रहता नहीं।

गुरुदेव के प्रताप से बहुत कल्याणक देखे और कितने कार्य भी अपने हाथों से किये, गुरुदेव के प्रताप से। बहुत कल्याणक! कितने कल्याणक हुए! कितनी वेदी प्रतिष्ठाएँ हुईं! सब में हमारी हाज़िरी थी, सभी में थी।

श्रोता : बेन आप तो हमारे से ज़्यादा विशेष ध्याते हो। आप तो यहाँ बैठे ही खूब भाव ध्याते हो। बराबर!

पूज्य बेन : भाव तो ऐसा है कि भगवान का कल्याणक होता है। आज भगवान का दीक्षा कल्याणक है। भगवान का जन्म हुआ। उसका कार्यक्रम आ जायेगा हमारे सामने। सब देख-देखकर याद करेंगे और उल्लास करेंगे।

ये बात सच्ची है कि भाव काम करे। भाव में शरीर आड़े नहीं आता। भाव तो चैतन्य में है। शरीर तो जड़ है। इसलिए भाव तो जितने भगवान के ऊपर उछलें, उतने उछल सकते हैं। वो तो स्वाधीन हैं। शरीर कैसा भी हो लेकिन भाव तो कहीं अटकते नहीं। भाव तो एकदम उछल जाते हैं, ऐसे। इसलिए भाव तो कर सकते हैं, स्वयं। शरीर और आत्मा दो अलग चीज़ हैं। इसलिए शरीर अशक्त हो लेकिन भाव तो

कहाँ अटकता है? भाव को अटकाने वाला जगत में कोई समर्थ ही नहीं। भाव अर्थात् इस चैतन्य के भाव। शरीर तो शरीर में है, बेचारा ये क्या करे?

भगवान की महिमा तो अद्‌भुत है। सेवक तो फूल और फूल का पत्ता (भगवान के सामने)। उसमें भी भाव से भगवान को वधावना (बहुमान करना) है और ये दस (भगवान के लिए) अंग-लुंछना है। श्रीचंद को कहना कि ये भगवान के पंचकल्याणक में इस्तेमाल करे और फिर बाद में जो व्यक्ति भगवान का अभिषेक करने वाला हो, उसको देना। उसकी (पुजारी की) भलामण करे।

श्रोता : बहुत अच्छा!

श्रोता : जयपुर की रथ-यात्रा के समय?

पूज्य बेन : हाँ।

श्रोता : दोनों बहनें।

पूज्य बेन : हाँ**!** जयपुर में रथ-यात्रा निकली थी। जयपुर में गुरुदेव बैठे थे रथ में और रथ-यात्रा भी इतनी बड़ी रथ-यात्रा निकली थी। कितनी बड़ी रथ-यात्रा**!** रथ तो बड़ा**,** लेकिन हाथी कितने किये थे।

श्रोता : 21

पूज्य बेन : 21 हाथी। पहले सब हाथी**,** हाथी**,** हाथी चलते जायें। पीछे रथ-यात्रा**,** उसमें गुरुदेव बैठे थे। इतना सुन्दर लगे**,** इतना अच्छा**!**

श्रोता : तीर्थंकर जैसा लगता था।

पूज्य बेन : बहुत अच्छा! मुझसे तो रहा नहीं जाता था, मैं तो कूदने लगी, नीचे से। हाथी के आगे कूदकर नाची।

श्रोता : (ताली की गड़गड़ाहट, प्रसन्नता)

पूज्य बेन : इतना (तो) मुझे (भाव) आ गया। कितना अच्छा लगता है! कितना अच्छा लगता है! गुरुदेव यहाँ आकर कहते थे कि शांताबेन तो नाचती थी। कूदना हो गया मुझसे। नीचे से ऊपर तक इस तरह से गाकर..

इतना, ऐसा आनंद आ गया। वाह! ऐसी अच्छी रथ-यात्रा। ऐसे भगवान और गुरुदेव बैठे थे। इस जैन-शासन का महात्म्य कुछ अद्‌भुत है। लोग तो चारों तरफ देखने को खड़े थे। पूरी छत ठसाठस भरी हुई। पूरा रास्ता भरा हुआ। कितने लोग!

जिनेन्द्र भगवान की रथ-यात्रा निकले तो ऐसा लगे कि ओहो! भगवान की रथ-यात्रा के दर्शन करें, तो आनंद आवे कि भगवान की रथ-यात्रा निकली। आज भगवान रथ में निकले, आज भगवान निकले, तो उनके रथ को देखकर भी प्रमोद आवे, प्रेम आवे। ऐसी जिनेन्द्र महिमा ही अपार है, जगत में। इंद्रों (को) भी देखकर के, गुरुदेव कहते थे कि इन्द्र भी नाच उठते हैं। पैर में घुंघरू बाँधकर के नाच उठते हैं कि, "अहाहा! भगवान जिनेन्द्र आपका स्वरुप जुदा है। मैं ऐसी भक्ति भी कर सकता नहीं", इतना उनको बहुमान, इंद्र को भी आता है। कि, "नाथ! आपकी भक्ति जितनी करूँ, उतनी कम है।"

समकिती इंद्र होता है, इंद्र की ऋद्धि भी इतनी दिखती है, तो इतनी ऋद्धि देखकर के भी उसको बहुमान आता नहीं। बहुमान तो हमारे जिनेन्द्र भगवान का है। इंद्र को भी ऐसी महिमा आती है। ऐसी भक्ति करे, ये इंद्र जैसी भक्ति जब हो, तब आनंद आये। इंद्र के जैसी भक्ति करूँगी। अभी भक्ति करते हैं तो ऐसा लगता है कि भक्ति पूरी होती नहीं। नाथ! हम भक्ति कर सकते नहीं। अभी भक्ति तो खूब आपके प्रति मुझे उछलती है। ऐसी भावना भाते हैं।

भगवान की रथ-यात्रा निकले यहाँ छोटे गाँव में, तो यहाँ रथ-यात्रा में भगवान को रथ में देखकर ऐसा लगे कि ये जिनेन्द्र रथ में निकले। ये जिनेन्द्र भगवान की रथ-यात्रा निकली। ये तो त्रिलोकीनाथ की रथ-यात्रा निकली। ऐसा रंग आ जाता है कि भगवान रथ-यात्रा में निकले।

श्रोता : तो-तो आत्मा प्राप्त करना सरल है। आत्मा झट प्राप्त हो जाये।

पूज्य बेन : हाँ! ये तो सरल है।

जिस-तिस तरह से, किसी भी तरह से आत्मा नज़दीक हो, ऐसा उपाय करना। देव के महात्म्य से, शास्त्र के महात्म्य से, गुरु के महात्म्य से, जिस किसी तरह से आत्मा की महिमा आए, ऐसा कार्य करना। किसी को कोई महिमा आए किसी को कोई महिमा आए। महिमा आना चाहिए। गुण हैं ना सभी, भगवान के सब गुण हैं। गुणों की महिमा आते-आते आत्मा की महिमा आती है। स्वयं की महिमा आए तो नज़दीक हो जाये, आत्मा के। ज़रूर नज़दीक हो। उसमें शंका का कोई स्थान नहीं।

श्रोता : बराबर! ऐसा उल्लास आना चाहिए। ऐसा उल्लास आना चाहिए। आप कहते हो ऐसा ही उल्लास और रंग आए, तो ज़रूर प्राप्त हो।

पूज्य बेन : हाँ! होता है। होता है।

विचार करने वाले जीव हैं, सब रुचि वाले हैं। जिस तरह से रुचि उठे, जिनेन्द्रदेव से तो उस तरह से, शास्त्र से उठे तो उस तरह, आत्मा के विचार से, जैसे बने वैसे ये रुचि और भक्ति-भाव से आगे बढ़ने जैसा है। इसमें आत्मा का कल्याण है। ये करने जैसा है।

* * *

Track Number 72-B

ब्रह्मचर्य के, माने शील के सात भेद। शक्ति अनुसार तप-त्याग ज़रूर करना चाहिए। शक्ति को छुपाना नहीं। पूज्य गुरुदेव की महिमा (एवं) उनका वात्सल्य भाव। गुरुदेव विरोधी को भी वात्सल्यभाव से बुलाएँ कि विरोधी भी साधर्मी बन जाये।

श्रोता : और सात प्रकार के शील हैं।

पूज्य बेन : शील। सात प्रकार के शील।

श्रोता : तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत।

पूज्य बेन : (जो) इन व्रत में दोष नहीं लगाए, वो जीव तीर्थंकर नाम गोत्र को बाँधता है। शील नाम ब्रह्मचर्य अथवा शील नाम व्रत। आचरण, शील कहलाता है। शील अर्थात् स्वभाव, ऐसा भी कहलाता है।

श्रोता : व्रत की अपेक्षा से देखो तो सदा संतोष व्रत हो, इसमें शील कहलाता है।

पूज्य बेन **:** बराबर!

श्रोता : और तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, उसको भी सप्त शील कहने में आता है।

पूज्य बेन : ज्ञान उपयोग कि निरंतर ज्ञान उपयोग**,** शास्त्र का उपयोग निरंतर रहा करे। तो आत्मा का उपयोग**,** आत्मा का।

श्रोता : आत्मा का ही उपयोग है क्योंकि ज्ञान किसका है**?** कि आत्मा का है। तो बार-बार स्वभाव में ही ज्ञान की वृत्ति जाये**....**

पूज्य बेन : इसमें उपयोग निरंतर लगाए, इसका नाम अभीक्ष्ण ज्ञान उपयोग है। ये अभीक्ष्ण ज्ञान उपयोग से तीर्थंकर नाम गोत्र बंधता है। गुरुदेव को बहुत लागू पड़ता है, अभीक्ष्ण ज्ञान उपयोग।

शक्ति हो शरीर में, तो त्याग करना भूलना नहीं। प्रमाद के वश होकर अथवा लोलुपता के वश होकर, जीभ की लोलुपता के वश, त्याग करने से चूकना नहीं। लोलुपता में चढ़ना नहीं, परन्तु त्याग में चढ़ना। ये यहाँ कहते हैं कि तीर्थंकर भी त्याग करते थे। सभी जीवों को त्याग करने जैसा है, शक्ति प्रमाण से। शक्ति हो, उसमें छुपाना नहीं कि जितनी शरीर में त्याग करने की शक्ति है, उतनी शक्ति को छुपाना नहीं। इसका नाम त्याग है और त्याग करना श्रावक का धर्म है। त्याग तो पहली भूमिका भी है। त्याग में पूरी आराधना भी आती है, ऐसा।

ये त्याग का दिन, तप का दिवस है। (साधु पर) उपसर्ग आये, अतः उसको दूर करना।

श्रोता : (साधु को) कोई थकान हो, कोई बीमारी हो.....

पूज्य बेन : तो उनकी सेवा करे। उनकी सेवा करे साधु की। तथा कोई आये उपसर्ग, तो उसको दूर करे। ये भी तीर्थंकर नाम गोत्र को बाँधने का कारण है।

बहुश्रुत प्रवचन, उसकी भक्ति, उसके प्रति भक्ति, वो भी तीर्थंकर नाम गोत्र बाँधने का कारण है। तीर्थंकर नाम गोत्र (को) बाँधे कि ऐसे भाव करूँ तो मुझे तीर्थंकर (गोत्र) बंधेगा, ऐसी जिसको इच्छा न हो। ऐसी इच्छा हो, (तो) उसको तीर्थंकर (गोत्र) नहीं बंधता। लेकिन ये सहज भाव हो कि ऐसी-ऐसी जाति की अरिहंत की भक्ति, आचार्य की भक्ति, बहुश्रुत की भक्ति, सहज-सहज हृदय में से उल्लसित होती

हो, तो उस जीव को तीर्थंकर नाम गोत्र बंधता है। ऐसा इसका अर्थ है कि तीर्थंकर नाम गोत्र बाँधने के लिए कुछ करते नहीं, लेकिन सहजपने ऐसा भाव आ जाता है।

ऐसा ही रोज़ करें, हर रोज़ हमेशा। जितना टाइम हो, तो उतना सामायिक पाठ और निवृत्ति लेकर के सामायिक का व्रत लें। ऐसे के ऐसे सामायिक में बैठ जायें, ऐसा नहीं। सामायिक का व्रत लें (और) नियम लेकर के श्रावक बैठें। एक घंटा, पौन घंटा, आधा घंटा जितना टाइम हो उतना। और फिर भगवान की पूजा हमेशा करें, ये श्रावक का कर्तव्य है। छह आवश्यक।

श्रोता : देव-पूजा, गुरु उपास्ति।

पूज्य बेन : उपासना, गुरु की सेवा करे। गुरु की सेवा करने का प्रसंग हो, तो गुरु की श्रावक सेवा करें, हमेशा। जिस टाइम हो, उस टाइम।

श्रोता : स्वाध्याय।

पूज्य बेन : शास्त्र-वाँचन अर्थात् व्याख्यान सुन लिया, तो स्वाध्याय हो गया, ऐसा नहीं। निजी स्वाध्याय। स्वयं अकेले बैठकर के शास्त्र हाथ में लेकर के, पौन घंटा कि तीस मिनिट, कम से कम, इतना स्वाध्याय तो श्रावक निरंतर करे। निरंतर अर्थात् रोज़, हर रोज़, हमेशा। लेकिन जितना टाइम हो उतना करे, ये श्रावक का धर्म है।

(जैसा समाज था) उसमें से पूरा खास सच्चा दिगंबर मार्ग (गुरुदेव ने) प्रशस्त किया और लाखों जीवों को इस मार्ग पर दृढ़पने स्थापित किया।

श्रोता : दिगम्बरों में भी शिथिलता आ गयी थी। बहुत वर्षों से वो शिथिलता में थे ना। उनको भी कितना लाभ मिला?

पूज्य बेन : दिगंबर धर्म, वह ही सच्चा धर्म है, ऐसी मार्ग की प्रभावना गुरुदेव ने जबरदस्तपने की। बहुत अच्छा! और स्पष्ट मार्ग, (उसमें) ज़रा भी मल या मैल, कुछ नहीं। गुरुदेव ने जबरदस्त (कार्य किया)। वो तो यहीं ही (उनको) तीर्थंकर गोत्र बंध जाता। इतना वात्सल्य कि कोई भी विरोधी हो गुरुदेव का, गुरुदेव की, इतनी उनकी निन्दा करता हो और वो सामने आकर के खड़ा रहे और हाथ जोड़े तो, उसके ऊपर इतना वात्सल्य (गुरुदेव को आए); तो वो कहे कि, "स्वामी जी! मैंने तो आपकी निंदा की है।" (तो गुरुदेव कहें) "अरे भाई! कोई निंदा करता नहीं। ये बात तू भूल जा। मेरे मन में कुछ भी है नहीं।" इतना वात्सल्यभाव, "आओ! आओ! आओ! आओ! यहाँ बैठो, यहाँ बैठो।" इतना वात्सल्य!

श्रोता : बराबर! विरोधी को साधर्मी बना लेते थे। विरोधी को साधर्मी बना लेते थे।

पूज्य बेन : विरोधी आये तो उसको इतना प्रेम बतायें कि वो तो पानी-पानी हो जाये। उसको ऐसा लगे कि अरे! ये कैसे पुरुष हैं कि अभी तक मैंने इनकी निंदा की। मैंने जाहिर किया कि मैंने आपकी निंदा-गृहा की, तो मेरे प्रति एक रोम बराबर भी इनको क्रोध नहीं, बल्कि कितना प्रेम बताते हैं। कैसे महापुरुष हैं! इससे महापुरुष का लक्षण जाहिर होता है कि ऐसा साधर्मी वात्सल्य (गुरुदेव का था)।

श्रोता : महापुरुष ये ही अपने को सिखाते हैं कि आपका कोई विरोध करे, तो अपने को सामने विरोध का जवाब विरोध से नहीं देना। उनका ये गुण, ये गुण लेना।

पूज्य बेन : हाँ! ये गुरु(देव) के हम शिष्य हैं सब, और गुरुदेव का उपदेश सुना है, तो अपना किसी ने विरोध किया हो, तो उसके प्रति

क्रोध नहीं रखना और वो विरोधी आये, तो उसको प्रेम से बुलाओ कि, "आओ भाई! आओ! तुम भी आत्मा हो।" गुरुदेव कहते थे, "(भाई!) तू आत्मा है। तू अनंत गुणस्वरूपी आत्मा है। आओ! आओ! आओ! बैठो।"

श्रोता : पर्याय में भूल सबसे हो जाती है।

पूज्य बेन : हाँ! पर्याय की भूल टल जाये तो कुछ नहीं। इस तरह से गुरुदेव ने जैसा वात्सल्यभाव बताया, वैसा गुरुदेव के भक्तों को भी वैसा (ही) वात्सल्यभाव रखना योग्य है। ऐसा वात्सल्यभाव करने योग्य है।

* * *

Track Number 73

पूज्य कहान गुरुदेव जैसे युगपुरुष, महापुरुष कभी कोई दिखते नहीं। न हुआ है (और) न भविष्य में होगा।

महात्म्य तो इतना ज़्यादा अंदर (में) आता है कि ऐसे पुरुष, ऐसे पुरुष होना ही मुश्किल है। ऐसे शक्तिवाले, ऐसे प्रभाववाले, ऐसी ज्ञान की तीक्ष्णतावाले, ऐसे पुरुष, अभी तो इस ज़िन्दगी में तो कहीं मिलेंगे नहीं। भविष्य में कोई हो तो भगवान जाने। नहीं होगा, ऐसा अपने से कहा जा सकता नहीं। लेकिन बहुत शक्ति, बहुत शक्ति, (गुरुदेव में) ज्ञान की शक्ति बहुत। एकदम अर्थ सुशास्त्र पढ़ें और उसका अर्थ निकाल दें, अंदर से। इसमें ऐसा कहना है और वैसा ही हो उसका अर्थ, (बिलकुल) वैसा ही कहें।

ब्र. रमाबेन : राजकोट से आये ना (तो) कमर में दर्द हो गया था। तो कहते थे कि (बेन) क्यों नहीं आते (हैं)? कुर्सी के ऊपर बैठो लेकिन आओ, ऐसा।

पूज्य बेन : गुरुदेव, राजकोट से आये ना। तो मैं अहमदाबाद से एक दिन, दो दिन बाद आयी। गुरुदेव आये, उसके दूसरे दिन आयी। तो बहिन श्री और मैं दर्शन करने गए, तो फिर गुरुदेव कहने लगे कि क्या हुआ? तो कहा, साहब! कमर में बहुत दर्द हो गया है। मैंने कहा कमर के दर्द वाला नीचे बैठ न सके, तो मैं नहीं बैठ पाती।

फिर हमने नवरंगभाई के बेटे का दृष्टांत दिया। फिर मैं एक-दो दिन...व्याख्यान में नीचे तो मुझसे बैठा जा सकता नहीं था, तो मैं व्याख्यान में नहीं गयी। तो गुरुदेव ने कहलवाया कि शांताबेन से नीचे

बैठते नहीं बन रहा इसलिए व्याख्यान में नहीं आती हैं। तो कहें कि, कुर्सी के ऊपर बैठने में क्या परेशानी है? कुर्सी के ऊपर बैठकर के सुनना, ऐसी गुरुदेव ने आज्ञा की। फिर मैंने कहा कि मुझे तो सुनना है। इसलिए मैं तुरंत दूसरे दिन सुबह आयी और व्याख्यान में कुर्सी के ऊपर बैठ गयी। पंद्रह दिन बैठी फिर मुझे ठीक लगा, फिर नीचे बैठ गयी। थोड़े दिन स्वाध्याय मंदिर में बैठी, थोड़े दिन परमागम मंदिर में। फिर मुझे ऐसा लगा कि नीचे बैठने में कोई परेशानी नहीं, लेकिन मुझे शर्म बहुत आती थी। शर्म बहुत आवे, कुर्सी ऊपर बैठने में। ऐसे नीचे माथा रखकर के सुनूँ। (क्योंकि) ये भाई लोग सामने बैठे हों, तो शर्म लगे। मुझे तो यह कहना है कि उनको (गुरुदेव को) करुणा कितनी थी। बहुत करुणा! बहुत करुणा! करुणा के तो अवतार थे, सच्ची करुणा के।

राग-द्वेष-कषाय को मंद करे, आत्मार्थ की तीव्रता करे और भव का अंत पाकर के मुक्ति का मार्ग, ऐसे नज़र से दिखाई देता हो, नाथ! वो (ही) तेरा सच्चा सेवक और उस सेवक ने ही वास्तव में भव का अंत किया है।

ऐसी, गुरुदेव की तबियत ऐसी नरम, सबकी नरम हो गयी थी। बहिनश्री और सबकी नरम (हो गयी)। ऐसी स्थिति में तो जीवों को वैराग्य करने जैसा है। वैराग्य करें, राग-द्वेष मंद करें, आत्मार्थ की उग्रता करें और आत्मार्थ का लाभ लें। (आत्मार्थ) लेने जैसा है कि ऐसा प्रसंग, ये सब इतने वर्ष तक तो रहा, लेकिन अब अपने को इसमें से जैसे बने वैसे मंद कषाय हो, जैसे बने वैसे आत्मार्थ की उग्रता करके और आत्मार्थपना प्राप्त करूँ, ऐसा इन दृश्यों में से वैरागी जीवों को सेवक जीवों को, भक्त जीवों को, ऐसी आत्मार्थ की उग्रता करने जैसी है कि इसमें आत्मार्थ की उग्रता करके मुझे मेरा कल्याण करना है।

ये महापुरुष (यहाँ) विराजते थे, सब यश तो दिखाई देता है, जैसा है ऐसा। इसलिए सभी आत्मार्थी जीवों को आत्मार्थता की उग्रता करना। वैराग्यभाव, पर से उदासीनता, पर के साथ कोई लाभ-वाभ नहीं, अकेला निष्पृह होकर के मात्र आत्मार्थी होकर के, आत्मार्थता की विशेषता प्राप्त करना, ऐसा ये सब योग, अभी ऐसा है। इसलिए आत्मार्थी जीवों को, आत्मार्थता की बहुत, खूब तीव्रता करना, कषाय को एकदम मंद कर देना। कषाय तो कहीं काम आने वाली नहीं। कषाय तो मात्र आत्मा को नुकसान करती है। आत्मार्थता बढ़ जाये, वीतरागता, वीतरागदशा प्राप्त हो, ये आत्मा को श्रेयभूत और कल्याणभूत है।

मेरे ह्रदय (में) एक वीतरागता बढ़े, उस अनुसार अभी परिणमन होता है। उसकी बेल (रूप), ऐसा, ऐसा अभी परिणमन हुआ करे, वीतरागता-वीतराग-वीतराग-वीतराग, वीतराग, वीतराग स्वरुप। बस यह दिन रात अपना वीतराग परिणमन वृद्धि की तरफ प्राप्त हो, इसके लिए प्रयत्न है। निष्पृहभाव से, जगत की कोई अपेक्षा नहीं। एक आत्मा की ही अपेक्षा से, एक वीतरागता की आराधना करने का प्रसंग अभी है और ये जो जुड़े हैं, वे सब अच्छे शकुन ही जुड़े हैं कि जिससे स्वयं का (ही) लाभ का कारण है।

अपने ह्रदय में एक वीतरागभाव का आदर और वीतरागभाव का परिणमन हो, इसके अलावा दूसरे किसी भाव का आदर नहीं।

एक ही भाव का आदर है कि अपनी आत्मा में वीतरागता की वृद्धि हो, वीतरागता का वास हो और जगत से निष्पृह हो, एक ही भावना है, एक ही ध्येय है, एक ही पुरुषार्थ है, एक ही रटन है। ऐसा आत्मार्थी जीव हो, तो उनका समागम करना और आत्मार्थी जीवों के साथ बात करना। बाकी किसी और दूसरे राग-द्वेष (वाले) जीवों के साथ, क्या

प्रयोजन है? राग-द्वेष बढ़े, इसके साथ (तो अपना) कोई प्रयोजन नहीं। वीतरागता बढ़े, ऐसे (आत्मार्थी) जीवों के साथ ही प्रयोजन है।

करना तो यही है। दूसरा कुछ नहीं (करना), लेकिन अभी तो ऐसा सब योग दिखता है कि एकदम जीव को वैराग्य आने वाला है।

स्नान करते-करते विचार आया तो लिखा उस दिन, उसका अब परिणमन अभी आया है। अच्छे शकुन में लिखा है। ये लाइन मैंने (पूज्य शांताबेन ने) लिखी।

प्रभुजी! बीजु म्हारे जोवानुं नहीं काम। तारा पगले-पगले म्हारे चालवुं।

(अर्थ :- प्रभुजी! दूसरा मुझे नहीं कोई काम। आपके ही कदमों पर मुझे चलना है)

ये सब हम दोनों बहनों ने जोड़ा (मिलकर लिखा) है ना। अर्थात् दो-तीन लाइन तो ख़ास हैं। तब तो भक्ति का बहुत भाव था ना, तो भक्तिपूर्वक जोड़ते थे। तो उसमें ध्येय ये था, तो ये ध्येय आखिरी में आकर के खड़ा रहा। जो ध्येय था, वह आ गया।

श्रोता : धर्मात्मा को ऐसा ही (भाव) होवे। धर्मात्मा हो, तो उनको तो ऐसा ही उद्देश्य हो ना!

पूज्य बेन : जो ध्येय किया हो (वह) उसके सामने आकर के रह जाये। जो ध्येय पहले किया हो, वास्तव में वह ध्येय आकर खड़ा रहे।

श्रोता : ये ही सच्चा ध्येय कहलाता है? वही सच्चा ध्येय कहलाता है?

पूज्य बेन : सच्चा ध्येय यही। वास्तविक ध्येय आकर के ऐसा....

श्रोता : पहले वाँचन बहुत करते थे ना **(तो)** ऐसी ही सीख देते थे।

पूज्य बेन : मुझे रंग आया, जो जोड़ा था उसका अभी फलरूप परिणमन होता है। ये अच्छे शकुन के लिए जोड़ा है। अपने हृदय में तो एक वीतरागभाव का ही घोलन है। वीतरागभाव का आदर है। वीतरागभाव का ही ध्येय है। दूसरा सबके साथ में निष्पृहता और उदासीनता वर्तती है।

श्रोता : अपना जो कुछ हो, वो सब वृद्धिंगत ही होता जाये। छुपा हुआ कैसे रहे? बढ़ता ही जाये, बढ़ता ही जाए।

पूज्य बेन : भगवान ज्ञान में देख रहे हैं कि क्या होता है, उनके आत्मा में। केवलज्ञानी के ज्ञान में आ गया है सब। केवलज्ञान में सब देख रहे हैं। लेकिन सभी जीवों को ऐसा, अंत-अंत में तो करने जैसा यही है, जानें कि वीतरागभाव की वृद्धि, आराधना, निष्पृहता, कषाय मंदता, यही करने जैसा है। अभी तो बहुत लोगों की ज़िन्दगी का बहुत काल चला गया, थोड़ा काल बाकी है। तो थोड़े काल में सर्व आराधना कर लेना चाहिए।

श्रोता : आपका ऐसा आशीर्वाद फले बस, यही इच्छते हैं अब।

पूज्य बेन : ऐसी भावना है कि इस संसार से जल्दी पार उतर जायें। ये संसार असार ही है, इतना संसार कष्टमयी है। ऐसे संसार में क्षणमात्र भी रहने योग्य नहीं।

उसकी माँ ऐसा गाती थी ना। हम तो कितनी बार गाते थे, मन में, मन में। मोरबी वाली गाती थी यात्रा में।

आ रे! संसार असार।

आ रे! संसार में म्हारे नहीं जाऊँ, नहीं जाऊँ, नहीं जाऊँ रे।

वो बाई एक लाइन बोलती थी (मोरबीवाली)। फिर हमने (उसमें) अपना घर का जोड़ा।

कि मारे थावुं छे सिद्ध स्वरुप।

ए रे स्वरुपे मारे झट थाऊँ, झट थाऊँ, झट थाऊँ रे।

मारे थावुं छे सिद्ध स्वरुप। ए रे स्वरुपे मारे झट थाऊँ, झट प्रणमुं, झट प्रणमुं रे।

अभी तो यही गाया करती हूँ, मन में, मन में।

रस नहीं लगे, कहीं जुड़ने जैसा नहीं। चैतन्य आत्मा में ही जुड़ने जैसा है। इसमें ही आनंद और शांति है। चैतन्य आत्मा में उपयोग (को लगा) दो, तो आनंद-आनंद, शांति-शांति। दूसरा कहीं भी शांति नहीं। कहीं और उपयोग लगाओ तो आकुलता-आकुलता और दुख है। ऐसे कहीं देखना ही अच्छा लगता नहीं। इसके सामने देखने में आनंद आता है। दूसरा क्या लेना है? उसमें कहीं शांति नहीं, आकुलता और दुःख ही है। उसमें रस ही नहीं, कहीं देखने का। इस आत्मा को, वीतरागदशा को देखने में रस है। अल्प रह जाएँ, अभी कहीं वीतराग पूरे नहीं हुए, तब तक अल्प राग-द्वेष हो तो ज़रूर, लेकिन उसकी उपेक्षा बहुत रहती है। आत्मा की अपेक्षा (रहती है)।

खाने-पीने में कहीं रस नहीं आता कि क्या खाया और क्या पीया? पेट भरने के लिए खाते हैं बस। कहीं रस ही नहीं आता। एक आत्मा के स्वरुप में रस (बस), लेकिन इस शरीर को चलाने के लिए इसका पोषण करना पड़ता है।

उठी तो ऐसा लगा कि कैसे मुनिवर, कैसे उठकर के (एकदम) ध्यान में बैठ जाते हैं। कैसे वन-जंगल में मुनिवर लीन हो जाते हैं। आत्मा के स्वरुप में लीन हो जाते हैं। हम उठते हैं और ये सब प्रवृत्ति शरीर की

करनी पड़ती है। ऐसा धन्य अवसर आये, वह दिन धन्य है। ऐसा अवसर चाहिए अपने को तो (जब मुनि बनूँ)।

श्रोता : आज हमको बहुत शाश्वत सीख मिली।

पूज्य बेन : मुझे तो सभी साधर्मियों के प्रति ऐसा लगता है कि सब जीव अब कषाय राग-द्वेष को मंद करके, आत्मार्थता को बढ़ा लें। ये सब संयोग (समागम) तो एकदम ढीले हो गए हैं, इसलिए इसको देखकर के वैराग्य प्राप्त करने जैसा है। मुझे तो सभी आत्माओं (को देखने) से ऐसा होता (लगता) है, सभी से कह सकती नहीं। लेकिन ऐसा कि वैराग्य प्राप्त करने जैसा है अर्थात् कि आत्मार्थता बढ़ाने जैसा है। ये संयोग तो सब ऐसे ही दिखते हैं और किसके ऊपर राग और किसके ऊपर द्वेष? आत्मा की वीतरागता बस बढ़ाना है। ये अपने साथ (रहेगा)।

कल सुबह गुरुदेव को सोते हुए देखा, तो ऐसा दिल में लगता था कि गुरुदेव की ऐसी स्थिति में हम दर्शन करते हैं, ऐसा (दुख हुआ)।

मैं मुंबई गयी तो खबर पड़ गयी गुरुदेव को कि बेन आयीं हैं। तो मैं तो बाहर खड़ी थी। तो किसी भाई ने कहा कि साहेब! शांताबेन आयी हैं सोनगढ़ से। (गुरुदेव ने कहा कि) बेन? यहाँ आयीं हैं? शांताबेन यहाँ आयीं हैं? कि हाँ साहेब! यहाँ आयीं हैं। लेकिन अभी आपके पास (अस्पताल के समय के कारण) आ नहीं साकती (हैं)। इतना ज़्यादा उनको प्रमोद हुआ कि अपने साधर्मी यहाँ आये। ऐसा उनको संतोष हुआ, बहुत प्रमोद हुआ उनको, क्योंकि बेन और बहिनश्री दोनों (ही साधर्मी)। लेकिन बहिनश्री तो नहीं आ सकीं, लेकिन बेन आयीं हैं, तो भी गुरुदेव खुश हुए।

मैं गयी तो तुरंत पूछा कि, "आप किसमें आये?" कि साहेब! रेल में आये। मैंने पूछा कि, "साहेब! गुरुदेव आपकी तबियत कैसी है?" तो हँसे एकदम। चंदूभाई डॉक्टर खड़े थे (वहाँ)। तो हँसकर कहें कि, "इन

डॉक्टरों के हाथ में है, अब तो।" हँसते-हँसते कहा। मुझे कहा कि, "बेन (बहिनश्री) की तबियत कैसी है?" मैंने कहा, "साहेब! जैसी है, वैसी है।"

फिर मैंने कहा कि, "साहेब! गुरुदेव आपके बारे में बहुत, ऑपरेशन का सुना। तो मेरे से रहा नहीं गया। तो मैं बेन की आज्ञा लेकर आ गयी।" तो मुझे ऐसे-ऐसे हाथ दिखाया। तीन-चार बार ऐसा कहा, "भले आए! भले आए! भले आए!" इस तरह से गुरुदेव (ने कहा)। इसलिए मुझे बहुत संतोष हुआ कि मैंने गुरुदेव को सब कह दिया। बेन नहीं आये तो अपने मन में ज़रा ऐसा (दुख) हो। तो मैंने तो सब कुछ गुरुदेव के सामने बालक (वत्) होकर के बोल दिया। उन्होंने तो बहुत प्रसन्नता से ऐसे-ऐसे हाथ करके कहा।

ब्र. रमाबेन : (आप) आखिरी में अंतिम समय तक हाज़िर (थे)। तो ऐसा योग बना कि मुंबई जैसे शहर में तो कहाँ से बने, लेकिन आखिरी अंतिम समय तक भी हाज़िर थे।

पूज्य बेन : अंतिम समय में भी वहाँ.... ऐसे तो वहाँ जाने का टाइम ४ से ७ था। दूसरे समय में आने न दें, दरवाज़ा बंद कर दें। लेकिन ऐसा अपना, पुण्य का ऐसा योग बना कि गुरुदेव के ४-७ से टाइम में ही आखिरी प्राण पूरे हुए। उस समय पर अपनी हाज़िरी हो सकी। नहीं तो जाओ-जाओ, भागो-भागो करें। मैं तो ४ बजे गयी। चारों दरवाज़े खुले थे। मुकुंदभाई दो बजे गए। मैंने कहा कि मुझे आना है, दो बजे। तो कहा कि बेन आप अभी आओगे तो आपको रास्ते के ऊपर खड़ा रखेंगे। अंदर के दरवाज़े खोलेंगे नहीं। आप चार बजे आओगे तो अंदर आने देंगे। ठीक भाई! चार बजे आयेंगे। फिर क्या करें?

चार का डंका पड़ा तब मोटर आकर खड़ी हो गयी। मैंने कहा कि, "चलो! अब तो।" फिर कहने लगे, "सुबह तो ज़रा ठीक नहीं था (गुरुदेव का स्वास्थ्य) और दोपहर के बाद ठीक हो गया।" फिर मुझे

मुकुंद का फोन आया कि, "गुरुदेव को अब अच्छा लगता है और ज़रा दूध पिया (है)।" मैंने कहा - अच्छा! अच्छा!

फिर चार बजे मोटर भेजी फिर मैं वहाँ गयी। वहाँ मुकुंद मुझे सामने ही मिला तो मुझे कहने लगा कि, "फिर से वैसा योग हो गया, जैसा था।" (मैंने बोला) अभी मुझे ऊपर जाने दो, मुझे ऊपर जाना है। तो कहा कि, "जाइए आप।" मैं ऊपर गयी और अंदर जाकर के देखा, वहाँ विशेषता ज़्यादा वर्ती।

(मैंने फिर सोचा) यहीं रहना, अभी अपने को कहीं जाना नहीं है। वहाँ का वहाँ खड़े नहीं रह सकते, इसलिए १०-५ मिनिट खड़ी रही, फिर बाहर आ गयी। फिर ५ मिनिट हो, वापस अंदर से जाकर आऊँ, जाकर आऊँ। बाजू में बैठने का था, वहाँ बैठ जाऊँ। लेकिन फिर रहा नहीं जा सके देखे बगैर। अभी गुरुदेव को देखना है अपने को, आखिरी समय तक। ऐसा योग बना कि ७ बजे बराबर गुरुदेव के आखिरी प्राण, ७ बजे पूरे हुए, ऐसी शांति समाधि(पूर्वक)। मुख मुद्रा के ऊपर इतनी शांति गुरुदेव के, ऐसी समाधीपूर्वक, इतना। दर्द बहुत था। आखिरी में दर्द बहुत था। बहुत दर्द लेकिन एकदम शांति। दर्द में किसी दिन हुँकारा किया नहीं कि मुझे इतना ज़्यादा दर्द है, इसलिए मेरे से सहन नहीं होता, कुछ बोले नहीं। मात्र शांति और समता से उन्होंने पूरा दर्द सहन किया। दर्द बहुत और फिर डॉक्टर सब दवाखाना करें। सुई सब लगाया करें, पूरे दिन। इतना दर्द गुरुदेव को आखिरी समय में, तो (भी) कुछ नहीं, शांति। कहीं कुछ बोले नहीं। एकदम शांत थे। चंदूभाई ने सुबह कहा भी कि, "गुरुदेव आज आपकी शरीर की स्थिति बदल गयी है। आपकी शरीर की स्थिति बदल गयी है।"

तो गुरुदेव ने कहा, **"एक ज्ञायक।"** भले! शरीर बदले, हमें तो एक ज्ञायक चाहिए, ज्ञायक। **"एक ज्ञायक।"** ऐसा कहा। जब भी कोई

पूछे तब ऐसा कहें, **"एक ज्ञायक।"** अपने को तो एक ज्ञायक (ही) स्मरण में है, शरीर का जो होना हो वो हो।

इतनी ज़्यादा पीड़ा में एकदम समता। कोई दिन अरर्र या ओये-ओये, कहीं बोले नहीं। आखिर में ये लोग सुनाते थे हरिभाई, चंदूभाई गाथा बोलें, दूसरे कुछ शब्द सुनाएँ। तो हूँ-हूँ-हूँ करते थे, धीरे-धीरे-धीरे। इतनी उन्होंने तो समता-शांति रखी, आराधना की और वे तो देवलोक में पधारे हैं। ऐसी आराधना की थी कि तुरंत ही (जतावेत) भगवान मिलें, भगवान का योग मिले, ऐसा करके गुरुदेव तो गए। अब हम भी आराधना करके झट उनके चरणों में पहुँच जायें।

इतनी जल्दी और इतने झटपट हो जायेगा, ऐसा ख्याल नहीं था। ऐसा ख्याल ही नहीं था। अभी तो लंबायेगा, फिर, धीरे-धीरे ठीक हो जायेगा, ऐसा लगता था। इस तरह से ऐसा पलटा खा जायेंगे, ऐसा कहीं ख्याल नहीं था।

आखिर में गुरुदेव (जब तक) चलते थे, ४-५ दिन, तब मैं गयी। तब कहा ना, कि छांछ पीते थे, तब प्याला नीचे रख दिया (कि) "मुझे तो संथारा करना है।" मैं उस समय सामने खड़ी थी (कि) "बेन मेरे को तो संथारा करना है।" क्या बोलें? "प्याला नीचे रखा, मुझे कुछ पीना नहीं, मुझे खाना नहीं। मुझे खाने-पीने की रूचि है नहीं। इस शरीर में अनेक रोग आते हैं, मुझे तो संथारा करना है।" लेकिन उस बात के लिए टेका (आधार) कौन दे? किसी ने टेका (आधार) दिया नहीं, गुरुदेव को (अर्थात् किसी ने 'हाँ' नहीं किया)। सबने यही कहा कि, "साहेब! आप ठीक हो जायेंगे।" मैंने भी यह कहा (कि संथारा करने दो)। चंदूभाई डॉक्टर ने (गुरुदेव का) सिर रखा गोद में (और कहा) "गुरुदेव आप छांछ पीजिए, क्योंकि आप ठीक हो जायेंगे।"

दोपहर में लालूभाई सब कहने को, गुरुदेव को कि, "गुरुदेव आपको ठीक हो जाना है। अभी सब ठीक है और आपने सुबह जो विचार व्यक्त किया था, वो विचार नहीं करना, ऐसी हमारी विनती है।" ऐसा बाबूभाई, लालूभाई, पंडित हुकुमचंद जी, ४-५ जन गए थे। लेकिन गुरुदेव ने कुछ जवाब नहीं दिया, मौन (रहे)। उनहोंने अंदर में विचार किया लेकिन अब सब लोग तभी 'न' पाड़ें। फिर उनको ऐसा था कि देखो अभी क्या होता है, संथारा हो जायेगा अपने आप।

उनको अंदर ऐसा (था), दो-तीन बार हमारे सामने ही कहा कि, "(हम) सब तरफ से घिर गए हैं।" उनकी बात सच्ची हो गयी (और) डॉक्टरों की बात झूठी हो गयी। डॉक्टर ऐसा कहते थे कि, "कुछ नहीं (होगा), सुधार हो जायेगा।" ये झूठा पड़ा। उन्होंने कहा कि, "मुझे दर्द (रोग) फ़ैल गया है, यह बात सच्ची पड़ी।" उन्होंने स्वयं अपने ज्ञान से अपने शरीर में सब फेरफार हो गया है और अभी तो मुझे दर्द (रोग) फ़ैल गया है (ऐसा जान लिया था)। ये बात उनकी सच्ची निकली।

डॉक्टरों ने कहा कि, "कुछ नहीं (होगा)।" देखने आये थे कि कुछ नहीं (होगा)। ये बात उनकी झूठी सिद्ध हुई। अपने को तो बस ज्ञान करना। बाकी जिस काल में जो बनने वाला हो, वो बन जायेगा। कोई किसी को कुछ ख़राब करता नहीं। किसी का कोई शरीर बिगाड़ता नहीं। उनको इस जाति का दर्द आना हो और इस तरह से आयुष्य पूरा होना (था), इसलिए उनमें ऐसे निमित्त बने। इसमें कोई किसी (के) कारण से आयुष्य पूरा कहीं होता नहीं। ये, उसका अपने को ज्ञान करना कि इस तरह से है।

श्रोता : आपका ह्रदय (आज) हमें सुनने को मिला।

पूज्य बेन : बालक, भरवाड़ (दूध देने वाले), गाँव के जो मिलें, सबको बुलायें, सबको समझाएँ।

श्रोता : ये भरवाड़ (दूध देने वाला) बेचारा ऐसा बोलता था....

पूज्य बेन : हाँ! कृष्ण जैसे।

श्रोता : ऐसा (कि) कृष्ण क़ानुड़ो चला गया।

ब्र. रमाबेन : ये लोग, गाँव वाले सब 'कृष्ण क़ानुड़ो' कहते हैं गुरुदेव को कि, "मेरा क़ानुड़ो कहाँ चला गया?"

पूज्य बेन : क़ानुड़ो बाँसुरी बजाकर चला गया। क़ानुड़ो ने बाँसुरी बजायी (और) क़ानुड़ो देवलोक में पधारे हैं। गुरुदेव हैं अभी। जब तक उनकी हैयाती थी, तब तक संतोष पाते थे कि, "ये बैठे हैं, गुरुदेव बैठे हैं।"

ब्र. रमाबेन : पालकी में घूमते थे, तो ऐसा लगता था कि गुरुदेव पालकी में मानो कि साक्षात् विराजते हों।

पूज्य बेन : ज़रा भी मुँह के ऊपर झाँखप दिखती नहीं थी। प्रभाव-प्रभाव-प्रभाव। आखिरी में प्राण निकले, तब तो मुँह कैसा चकमक-चकमक-चकमक (था)। कैसे ऐसी मुँह के ऊपर चकचकाहट होती थी!

ब्र. रमाबेन : तेज ही (कोई) अलग जाति का था।

पूज्य बेन : उनको सबको ऐसा लगता था कि कोई बड़ा प्रधान आये, तो भी इतने लोग नहीं आते हैं, इतने लोग (उस समय) आये थे। आखिरी दिन तो कोई पार (ही) नहीं, (इतने लोग पहुँच गए)।

फिर सब अंदर ही जाने लगे, सब, अंदर, दर्शन करने के लिए। तो धक्का-धक्की, धक्का-धक्की खूब (हुई)। फिर इन लोगों ने, बेचारे,

बड़ी व्यवस्था की क्योंकि ये गुरुदेव हैं, तो सब दर्शन करने आयेंगे। फिर हम चले गए क्योंकि बहुत लोग आ गए थे। आखिरी में देख लिया और पाँच मिनिट खड़े रहे। फिर बहुत लोग, सबकी धक्का-मुक्की थी।

श्रोता : कितने लोग! कितने लोग!

पूज्य बेन : बहुत लोग, बहुत लोग! फिर हम नीचे चले गए, वहाँ भी मुश्किल से (गए, क्योंकि बहुत लोग थे)।

(गुरुदेव ने) शांति रखी थी। उनको ख्याल बराबर आ गया कि मुझे दर्द (रोग) बहुत बढ़ गया है। अभी ये देह टिके, ऐसा नहीं। ऐसा उनको ख्याल आ गया था।

ब्र. रमाबेन : यहाँ से मुंबई पधारे तब ही ख्याल आ गया था कि इस शरीर में सब फेरफार है, फेरफार है, बोला ही करते थे।

पूज्य बेन : विचार करते-करते मन में उदासीनता कम हो जाती है। ये शास्त्र हैं, ये उपदेश हैं, ये पढ़ा करूँ और भावना बढ़ती जाये कि, "प्रभु! हम आपके धाम में चलें सब, बस।" इसलिए उदासीनता कम हो और वाँचन में चित्त चिपके, तो आत्मा की आराधना हो। बस यही करना है, सबको। एक आत्मा की (ही) आराधना करना है। (गुरुदेव) ठीक न हो तो (भी) चर्चा करें, इतनी करुणा सबके ऊपर (थी)।

पंद्रह दिन रहे, तो पन्द्रह ही दिन चर्चा रखी। उनकी वाणी इतनी अच्छी लगे प्यारी-प्यारी-प्यारी। उनके उपकार का गुण-ग्रहण करके, किस स्थिति में संतोष हो। पेट भरे नहीं, भरे नहीं। कैसे मजे में चलकर के मंदिर गए सुबह में, उत्साह से। भगवान के दर्शन करके आए। आकर के पाट पर बैठे, मांगलिक किया। तब तक ऐसा नहीं लगता था

कि ऐसे ढीले-ढीले हैं, ऐसा कुछ नहीं। लेकिन यह आयुष्य पूरा होना था ना, इसलिए जो है सो है। जीव तो शाश्वत आत्मा है।

श्रोता : शाश्वत है और जागता जीवत्व जगत में सब जगह पसर गया है। सबके मुँह में एक ही बात है।

विदेहीनाथ सीमंधर भगवान की जय हो!

बीस विहरमान भगवान की जय हो!

चौबीसों भगवान की जय हो!

परम कृपालु सद्गुरु देव की जय हो!

सद्गुरुदेव के परम उपकार की जय हो!

फिर-फिर से स्मरण करवानेवाले सद्गुरुदेव की जय हो!

शुद्धात्मा की जय हो!

शुद्धस्वरुप परिणति की जय हो!

देव-शास्त्र-गुरु भगवान की जय हो!

आत्मस्वरुप आराधना की जय हो!

आत्मस्वरुप की वीतरागता की वृद्धि की जय हो!

देव-शास्त्र-गुरु के परम प्रताप से

आत्मा की परमशांति की जय हो!

सर्व महापुरुषों के महाप्रताप की जय हो!

*** * ***

Track Number 74

पूज्य गुरुदेव को श्रुतज्ञान की विशालता और उनकी तत्वज्ञान की विशालता के कारण सभी बड़े-बड़े पंडित लोग वगैरह, आज भी पूज्य गुरुदेव को याद करते हैं।

पूज्य बेन :

गुरुदीवो गुरुदेवता गुरुवार गुणनी खाण।

ये गुरु बसे जो अंतरमां तो पामे भवनो पार।।

गुरुदेव के कहे हुए भाव उसके अंतर में बस गए हैं। गुरुदेव को पहचानना तो उसको कहलाता है कि गुरु बसे जो अंतर में। तो गुरुदेव को पहचानना अर्थात् गुरुदेव के कहे हुए भाव अंतर में बसें, अर्थात् भव का पार वो भक्त पा ही जाये।

शक्ति को छुपाए नहीं, अर्थात् जितनी शक्ति हो उस प्रमाण में तप अंगीकार करे, अर्थात् तप की वृद्धि होती है।

श्रोता : क्योंकि इंद्रिय और इंद्रियों के विषयों को जीत लेता है।

पूज्य बेन : भगवान की वाणी में गुण भी जानने में आते हैं और दोष भी जानने में आते हैं। तो गुणों को अंगीकार करे और दोषों का त्याग करे। भगवान की वाणी, गुरु के आधार (बिना), उसके बिना (तो) जानने में (आती नहीं)।

श्रोता : गुरु के आधार बिना तो हमारे जैसे को तो ये वाणी ही जानने में न आए ना।

पूज्य बेन : शास्त्र का आधार और साथ में गुरु तो चाहिए ही। गुरु बगैर समझ में **(**आता ही नहीं**)**। शास्त्र तो भण्डार में बहुत भरे थे लेकिन कहीं कोई अर्थ बतानेवाला नहीं था। गुरुदेव ने अर्थ समझाया**,**

इसलिए सब समझे। तो शास्त्र तो हैं लेकिन गुरु साथ में हों**,** तो समझना सरल है। गुरुदेव ने समझाया तो सरल पड़ा।

श्रोता : जी हाँ**!**

पूज्य बेन : नहीं तो, गुरुदेव बिना तो शास्त्र तो पड़े ही थे भंडार में, तो कोई अर्थ समझता नहीं था।

पंडितों पोकार करते हैं ना कि हम तो समयसार को छूते भी नहीं थे। हाँ! तो कानजी स्वामी ने (हमको) इसका महात्म्य बताया, अर्थ समझाया, तो हमको (समझ आया)। गुरु के बगैर तो ज्ञान हो सकता नहीं।

डांडी पीटकर जाहिर किया है कि ये समयसार है, ये समयसार आत्मा का हित करने वाला है। समयसार में ऐसे भाव कहे हैं। डांडी पीट-पीटकर जग में जाहिर किया। पूरे भारत भर में नहीं बल्कि देश-विदेश में भी, सभी जगह (पर)। अभी जितनी पृथ्वी है, पूरी पृथ्वी में गुरुदेव ने समयसार को जाहिर किया है। देश-विदेश सब आ गया ना इसमें।

बहुत उपकार है। समयसार, प्रवचनसार जब वाँचे, तब एकदम न्याय ऊपर न्याय, न्याय ऊपर न्याय (निकालें)। सूक्ष्मता चलती ही रहे। श्रुतज्ञान की बहुत विशालता थी। एकदम, एकदम, एकदम, एकदम अंदर। गाथा तो वही चले, लेकिन एकदम स्वयं के श्रुतज्ञान से समाधान बहुत हो जाये, बहुत समाधान।

तत्वज्ञान की महिमा है, तो महिमा करते-करते आगे बढ़ते गए, उसमें। भगवान की महिमा करते-करते आगे बढ़ता जाये, तो तत्व का स्वरुप है ना। ऐसे गुरुदेव की महिमा अर्थात् तत्वज्ञान की महिमा। गुरुदेव की महिमा किसके कारण है? तत्वज्ञान के कारण है। ऐसा कि

समयसार का इतना ज़्यादा प्रचार किया, उसके कारण उनका महात्म्य है कि अध्यात्म का इतना प्रेम, इसके कारण उनका महात्म्य है? बाकी भारत-भूमि पूरी उनको याद करती है। तो उनका तत्वज्ञान इतना विशाल था और इतना स्पष्ट (था) इतना चोखा (था), उसके कारण सब याद करते हैं। व्यक्ति के कारण नहीं, उनके ज्ञान के कारण। ज्ञान के कारण व्यक्ति की महिमा है।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : सच्चे दिगंबर तो हम ही हैं। हमारे सिवाय कौन दुनिया में है (दिगंबर)? कौन हमको कहेगा कि (हम) दिगंबर नहीं? हमको कौन कहने वाला है कि (आप) दिगंबर नहीं? हम ही सच्चे दिगंबर हैं। उनके ह्रदय को जाना (पहचाना), वही सच्चा दिगंबर है।

और ज्ञानी भोजन करते हुए भी निर्जरा करता है। स्वयं के आत्मा को जानकर, समझकर, जो समझता है, उसकी बलिहारी है। उसके कारण कर्म की निर्जरा होती है और जो बिना समझे बेला-तेला करे, ऐसे कहाँ तक कहे?

श्रोता : पाँच।

पूज्य बेन : बेला-तेला, पाँच उपवास करे और चाहे जितने मास-खम्मण करे, तो भी इतने कर्मों की निर्जरा नहीं होती।

(जीव ने) अनाकुल स्वरूप आत्मा को जाना नहीं, इसलिए कोई न कोई अपेक्षा रह जाती है। आ ही जाती है, अंदर में। सूक्ष्मता में रह जाती है, (भले!) उसको बुद्धिपूर्वक न हो।

आत्मा में (उपयोग) लगाए तो आत्मा में चिपक जाये। जिनेन्द्र के गुणग्राम में चिपकाए, तो वहाँ चिपक जाए। द्रव्य-गुण के विचार में

लगा हो, तो वहाँ चिपक जाये। जहाँ लगाए, वहाँ चिपक जाये। डावाँडोल, अस्थिर मन न रहे।

रुचि हो, वहाँ मन जोड़े तो मन स्थिर हो जाये, ऐसा (तो) यह आत्मार्थी है। (फिर) ये तो मुनिराज हैं, उनको (तो) आत्मानुभव की प्रीति है। आत्मानुभव की और स्वाध्याय की (उनको) प्रीति है। इसलिए अनुभव में मन जोड़ें, तो स्थिर हो जाये। स्वाध्याय में मन को जोड़ें, तो स्थिर हो जायें। जहाँ जिसकी प्रीति (हो), वहाँ अपना मन जोड़ें तो स्थिर हो जाएँ। ऐसे मुनिराज को तो आत्मा की प्रीति है और स्वाध्याय की प्रीति है। तो वहाँ मन को जोड़ें, तो मन स्थिर हो जाता है। जहाँ जिसकी प्रीति हो, वहाँ मन स्थिर हो जाये। ऐसे मुनिराज को तो आत्मा के अनुभव की ही प्रीति है। दूसरे नंबर में स्वाध्याय की प्रीति है। तो उसमें मन जोड़ें, तो स्थिर हो जाये एकदम।

कहीं प्रतिबन्ध ही नहीं, अप्रतिबन्ध (रूप) रहें, वीतरागता की वृद्धि करना (है), इसके लिए। भिन्न-भिन्न देश में विचरें इसलिए कि वीतरागता की वृद्धि हो, इसके लिए। एक जगह पर रहें तो राग हो जाये कि ऐसा हुआ (और) ऐसा नहीं हुआ, ऐसा हुआ (और) ऐसा नहीं हुआ। एक जगह रहने पर राग का प्रतिबंध हो जाता है। मुनिराज तो एक जगह पर रहते नहीं, परन्तु शरीर की स्थिति ऐसी हो, तो रहना ही पड़े। लेकिन वो तो कहीं जंगल में रहें और वन में रहें, मंदिर में रहें (उसमें कोई फ़र्क नहीं)।

श्रोता : प्रयत्न कम करे और लाभ ज़्यादा हो जाए।

पूज्य बेन : प्रयत्न सहज-सहज हो जाता है। इसलिए बहुत प्रयत्न करने की मेहनत नहीं करनी पड़ती। प्रयत्न तो जितना चाहिए हो**,** उतना (तो) चाहिए (ही), परन्तु सहज-सहज हो जाता है।

श्रोता : ऐसे करना है, करना है, ऐसा नहीं करना पड़े?

पूज्य बेन : हाँ! ऐसा कुछ नहीं करना पड़े। सहज-सहज हो जाये।

श्रोता : बहुत अच्छा!

पूज्य बेन : गुरुदेवश्री ने तो उपकार किया है। इतना-इतना अध्यात्म (का) ज्ञान दिया है कि गुरुदेवश्री (को) तो हम ज़िन्दगी भर, अपनी आखिरी श्वास तक भूल सकते नहीं। इतना उनका परम-परम उपकार है (कि) यह देह छूटे, तब तक, अपनी श्वास-श्वास जाये तब तक, हम गुरुदेव को याद करेंगे। इतना-इतना उन्होंने सभी भक्तों के ऊपर इतना-इतना उपकार किया है। ये हम किसी तरह से भूल सकें नहीं। इतने, ऐसे महान पुरुष इस पृथ्वी के ऊपर, सभी भक्तों के पुण्य के कारण विचरे, गाँव-गाँव में विचरे, शहर-शहर विचरे, घर-घर जाकर के सबको जैसे (वो) समझे, वैसे समझाया (है)। गाँव-गाँव में, सब जगह, पूरे हिन्दुस्तान में फिरे। आखिर में, अफ्रीका देश में (भी) जाकर आए। उनका तो इतना वात्सल्य-प्रेम, इतना धर्म (के) प्रति, अध्यात्म से ओतप्रोत हुए, एकदम अध्यात्म के रंग में रंगे हुए, एक जगत की उपेक्षा, एक आत्मा की अपेक्षा, किसी (और) की अपेक्षा नहीं, ऐसे निष्पृह पुरुष थे, एकदम निखालस।

एकदम सरलता, एकदम मृदु जैसा कोमल हृदय, वैसी एकदम ज्ञान की इतनी तीक्ष्णता और ऐसा चारों ओर से इतनी लायकातवाले आत्मा थे। इतना प्रभाव, इतना प्रभाव कि लोग उनकी वाणी में मुग्ध हो जायें। उनकी वाणी सुनें तो तृप्त न हों (कि) अभी बोले अभी बोले अभी बोलें। ऐसी तो (उनकी) वाणी में मधुरता; अकेली मधुरता नहीं, लेकिन तत्वज्ञान सहित की मधुरता। इसलिए तत्व के प्रेमी, उनके प्रताप से

इतने जीव, हजारों नहीं पर लाखों जीव, उनके प्रताप से तत्वज्ञान के प्रेमी हो गए (हैं)। इतने प्रेमी, बालक से लेकर वृद्ध तक, सब जीव तो गुरुदेव-गुरुदेव-गुरुदेव करें। इतने सबके ह्रदय में बैठ गए हैं। सबके अंदर आत्मा में उतर गए हैं, ऐसा महान उपकार। उन्होंने तो इतना उपकार किया है कि गुरुदेव ने (कि) 91 वर्ष तक, बस अमृत ही बहाया है, सबके ह्रदय में।

ये अमृत अब सबको उनकी, गुरुदेव की वाणी को याद कर-करके और स्वयं के आत्मा को भी ऐसा उज्जवल बनाकर के स्वयं के आत्मा का कल्याण करके, जीवन की सफलता करना कि गुरुदेव जो कह गए हैं, वो याद करके जीवन की सफलता करना। ये उनके उपदेश का फल है। उनका उपदेश, ये सबने प्रेम से सुना, तो उसको सुनने का फल यह (है) कि उसकी सफलता स्वयं को करना (है)। जीवन में आत्मा के स्वभाव की आराधना सभी को करना। उनके उपदेश के निमित्त को लेकर के आराधना करना। बस उनके उपदेश में सब आता है। (गुरुदेव ने तो) स्पष्ट, स्पष्ट दिगंबर मार्ग प्रकाशित किया है। कुंदकुंद आचार्य देव के ह्रदय में बस गए (हैं)।

तो वहाँ (वैमानिक) अभी गए हैं, वहाँ मिल गए होंगे कुन्दकुन्द आचार्य देव को। आचार्यों को मिले होंगे क्योंकि वे तो उनके ह्रदय में (ही) थे। जहाँ देखें कि ओहो! कुन्दकुन्द आचार्य के जीव यहीं है? तो फिर उनको मिलने गए ही होंगे। अपना यहाँ अभी पंचमकाल में पुण्य हल्का है कि जिसके कारण अपने को कोई (देव आदि) कहने को आता नहीं। पंचमकाल में इस जाति का पुण्य हल्का (है)। पंचमकाल है अभी। गुरुदेव जब यहाँ थे, तब बहुत बार कहते थे कि कोई देव आकर के समाचार देकर के जाये। क्योंकि गुरुदेव के लिए तो आ ही (सकते हैं

ना, क्योंकि) उनका पुण्य तो बहुत था। तो भी कोई नहीं आया, तो अभी तो बाहर में ही किसी (और) का (तो) ऐसा, (गुरुदेव जैसा भी) पुण्य नहीं। लेकिन कहने आये या नहीं आये, कुछ नहीं। अपने ज्ञान से हम जान लेते हैं कि उनको वहाँ पूरा अच्छा योग मिला है। अच्छी देव (गति) में गए हैं। तीर्थंकर भगवान की वाणी को सुनते होंगे। वो तो अभी आनंद मंगल कर रहे हैं। अपने को यहाँ उनका विरह पड़ गया लेकिन विरह में भी हम उदासीनभाव से आत्मा का कल्याण करके, कषाय की मंदता करके, एक आत्मार्थ का सेवन करें, सभी। वो (जो) दे गए हैं, उसकी अपने को आराधना करना।

गुरुदेव को तो जितने शब्दों में याद करें, तो भी तृप्ति हो नहीं। इतना उनका उपकार है। उपकार का कोई पार नहीं, इतना उपकार किया है। छोटा हो तो छोटे के ऊपर इतनी सरलता, छोटे के साथ छोटे हो जायें, बड़े के साथ बड़े हो जायें। इतना ह्रदय साफ़ एकदम स्फटिक जैसा। ज़रा भी, मन में कुछ (और) बाहर में कुछ, ऐसा कुछ नहीं। एकदम साफ़ ह्रदय (था)।

इतनी सरलता, इतनी कोमलता (कि) किसी को कुछ थोड़ा कर्कशता से कहें, तो फ़ौरन पीछे ढीले हो जायें, इतनी कोमलता। गुरु पद में थे, तो किसी दिन किसी को कहने में (कड़क) आ भी जाये, लेकिन फिर कोमल इतने ज़्यादा कि तुरंत ही उस बात को ठीक कर लें। ज़रा भी कठोरता उनके ह्रदय में थी ही नहीं और आखिर-आखिर में तो कितना ज़्यादा बोलते थे कि मेरी तरफ से किसी को दुःख हुआ हो, तो मैं क्षमा माँगता हूँ। हाँ! स्वयं-स्वयं की आत्मा की शुद्धि करते गए कि भाई! किसी को ऐसा कुछ हुआ हो मेरी तरफ से, तो मैं क्षमा (माँगता हूँ)।

मेरे लिए सब मित्र ही हैं। कोई मेरे विरोधी नहीं। सभी आत्मा हैं। मेरा चैतन्य प्रभु है, ऐसे, सब ऐसे प्रभु हैं। प्रभु कहकर ही बुलाते थे गुरुदेव तो। सब प्रभु हैं, सब भगवान हैं, सब आत्मा हैं। इस तरह से कह-कहकर बहुत गुरुदेव ने तो समझाया है। बहुत-बहुत उपकार है। उनका तो हम गुणग्राम (गुणों) का वर्णन करें, तो भी कम है। उनका वर्णन करने की भी वाणी में शक्ति नहीं (है) कि उनके गुणों का क्या वर्णन करें।

इतनी ज्ञान की तीक्ष्णता, इतनी विचक्षणता कि ऐसी विचक्षणता ज्ञान की देखो तो, अभी तो इतना विचक्षण (कोई है ही नहीं)। ऐसे, लोगों को अँगूठे में से परखें, अँगुली में से परखें, चेहरे में से परखें, इतनी ज़्यादा ज्ञान की तीक्ष्णता। बहुत तीक्ष्णता! ऐसी तीक्ष्णता से समयसार आदि शास्त्रों में आचार्य ने क्या कहा है, ये (स्वयं की) ज्ञान की तीक्ष्णता से सब निकाला उन्होंने। स्वयं को जानें, उनके सिर पर कोई गुरु नहीं थे। कोई मार्ग बतानेवाला नहीं था, कोई भी श्रुतकेवली नहीं मिले और न ही उनको कोई अध्यात्मप्रेमी मिले। श्रीमद् राजचन्द्र भी मिले नहीं। कोई भी उनको मिला नहीं। अंदर आत्मा में से आत्मा की सच्ची रूचि और सच्चा मार्ग पाने की धगश, इसके द्वारा ही उन्होंने स्वयं सच्चा मार्ग ढूँढ निकाला।

शास्त्र (तो) सब पढ़े कि इस शास्त्र में ऐसा है और इस शास्त्र में ऐसा है। सच्चा-सच्चा ढूँढें। इसमें से सच्चा कौनसा है, इसमें से सच्चा कौनसा है? उसकी ही लगन-लगन-लगन कि सच्चा क्या है? उनके अंदर सच्चे की लगन थी, तो सच्चा मिल गया। सच्चा मिल गया, फिर उसमें एकदम, उसमें से बाद में कितना सूक्ष्म निकाला। कितना अंदर से सूक्ष्म! आज दोपहर में ही टेप सुनी। इतनी अच्छी पाँचवी गाथा

(निकली)। कितनी अच्छी बात! इतनी अच्छी टेप सुनी, तो गुरुदेव स्वयं ही बोलते हैं (ऐसा लगा), इतनी उनकी वाणी में सूक्ष्मता। ये सब कुछ स्वयं, स्वयं के सम्यग्ज्ञान के द्वारा, सच्चा क्या है, ये जानने की जिज्ञासा के द्वारा, आचार्यों के हृदय को भी स्वयं, स्वयं के ज्ञान के द्वारा तीक्ष्णता के द्वारा, (उन्होंने) जान लिया। अपने को तो सबको तैयार करके माल दिया है कि ये ऐसा है, ये ऐसा है, ये मार्ग है। ये है, वो है, ये समझाया अपने को, लेकिन निकाला तो सब उन्होंने। पूरा मार्ग बताया तो उन्होंने। ये स्थानकवासी खोटा है, श्वेताम्बर ये है, दिगंबर सच्चा धर्म है, अनादि का धर्म है, आत्मा का धर्म है, पुकार-पुकारकर के गुरुदेव ने कहा है, इतना दृढ़ किया (है)। ऐसे लाखों भक्तों को उनके उपदेश के द्वारा दृढ़ता हुई, तो उनकी स्वयं की इतनी दृढ़ता कि इतने भक्तों के ऊपर उनकी दृढ़ता की छाप पड़ गयी कि, वाह! वाह! गुरुदेव आप जो कहते हो वो सत्य है, सत्य है।

दूसरे भक्त भी इतने अडिग हो गए, (उनकी) इस अडिगता का मूल कारण गुरुदेव हैं। कितनी गुरुदेव की अडिगता और दृढ़ता, उस दृढ़ता का भी बहुत भक्तों के ऊपर असर हुआ कि, वाह! यही मार्ग सच्चा है। ये तो कहा तो सब गुरुदेव ने, जोर से कहा गुरुदेव ने, दृढ़ता से कहा गुरुदेव ने। स्वीकारने के लायक भक्त जीवों ने स्वीकार लिया कि ये सच्चा है। आप जो कहते हो, ये सच्चा है। हजारों-लाखों, हजारों तो क्या कहलाये (बल्कि) लाखों भक्तों के, लाखों के ऊपर उन्होंने ऐसा असर किया है। ऐसी उनमें एक अद्‌भुत शक्ति थी।

अद्‌भुत शक्ति से प्रभावना (की) कि तीर्थंकर तो नहीं, अभी तो (तीर्थंकर) नहीं होते (हैं), लेकिन तीर्थंकर का एक अंश उनमें अभी था कि तीर्थंकर को भी जैसे ऐसा अतिशय होता है (ना), ऐसा उनका अतिशय था कि जीव ऐसे उनके प्रभाव में एकदम लीन हो जाते थे और

सच्चा ही ग्रहण करते थे। आप जो कहते हो वो सच्चा ही है और वे सच्चा कहते जाते थे।

उनके हृदय में कुछ और बाहर कुछ, ऐसा तो उनको किसी दिन आया ही नहीं। सीधी सरल बात! सीधी सरल बात! जो हृदय में हो वह बात (कहें), बस। एकदम स्फटिक जैसा हृदय। सभी ने अपने ज्ञान से स्वीकारा, भक्तजनों ने अपने ज्ञान से स्वीकारा, लेकिन निमित्त में गुरुदेव का प्रबल योग था। प्रबलपना निमित्त था, प्रबलपना था। लेकिन वो ये इतनी दृढ़ता से बोलते थे कि सब दृढ़ हो गए।

ऐसे महापुरुष इस पृथ्वी के ऊपर हमने तो देखे नहीं और अब कितने काल में ऐसे पुरुष हों, ये तो भगवान जानें। भगवान के ज्ञान में आया है ये सब कि पंचमकाल तक किस तरह से मार्ग चलेगा। ये तो भगवान केवलज्ञानी जानें, हम तो जानते नहीं। अपने तो वर्तमान में गुरुदेव हुए, उन्होंने सब जाना। उनके जीवन से लेकर अब तक, अपने (को) तो अब 50 वर्ष हुए, सब देख रहे हैं और जान रहे हैं। और अपनी आत्मा का महान लाभ हुआ, (हमने) अपनी आत्मा का भी उद्धार किया, अपनी आत्मा के भव का अंत (हम) लाये, ऐसी ज्ञानज्योति गुरुदेव के प्रताप से प्रगट हुई, ये उनका अपने ऊपर महान-महान उपकार है। ये उपकार किसी तरह से (हम) भूल सकते नहीं। बारम्बार गुरुदेव दिन में पच्चीस बार याद आते हैं और अभी भी आते ही हैं कि ज़िन्दगी में आखिरी श्वास तक गुरुदेव को भूल नहीं पायेंगे।

अभी तो गुरुदेव की बात करें तो ही हृदय में संतोष होता है। दूसरी कोई तत्वज्ञान की बात पहले-पहले बोलना अच्छा नहीं लगता था (क्योंकि गुरुदेव के सामने हम और आप क्या कहें)। तब तो गुरुदेव के ही हम गुणग्राम करें, तो अपने को संतोष हो कि ऐसे महापुरुष, ऐसे

अपने गुरु थे। ऐसे थे (और) वे इस पृथ्वी के ऊपर से चले गए। इस पृथ्वी के ऊपर, यहाँ तो अंधकार हो गया और वहाँ प्रकाश हो गया, देवलोक में। लेकिन उनकी दिव्यवाणी को (वे) छोड़ गए हैं। उनकी वाणी के कारण उनका प्रकाश मानो कि जागता रहेगा, ऐसा लगता है। ऐसे कुदरत से साधन निकले सब कि, ये टेप और टेप रिकॉर्डिंग, जैसे कि मानो साक्षात् वाणी सुनते हों, ऐसा (लगता है)। साक्षात् बोलते हों, ऐसी वाणी जीवंत छोड़ गए हैं। गुरुदेव हाज़िर ही हैं, ऐसा भी प्रतिभास आत्मा में होता है।

श्रोता : बराबर!

पूज्य बेन : ऐसी वाणी को सुनकर संतोष होता है। बहुत बार तो उनका विरह भी भूल जाते हैं। ऐसी वाणी है कि ये गुरुदेव ही बोलते हैं, ऐसा लगता है। उनका परम-परम उपकार कायमरूप से अपने हृदय में बसे और उनका स्मरण करके अपनी आत्मा की आराधना करके, हम भी उनके पंथ पर उनके चरणों में जल्दी पहुँच जायें और भगवान के गाँव में पहुँचे, ऐसी सभी भावना भाएँ।

(गुरु-विरह गीत)

अहो! गुरु भानु भारतना अंधेरा जगतमां कीधा -4

(अर्थ :- भरतक्षेत्र के सूर्यरूपी गुरुदेव की समाधि पश्चात् जगत में अंधेरा हो गया)

वीत्या बे मास तोये ना दरस अमने ज़रा दीधा -4

(अर्थ :- दो मास बीत गए तो भी हमें आपने दर्शन नहीं दिये)

स्वानुभूतिथी झलकेला चैतन्य तेजेथी चमकेला -4

(अर्थ :- गुरुदेव आप स्वानुभूति से झलक रहे हो और चैतन्य तेज से चमक रहे हो)

आतम तेजेथी दीपेला गया क्यां कहान गुरु व्हाला -4

(अर्थ :- आत्म-तेज से दैदीप्यमान, कहाँ गए प्यारे कहान गुरु)

हिन्दमां गुरु हता मोटा जड़े नहीं क्यांय तुज जोटा -4

(अर्थ :- हिंदुस्तान के महान गुरु, आपके जैसा कोई और दिखाता नहीं)

गुरु विरहा पड्या मोटा जइने स्वर्गमां बैठा -4

(अर्थ :- गुरु का यहाँ भारी विरह पड़ा, आप जाकर स्वर्ग में विराजमान हुये)

गुरु तमे ज्ञान गंभीरा उछाल्या गुणना दरिया -2

(अर्थ :- आप ज्ञान से गंभीर हो, गुणों का दरिया आपने उछाला है)

गुरु तमे ज्ञान गंभीरा उछाल्या श्रुतना दरिया -4

(अर्थ :- आप ज्ञान से गंभीर हो, श्रुत का दरिया आपने उछाला)

अचिन्त्य गुणथी भरिया सेवक तुम भक्तिना रसिया -4

(अर्थ :- अचिंत्य गुणों से भरे हुये, सेवक आपकी भक्ति के रसिक हैं)

गुरुनुं नाम अमर होजे गुरुनुं धाम अमर होजो -4

(हिन्दी अर्थ :- गुरु का नाम अमर हो, गुरु का धाम अमर हो)

तमारी साधना ज्यां हो अमारो वास त्यां होजे -6

(हिन्दी अर्थ :- आपकी साधना जहाँ हो हमारा वास वहाँ हो)

गुरु-गुरु जंखना थाए गुरु विन चैन न पाए -6

(अर्थ :- गुरु गुरु नाम की जंखना हो और गुरु के बिना चैन न आए)

गुरु विन रात-दिन जाये मळीशुं शाश्वता धामे -6

(अर्थ :- गुरु के बिना रात-दिन जाये, शाश्वत धाम में गुरु मिलेंगे)

चैतन्य आनंद देनारी ज्ञायक साक्षात् करनारी -4

(अर्थ :- चैतन्य आनंद देनेवाली, ज्ञायक साक्षात् करनेवाली)

प्रज्ञाछीणीमां ज रमनारी अहो! गुरु कहाननी वाणी -6

(अर्थ :- प्रज्ञाछीणी में ही रमनेवाली अहो! गुरु कहान की वाणी)

चैतन्य तल स्पर्शती वाणी सेवकने पाय छे पाणी -6

(अर्थ :- चैतन्य तल को स्पर्शती हुई वाणी, जिससे सेवक पाए पानी)

मुमुक्षुने मुग्ध करनारी जय-जय गुरु कहाननी वाणी -4

(अर्थ :- मुमुक्षु को मुग्ध करनेवाली जय-जय गुरुकहान की वाणी)

मुनिवर महिमा गुरु गाता संयमनी भावना भाता -6

(अर्थ :- मुनिवर की महिमा गुरु गायें और संयम की भावना भायें)

जिनेश्वर मारगे जाता थशे गुरु ध्याननना ध्याता -2

(अर्थ :- जिनेश्वरमार्ग पर जायें और भविष्य में ध्यान के ध्याता होंगे)

अहो! गुरु भानु भारतना अंधेरा जगतमां कीधा -4

(अर्थ :- भरतक्षेत्र के सूर्यरूपी गुरुदेव की समाधि पश्चात् जगत में अंधेरा हो गया)

वीत्या बे मास तोये ना दरस अमने ज़रा दीधा -4

(अर्थ :- दो मास बीत गए तो भी आपने हमें दर्शन नहीं दिये)

Track Number 75

ऐसे श्री कहान गुरुदेव का समाधि-दिवस।

पूज्य गुरुदेव ने अपने को समयसार का अमृतमयी सार समझाया है, ऐसे श्री कहान गुरुदेव का समाधि-दिवस।

पूज्य बेन : आज तो गुरुदेव की निर्वाण तिथि है। आज का दिवस तो ह्रदय में बहुत खटकने वाला है। आज अपने को गुरुदेव बहुत याद आया करते हैं क्योंकि उनके निर्वाण का दिवस (है)। आज ही छह महीने पूरे हो रहे हैं, तो ऐसा लगता है कि गुरुदेव के जाने पर छह-छह महीने हो गए हैं। गुरुदेव (को) छह महीने हुये कि अपनी भूमि ऊपर से, अपने बीच में से (वे) चले गए। तो आज पूरे दिन गुरुदेव ही याद आया करते हैं और ह्रदय में एकदम खटकता है। गुरुदेव ने तो अपने को बहुत-बहुत समझाया है। ये समयसार का सार तो बहुत समझाते गए हैं। बालक को उसकी माता जैसे दूध पिलाती है ना, इस तरह से गुरुदेव ने दूध पिला-पिलाकर, इस तरह से अमृत पिला-पिलाकर गुरुदेव (ने) तो स्वयं अपनी आत्मा का कल्याण किया और भव्य जीव का कल्याण करते (ही) गए हैं। छह महीने बीत गए इस बात को। गुरुदेव को को इस भूमि के ऊपर से (गए) छह महीने हो गए।

श्रोता : वो तो स्वर्ग में विराजते हैं।

पूज्य बेन : उन्होंने अच्छी गति को पा लिया है, लेकिन अपने को तो उनका वियोग हुआ, ये वियोग बहुत बुरा लगता है। गुरुदेव नहीं (रहे), ये याद करते ही ह्रदय भर जाता है एकदम। ये दिन आये तो ज़रा (दुख लगता है)। आज तो ऐसा लगता है कि आज (शास्त्र) नहीं पढ़ा जा सकेगा। ह्रदय भरता है लेकिन थोड़ा हम दो-चार लाइन (पढ़ते हैं)।

शास्त्र लेकर के बैठे हैं, तो शास्त्र की आराधना करने के लिए (थोड़ा पढ़ते हैं)। संसारी भव्य जीव चिंतवन करके उनके समान हो जाते हैं। चारों गतियों से विलक्षण पंचमगति मोक्ष है। कैसी है पंचमगति? कि स्वभाव रूप है इसलिए ध्रुवपने को अवलम्बती है। कैसी है मोक्षगति? कि स्वभाव रूप है। मोक्षगति में विभाव का एक अंशमात्र भी नहीं (है)। मोक्षगति है, वो पूर्ण स्वभाव को प्राप्त हुई है, पूर्णता को प्राप्त हुई है, उसमें विभाव का अंशमात्र भी नहीं (है)। ऐसी पूर्णता को प्राप्त, ऐसी मोक्षगति है।

आचार्यदेव को स्वयं की चैतन्य आत्मा का इतना ज़्यादा आश्चर्य है, अमृतचंद्र आचार्यदेव को (कि) अहो! ऐसा चैतन्य आत्मा, ऐसा चैतन्य आत्मा, यह चैतन्य आत्मा मोक्षगति को पाए। कितनी अद्‌भुत और आश्चर्यकारी गति है! कैसी आश्चर्यकारी पंचमगति है (कि) जिस पंचमगति में आत्मा स्वयं की पूर्ण प्राप्ति को करके अनंत सिद्ध हुए और अपने को भी सिद्ध होना है। आत्मा स्वयं, स्वयं के आनंद का भोग करने के लिए पंचमगति में जाता है। ये पंचमगति कैसी है? कि स्वभावभूत है, स्वभाव स्वरुप ही है। स्वभाव तो पूरा चैतन्य आत्मा, अकेला चैतन्य आत्मा, अकेला चैतन्य गोला, अकेला चैतन्य बिम्ब, अकेला चैतन्य चेतनास्वरुप, अकेली ज्ञान की कातली, आनंद की कातली, अकेला पिंड पिंड पिंड, अकेला चैतन्य पिंड स्वयं सिद्ध स्वरुपमय है। अकेला चैतन्यस्वरुप, शरीर नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं, विभाव नहीं, राग और द्वेष (कुछ भी नहीं), सबका नाश हो जाता है। सब नष्ट हो जाते हैं। अकेला चैतन्य स्वरुप सिद्धगति में प्राप्त हो जाता है। चौदहवें गुणस्थान तक शरीर साथ में रहता है लेकिन जिस समय सिद्धदशा हुई, उस समय शरीर का नाश हो जाता है। शरीर छूटा, छूटा तो छूटा। शरीर

चौदहवें गुणस्थान के आखिरी समय में छूट जाता है और अकेला चैतन्य आत्मा, अकेला चैतन्य आत्मा, बिम्ब, चैतन्य, चेतना बिम्बस्वरुप आत्मा सिद्ध में है। अकेला बिम्ब, बिम्बाकार.... बिम्बाकार अर्थात् स्वयं चैतन्य बिम्ब वस्तु है। आत्मा स्वयं वस्तु है, चैतन्य स्वरुप है। ये चैतन्य स्वरुप आत्मा सिद्धगति में अकेला चैतन्य रहता है। सब कुछ छूट जाता है। अनादि का इस शरीर का सम्बन्ध (है), भले एक शरीर (छूटा) और दूसरा शरीर (तैयार हो), लेकिन शरीर की लप (संतति) तो आत्मा के साथ थी, थी और थी। इस शरीर की जो लप (संतति) है, वो लप (संतति, जब) सिद्धदशा प्राप्त हो, तो (ही) शरीर का अभाव हो जाये। शरीर का अभाव, द्रव्यकर्म का अभाव, भावकर्म का अभाव, नोकर्म का अभाव, इन सभी कर्मों को जलाकर भस्म कर डालते हैं। अकेला शुद्धात्मा, अकेला शुद्धात्मा रहकर के आत्मा के आनंद का भोग करता है। अकेले आनंद का भोग करके सिद्धदशा में आनंद को प्राप्त करता है। ऐसी स्वभावरूप, कैसी है पंचमगति? कि स्वभाव भावरूप है, जिससे ध्रुवपने का अवलम्बन करती है। अब जो स्वभाव प्रगट हुआ, उसमें से दूसरा भाव प्रगट होने वाला नहीं है। स्वभाव जो पूरा-पूरा प्रगट हो गया, ये पूरा ही रहने वाला है। स्वभाव में से अंश (मात्र) भी विभाव होने वाला नहीं (है)।

ये शरीर नोकर्म, द्रव्यकर्म, कोई भी अंश से अब (नया) प्राप्त होने वाला नहीं (है)। जो स्वभावभूत प्रगट हुआ, वह प्रगट हो गया, इसलिए ध्रुवपने को अवलंबता है। इसलिए ध्रुव है क्योंकि स्वभावभूत है, स्वभाव स्वरुप है, जिससे वह ध्रुवपने को अवलंबता है। सिद्धगति (अर्थात्) आत्मा की सिद्धगति (अर्थात्) आत्मा की सिद्धदशा। गति तो एक नाम मात्र कहलाती है लेकिन आत्मा की शुद्धदशा जो प्राप्त हुई, पूर्ण, अर्थात् पूर्ण प्राप्त हुई, ये ध्रुवपने का अवलम्बती है। आखिरी समय

में जहाँ से देह छूटी वहाँ से सीधे-सीधे, सीधे-सीधे जहाँ थे, वहाँ विराजमान हो जाती है, सिद्धशिला में, समश्रेणी से। गुरुदेव बारम्बार यात्रा में फ़रमाते थे कि यहाँ से सिद्ध भगवान सीधे-सीधे ऊपर विराजते हैं। सम्मेदशिखरजी (में) तो गुरुदेव कितनी बार फ़रमाते थे कि, "आहा! यहाँ से तो अनंत सिद्ध मोक्ष में गए हैं। ऊपर ही विराजते हैं।" ऊपर विराजते हैं, ऐसा बारम्बार अपने को समझाते थे।

अपने को ऐसा नहीं लगता था कि अपने को इस जीवन में गुरुदेव का विरह प्रगट होगा। ऐसा लगता था कि गुरुदेव तो हैं, हैं और हैं। वो चले गए, तो ऐसा लगता है कि गुरूदेव तो चले गए अपने को छोड़कर। इसका (दुख) बहुत अंदर (में) खटकता है।

श्रोता : आपके अंतर में से कहाँ गए हैं, बेन? अंतर में तो विराज ही रहे हैं।

पूज्य बेन : ये दिवस आए तो बहुत याद आती है। ऐसा स्वरुप समझाते थे, ऐसा बारम्बार इस चैतन्य आत्मा को एकदम.....

मुझे ऐसा लगा कि बेन के पास जाऊँ। तो बहिनश्री ने भी बहुत अच्छी बात, बहुत प्रेम से, बहुत लगन से, बहुत अच्छी बात कही। बहिनश्री ने कहा कि जब (गुरुदेव) हीराभाई के बंगले में थे, तब से हम दोनों तो गुरुदेव के साथ में ही थे। इतने वर्ष हो गए गुरुदेव के साथ। अपना पुण्य इतना (था) कि हम इतने वर्षों तक (साथ) रहें। बहुत वर्ष रहे लेकिन आखिर में गुरुदेव चले गए (और) हम विरह में रह गए। सभी जगह पर साथ ही साथ थे। पूरी यात्राओं में साथ, पूरे हिन्दुस्तान में (साथ ही) फिरे हैं। पूरा हिन्दुस्तान जानता है कि ये दोनों बहनें और गुरुदेव साथ ही साथ थे। बहिनश्री बोलीं कि गाँव-गाँव में हम लोग साथ ही साथ गए हैं, लेकिन अब गुरुदेव चले गए। आज का दिन ऐसा था ना

कि सहज ही हृदय में ऐसा गुरुदेव का विरह लगता है। मुझे ऐसा लगता था कि मैं बेन के पास जाऊँ तो मुझे शांति हो।

(गुरुदेव) इतने निर्भय (थे) और इतना (उनके) चिंतन (में) अध्यात्म का इतना रस, इतना रंग (था) कि रोम-रोम में उनके अध्यात्म था। रोम-रोम में अध्यात्म के लिए तो छोटी उम्र से, ये ९१ वर्ष तक भी अध्यात्म का रस, रस और रस (था)। इतना रस अध्यात्म का (उनको था)। चिति-शक्ति, दृशि-शक्ति, रोज़ सुबह उसका स्वाध्याय (करते थे, जैसे) शक्तियों के स्वाध्याय में स्वयं रंग गए (हों)।

ये जैन-सन्देश बाहर पड़ा है (उसमें युगपुरुष लिखा है)।

(जैन-संदेश का वाँचन)

कानजी स्वामी युगपुरुष थे और कानजी स्वामी ने बहुत प्रभाव किया। इस सौराष्ट्र में दिगंबर का एक ही मंदिर था। **वैशाख शुक्ल तेरस श्री कानजी स्वामी का जन्म-दिन है। ये प्रथम अवसर है कि सोनगढ़ में उनके अभाव में उनकी जयंती मनाई जायेगी।** इस समय में कानजी स्वामी का अभाव कितना खटकता है। **यह बतलाने को आशक्त नहीं हैं** कि मुझे ये कोई बात बतानी नहीं है, लेकिन अभी तक तो उनकी हैयाती में ही जन्म-जयंती मनाते थे, हैयाती में, ये कितना खटकता है। बहुत खटकता है। **वे एक युगपुरुष थे, इसमें संदेह नहीं है।** इसमें कोई संदेह नहीं है कि वे युगपुरुष थे। **हम तो उनका महान उपकार मानते हैं।** कानजी स्वामी का तो हम महान उपकार मानते हैं। **मैं कैलाशचंद,** ऐसा स्वयं लिखते हैं कि **मैं तो उनका महान उपकार मानता हूँ। यदि उन्होंने समयसार की दुंदुभि न बजायी होती, तो हम समयसार के रस से अछूते रह जाते।** अगर कानजी स्वामी ने समयसार की दुंदुभि न बजाई होती, तो मेरे जैसा तो

समयसार से अछूता रह जाता। समयसार का मुझे स्पर्श भी नहीं होता। इसलिए समयसार को मैं छूता भी नहीं, ऐसा।

श्रोता : छुए बिना ही रह जाता।

पूज्य बेन : हाँ! मैं छुए बिना रह जाता। **हम तो उनका महान उपकार मानते हैं। यदि उन्होंने समयसार की दुंदुभि न बजायी होती तो हम समयसार से,** उसके समयसार के रस **से अछूते रह जाते**। उसका क्या रस है, उसकी हमको खबर ही नहीं पड़ती। **और हम पंडित होकर भी जीवनभर जिनवाणी के पठन-पाठन में लगे रहकर भी आचार्य कुन्दकुन्द की अमरकृति से अपरिचित रह जाते।** पंडित थे हम, फिर भी जो कानजी स्वामी ने समयसार की बांसुरी न बजायी होती, तो हम पंडित होकर भी कुन्दकुन्द आचार्य की अमरकृति से अपरिचित रह जाते। **(ये मेरा) महा-दुर्भाग्य होता।** मेरा ये दुर्भाग्य बहुत (होता)।

स्वामी जी ने अपना पुराना पंथ त्याग करके, स्थानकवासी को त्याग करके, **दिगंबर जैनधर्म को अपनाया और जिस सौराष्ट्र में दिगंबर जैनों का अभाव जैसा था, उसे दिगंबर जैन-मंदिरों से पूरा किया।** दिगंबर जैन-मंदिर पूरे सौराष्ट्र में बनाकर और जहाँ दिगंबर का नाम मात्र भी नहीं था, वहाँ सबको दिगंबर बना दिया।

मुंबई, अहमदाबाद, मद्रास, बैंगलोर और नैरोबी जैसे स्थानों में दिगंबर जैन-मंदिरों का निर्माण कराकर, उत्साहपूर्वक प्रतिष्ठा कराई। ऐसे बड़े-बड़े गाँवों में मंदिर बनवाये और उत्साह सहित पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा कराई। **जैन-मंदिर का निर्माण कराकर सोनगढ़ में दिगंबर आचार्य, जैन आचार्य, कुन्दकुन्द की वाणी को पाषाण में अंकित कराकर, परमागम मंदिर बनवाया। (वे)**

स्वर्गगामी हुए किन्तु उनके विरोधियों के आत्मा में अभी तक भी शांति नहीं आयी। ऐसा कि स्वामी जी तो स्वर्गवासी हो गए। वो तो स्वर्ग में गए हैं, लेकिन उनके जो विरोधी हैं, उनको अभी भी शांति नहीं मिली कि स्वामी जी जब थे तब भी विरोध करते थे, स्वामी जी गए तो भी अभी उनको शांति नहीं (है)। अभी (भी) विरोध चालू ही है। **शांति नहीं आयी।**

उन्हें (विरोधियों को) यह सुहाता नहीं है कि दिगंबर जैन-मंदिर, स्वामी जी के बाद भी दिगंबर जैन-मंदिर क्यों (हैं)? ऐसा कि स्वामी जी गए तो अब दिगंबर का क्या काम? (इसलिए) ये सब अब श्वेताम्बर हो जाओ।

श्रोता : ये (तो) सूर्य फिरेगा, तो भी नहीं होगा।

पूज्य बेन : श्वेताम्बर क्यों नहीं होता, ऐसी भावना भाते हैं। अररर! पाप की भावना है। ऐसी भावना तो महापाप की है। यह द्वेष कितना भयानक है, कितना भयानक द्वेष है! ऐसी कि द्वेष की कोई मर्यादा ही नहीं रखी। इसमें से एक (बात) समझने जैसी है कि द्वेष की मर्यादा होती है। राग-द्वेष की भी मर्यादा होती है, ऐसा। राग-द्वेष आयें तो सही, परन्तु भयानक राग-द्वेष नहीं आना चाहिए कि जिससे आत्मा का अहित हो, ऐसा राग-द्वेष नहीं होना चाहिए। प्रत्येक (जीव को), स्वयं अपनी आत्मा के लिए यह संदेश लेने जैसा है। यह कहते हैं कि **कैसा-कैसा भयानक विद्वेष,** कितना भयानक विद्वेष **कि कथोक्त धर्म-रक्षकों के मन में,** नाम के धर्म-रक्षक, नाम है (कि) धर्म की रक्षा करनेवाले (हैं) और इस जाति के भाव (हैं)।

धर्म का प्रेम है, उनका यह कर्तव्य है कि स्वामी जी कानजी स्वामी के द्वारा, जो दिगंबर जैनधर्म में दीक्षित हुए हैं, जो बंधु दिगंबर

जैन हुये हैं, **दीक्षित हुए बंधुओं को अपना भाई समझकर के उनके सुख-दुःख में समभागी बनें।** अपने दिगंबर जैनों का ये काम है कि अपने कानजी स्वामी के अनुयायी जो दिगंबर हुए हैं, उनके भी सुख-दुःख में हम भाग लें। हम उनके सहकारी हों, ये अपना काम है। ऐसा द्वेष करना, ये काम नहीं (है)। **उनके सुख-दुःख में समभागी बनें। उनके द्वारा स्थापित जिनालयों की सुरक्षा में हाथ बढ़ायें।** कानजी स्वामी ने जिन मंदिरों की स्थापना की है, उनकी रक्षा को हाथ में लें। उन जिन-मंदिरों की रक्षा कैसे हो, ये ले लो हाथ में। जिन मंदिरों पर कहीं आँच न आये। कानजी स्वमी तो स्थापना कर गए (हैं), लेकिन ये जैन-मंदिर कायम अमर रहें, इसकी सुरक्षा दिगंबर जैन भाई हाथ में लें, ऐसा स्वयं पुकार करते हैं।

श्रोता : कितना अच्छा!

पूज्य बेन : बड़े पंडित जी हैं ना। कैलाशचंद जी और जगमोहनलाल जी, ये दिगंबर समाज के बहुत बड़े पंडित हैं। जगमोहनलाल जी और पंडित कैलाशचंद्र जी, पंडित फूलचंद जी, ये सब बड़े-बड़े पंडित (हैं)।

कानजी स्वामी जी के द्वारा निर्मित दिगंबर मंदिरों की सुरक्षा के लिए हाथ बढ़ायें। **जिनालयों की सुरक्षा के लिए हाथ बढ़ायें। धर्म-वात्सल्य तो इसी का नाम है।** इसका नाम धर्म वात्सल्य है कि **स्वामी जी जिस जैन-धर्म की वृद्धि करते गए,** उनको अपने हाथ में ले लो, उन मंदिरों की रक्षा करो, इसका नाम स्वामी-वात्सल्य है। **धर्म वात्सल्य तो इसी का नाम है।** कानजी स्वामी जैन-मंदिरों (का निर्माण और) शास्त्रों (की वृद्धि) वगैरह करते गए, उनकी रक्षा कैसे हो, उसको अपने हाथ में ले लो। **हमारा नारा यह होना चाहिए कि जो कोई भी दिगंबर**

जैन-धर्म को अपनाता है, वह हमारा साधर्मी होने से भाई है। ऐसा नाता रखो।

हम स्वामी जी की 82 वीं जयंती पर उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

गुरुदेव ने जो आचरण किया वह आचरण अपने को अंगीकार करना, ये उनका भक्त तब कहलाता है। उनके प्रति भक्ति है, प्रेम है वो अकेली भक्ति नहीं, लेकिन गुरुदेव ने जो आचरण किया, वो आचरण अपने को अंदर में सीखना। उनका आचरण सीखना, तब ही सच्चा भक्त कहलाता है। (अन्यथा) तब तक भक्त नहीं। ये भक्त (है), इस तरह से भक्त होना।

गुरुदेव की परम करुणा की जय हो!

गुरुदेव के साक्षात् दर्शन व्हेला-व्हेला (जल्दी जल्दी) हो, ऐसी गुरुदेव की करुणा की जय हो!

गुरुदेव की अमृतमय वाणी की जय हो!

अमारा मंदिरिया सूना - 2

(अर्थ :- हमारा मंदिर सूना)

भक्तों विनवे गुरुदेव, विनंती सुणीऐ गुरुदेव, अमारा आँगना सूना -2

(अर्थ :- भक्त विनती करें गुरुदेव, विनती सुनिये गुरुदेव, हमारा आँगन सूना)

आवो पधारो गुरुदेव, अमारा आँगना सूना -2

(अर्थ :- आओ पधारो गुरुदेव, हमारा आँगन सूना)

ज़ाजूं शुं कहिये गुरुदेव, तमे छो प्रज्ञाबुद्धि देव,

हृदये धरजो अमारी सेव, अमारा आँगना सूना -4

(अर्थ :- ज़्यादा क्या कहें गुरुदेव, आप तो हो प्रज्ञाबुद्धि देव, हृदय में धरना हमारी प्रार्थना, हमारा आँगन सूना)

अमारा मंदिरिया सूना - 2

(अर्थ :- हमारा मंदिर सूना)

वीत्या-वीत्या छह-छह मास, दर्शन दीधा नहीं लगार,

अमारा आँगना सूना -2

(अर्थ :- बीत गए छह-छह महीने, दर्शन ज़रा भी नहीं दिये आपने, हमारा आँगन सूना)

अमारा मंदिरिया सूना - 2

(अर्थ :- हमारा मंदिर सूना)

मूकी गया छो अमृत वाणी -4

(अर्थ :- छोड़ गए आप अमृत वाणी)

ऐ! अमे सुणीऐ अमृत वाणी -4

(अर्थ :- हम सुनते हैं अमृत वाणी)

सुणतां शांति थाए छे आज, अमारा अंतर माहीं आज -2

(अर्थ :- सुनते ही हमारे अंतर में आज शांति होती है)

जय-जयवर्तो कहानवाणी -4

(अर्थ :- जय-जयवर्तो कहानवाणी)

भव्यो करे छे आत्म कल्याणी -4

(अर्थ :- भव्यों का करती है आत्मकल्याण)

हे! गुरु कहाननी ए वाणी -4

(अर्थ :- गुरु कहान की ये वाणी)

हे! अमर कहाननी ए वाणी -4

(अर्थ :- अमर कहान की ये वाणी)

जयवंत वर्तो कहान वाणी त्रणकाळमां रे -4

(अर्थ :- जयवंत वर्तो कहान वाणी तीनों काल में रे)

भक्ति करतां भक्तजनों सौ विनवे छे आज,

अमारा मंदिरिये आओ -4

(अर्थ :- भक्ति करते भक्तजन सब विनती करें आज, हमारे मंदिर में आओ)

अमारा आँगणिये आओ -2

(अर्थ :- हमारे आँगन में आओ)

अमारा धाममां विराजो -4

(अर्थ :- हमारे धाम में विराजो)

परम उपकारी सद्गुरुदेव की जय हो!

सद्गुरुदेव के महान-महान उपकार की जय हो!

सद्गुरुदेव के महान-महान प्रताप की जय हो!

गुरुदेव के महान-महान प्रताप की जय हो!

आत्मा की रक्षा करने वाले श्री सद्गुरुदेव की जय हो!

साक्षात् आत्मा का दान देनेवाले श्री सद्गुरुदेव की जय हो!

फ़री फ़री व्हेला पधारजो गुरुदेव की जय हो!

*** * ***

तीर्थधाम श्री सुवर्णपुरी का गुंजे भरतक्षेत्र में नाम ।
भेदज्ञान की महिमा जाने भव्य लहे निज आतमज्ञान ॥
सीमंधर जिन मंदिर मानस्थंभ समवशरण शोभावान ।
परमागम में कुन्दकुन्द प्रभु गाते आतम गीत महान ॥
शुद्धातम के अनुपम साधक कहान गुरु हैं जग विख्यात ।
पैंतालिस वर्षो तक जिनका उदित हुआ नित ज्ञान प्रभात ॥

पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मृति स्मारक
कहान नगर, लाम रोड, देवलाली (जि. नासिक)

जिन बिम्बों को सादर वन्दु,
निज स्वभाव को आभिनंदु।
देवलाली कहान नगर में
भव्य स्मारक भव्य जिनालयों ।।